उन्नतिका सीधा मार्ग।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ ६ ॥

अथर्व० ८ । १ । ६

" हे मनुष्य ! तेरी उन्नतिके पथमें गति होवे, अवनतिके पथमें न होवे । इसी कार्य के लिये तुझे आयुष्य और बल मैं देता हूं । इस सुखदायी अमृतसे परिपूर्ण (शरीररूपी) रथपर चढ । यहां जब तू वृद्ध होगा तब तू विज्ञानका उपदेश करेगा । "

मुद्रक— श्री० दा० सातवळेकर, भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा.)

अथर्ववेदका स्वाध्याय।

(अथर्ववेदका सुबोध भाष्य)

अष्टम काण्ड।

इस अष्टम काण्डका प्रारंभ 'दीर्घ आयु' देवताके सूक्तोंसे हुआ है। संपूर्ण प्राणिमात्रोंके लिये अल्पायु कष्टदायक और दीर्घायु सुखदायक है। अतः यह देवता 'मंगल' है। अल्पायुताका निवारण करना और दीर्घायु प्राप्त करना मनुष्यके लिये मुख्यतः अभीष्ट है। यही प्रारंभके दो सूक्तोंका विषय है।

काण्ड ८ से काण्ड ११ के अन्ततकके चारों काण्डोंकी प्रकृति बीससे अधिक मंत्रवाले सूक्तोंकी है। प्रायः अनेक सूक्तोंमें बीससे पचीसतक मंत्र है। कुछ थोडे सूक्तोंमें थोडेसे अधिक भी मंत्र हैं। इन सूक्तोंको 'अर्थ-सूक्त' कहते हैं। इन काण्डोंमें तथा आगे भी जो पर्याय सूक्त हैं, उनमें मंत्रोंकी संख्या कम है। परंतु सब पर्याय मिलकर जब एकही सूक्त है ऐसा माना जाता है, तब सूक्तकी मंत्रसंख्या बढ जाती है। इस अष्टम काण्डमें अन्तिम सूक्त इस प्रकारका पर्याय सूक्त है और इस एक सूक्तमें छः पर्याय है, अर्थात् यह छोटे छः सूक्तोंका बडा सूक्त हुआ है। आगेके काण्डोंमें इस प्रकार पर्यायसूक्त है—

आठवें काण्डमें	१० वें सूक्तमें	६ पर्याय सूक्त हैं।
नववें ,,	६ ,,	६ ,, ,,
,, ,,	७ ,,	१ ,, ,,
ग्यारहवें ,,	३ रे ,,	२ ,, ,,
बारहवें ,,	५ वें ,,	७ ,, ,,
तेरहवें ,,	४ थे ,,	६ ,, ,,
पंदरहवे ,,	—	१८ ,, ,,
सोलहवें ,,	—	९ ,, ,,

आगेके काण्डोंमें ये पर्याय पाठक देखेंगे और शेष अर्थसूक्त भी पाठक देखेंगे। इनका नाम अर्थसूक्त क्यों हुआ है इसका वर्णन आगे योग्य स्थानपर करेंगे। यहां इस स्थानपर इस काण्डके अनुवाकोंमें सूक्तसंख्या और मंत्रसंख्या कैसी है, यह देखिये-

अनुवाक	सूक्त	दशति विभाग	पर्यायसंख्या.	मंत्रसंख्या
१	१	१०+११		२१
	२	१०+१०+८		२८
२	३	१०+१०+६		२६
	४	१०+१०+५		२५
३	५	१०+१२		२२
	६	१०+१०+६		२६
४	७	१०+१०+८		२८
	८	१०+१४		२४
५	९	१०+१०+६		२६
	१०		६	३३
				२५९

मंत्रसंख्याकी दृष्टीसे यह काण्ड तृतीय स्थानमें आ सकता है। (१) द्वितीय काण्डकी २०७, (२) तृतीय और चतुर्थकी २३०, (३) अष्टमकी २५९ (४) सप्तम काण्डकी २८६, (५) चतुर्थकी ३२४, (६) पञ्चमकी ३७६ और (७) षष्ठकी ४५४ मंत्रसंख्या है। सप्तम काण्डके अन्ततक कुल मंत्रसंख्या २१०७ हो चुकी है, इसमें अष्टम काण्डकी २५९ मिलानेसे अष्टम काण्डके अन्ततक कुल मंत्रसंख्या २३६६ होगी।

अब इस काण्डके ऋषिदेवताछन्द देखिये—

सूक्तोंके ऋषि-देवता-छन्द ।

सूक्त	मंत्रसंख्या	ऋषि	देवता	छन्द
प्रथमोऽनुवाकः । अष्टादशः प्रपाठकः ।				
१	२१	ब्रह्मा	आयु	त्रिष्टुप् । १ पुरोबृ० त्रिष्टुप् । २, ३, १०-२१ अनुष्टुभ । ४, ९, १५, १६ आस्तारपङ्क्तयः । ७, त्रिपाद्विराड् गायत्री । ८ विराट् पथ्याबृहती । १२ त्र्यव० पञ्चपदा जगती । १३ त्रिपा० भुरिक् महाबृहती । १४ एकाव० द्विपदा साम्नी भु० बृहती ।

२	२८	ब्रह्मा	आयु·	त्रिष्टुप् । १, २, ७ भुरिज· । ३, २६ आस्तार-पंक्तिः । ४ प्रस्तारपंक्तिः । ६–१५ पथ्यापंक्तिः ८ पुर० ज्योतिष्मती जगती । ९ पञ्चपदा जगती । ११ विष्टारपंक्ति· । १२,२२, २८ पुर० वृहत्यः । १४ त्र्यव० षट्प० जगती । १९उप० वृहती । २१ सत· पंक्तिः । ५, १०, १६–१८, २०. २३—२५, २७ अनुष्टुभः । १७ त्रिपाद् ।

द्वितीयोऽनुवाकः ।

३	२६	चातनः	अग्निः	त्रिष्टुप् । ७,१२, १४, १५, १७, २१, भुरिजः । २५ पञ्चपदा वृहतीगर्भा जगती । २२, २३ अनुष्टुभौ । २६ गायत्री
४	२५	,,	मंत्रोक्तदेवताः	जगती । ८—१४, १६, १७, १९. २२, २४ त्रिष्टुभः । २०, २३ भुरिजौ । २५ अनुष्टुप् ।

तृतीयोऽनुवाकः ।

५	२२	शुक्रः	कृत्यादूषणं, मंत्रोक्ता ।	अनुष्टुभ् । १, ६ उपारि० वृहती । २ त्रि० वि० गायत्री । ३ चतु० भु० जगती । ५ संस्तारपंक्तिर्भुरिग् । ६ उपारि० वृहती । ७, ८ ककुम्मत्यौ । ९ चतु० पुरस्कृतिर्जगती । १० त्रिष्टुप् । ११ पथ्यापंक्ति । १४ त्र्यव० षट्प० जगती । १५ पुरस्ताद्वृहती । १९ जगतीगर्भा त्रिष्टुप् । २० विराड्गर्भा, आस्तारपंक्ति । २१ पराविराट् त्रिष्टुप् । २२ त्र्यव० सप्तप० विराड्-गर्भा भुरिक् ।

[एकोनविंशः प्रपाठकः]

६	२६	मातृनामा	मंत्रोक्ताः	अनुष्टुभ् । २ पुर० वृहती । १०त्र्यवसा०षट्पदा जगती । ११. १२, १४, १६ पथ्यापंक्ति ४,१५ त्र्यव० सप्तप० शाक्वरी । १३त्र्य० सप्तप० जगती॥

चतुर्थोऽनुवाकः ।

७	२८	अथर्वा	ओषधयः	अनुष्टुभ् । २ उप० भुरिग्वृहती । ३ पुरउष्णिक् ४ पञ्चपदापरा अनु० अतिजगती । ५, ६, १०, २५ पथ्यापंक्तय । १२ पञ्चप० विराडतिशाक्वरी १४ उप० निचृ० वृहती । २६ निचृत् । २८ भुरिक् ।

८	२४	भृग्वंगिरा	वनस्पतिः इन्द्रः, परसेनाहननम्	अनुष्टुप्। २ उपरि० बृहती। ३ विराड् बृहती। ४ बृ० पुर०प्र०पंक्ति । ६आस्तारपंक्ति । ७ विप० पादलक्ष्मा चतु० अतिजगती। ८--१० उपरि० बृहती। ११ पथ्याबृहती। १२ भुरिक्। १९ वि० पुर० बृहती। २० नि० पु० बृहती। २१ त्रिष्टुप् २२चतुष्पदा शक्वरी। २३ उप०बृहती। २४ त्र्यव० उष्णिग्गर्भा शक्वरी पञ्चपदाजगती।

पञ्चमोऽनुवाकः।

९	२६	अथर्वा, कश्यपः, सर्वे वा ऋषयः।	विराट्	त्रिष्टुभ्। २ पंक्तिः। ३ आस्तारपंक्तिः। ४, ५, २३, २५, २६ अनुष्टुभः। ८,११,१२, २२ जगत्यः। ९ भुरिक्। १४ चतु० जगती।
१०(१)	१३	अथर्वाचार्यः	विराट्	१ त्रिपदार्ची पंक्ति । (प्र०) २—७ याजुष्यः जगत्यः। (द्वि.)२,५ साम्न्यनुष्टुभौ (द्वि.) ३ आर्ची अनुष्टुप्। (द्वि.) ४, ७ विराड् गायत्र्यौ। (द्वि) ६ साम्नी बृहती
(२)	१०	,,	,,	१, त्रिपदा साम्नी अनुष्टुप्। २ उष्णिग्गर्भा चतु० उप० विराड्बृहती। ३ एकप० यजुषो गायत्री। ४ एकप० साम्नी पंक्तिः। ५ विराड् गायत्री। ६ आर्ची अनुष्टुप्। ७ साम्नी पंक्तिः। ८ आसुरी गायत्री। ९ साम्नी अनुष्टुप्। १०साम्नी बृहती। १
(३)	८	,,	,,	(१) चतुष्पदा नि० अनुष्टुप्। २ (२) आर्ची त्रिष्टुप्। ३,५,७ (१) चतुष्पदः प्राजापत्याः पंक्तय। ४,६,८(२) आर्च्यो बृहत्य।
(४)	१६	,,	,,	१,५ साम्ना जगत्यौ। २,६,१० साम्नां बृहत्य.। ३,४,८ आर्च्यनुष्टुभ.। ९, १३ चतुष्पादुष्णिहौ। ७ आसुरी गायत्री। ११ प्राजापत्यानुष्टुप्। १२, १६ आर्च्यौ त्रिष्टुभौ। १४, १५ विराड् गायत्र्यौ।
(५)	१६	,,	,,	१,१३ चतुष्पादे साम्नां जगत्यौ। १०, १४ साम्नां बृहत्यौ। १ साम्नी उष्णिग्। ४, १६ आर्च्यनुष्टुभौ। ९ उष्णिक्। ८ आर्ची त्रिष्टुप्। २ साम्नी उष्णिक्। ७, ११ विराड् गायत्र्यौ। ५चतुष्पदा प्राजापत्या जगती। ९ साम्नां बृहती त्रिष्टुप्। १५ साम्नी अनुष्टुप्

(६)	४	.	.	१ त्रिपदा विराड्गायत्री। २ त्रिपदा साम्नी त्रिष्टुप्। ३ द्वि० प्राजापत्या अनुष्टुप्। ४ द्वि० आर्ची उष्णिग्।

इस प्रकार इस सप्तम काण्डके ऋषि-देवता-छन्द हैं। अब इनका ऋषिक्रमानुसार सूक्तविभाग देखिये—

ऋषिक्रमानुसार सूक्तविभाग।

१ ब्रह्मा ऋषिके १,२ ये दो सूक्त हैं।
२ चातन ,, ३,४ ,, ,,
३ अथर्वा ,, ७,९ ,, ,,
४ अथर्वाचार्य ऋषिका १० वां एक सूक्त है।
५ शुक्र ,, ५ ,, ,,
६ मातृनामा ,, ६ ,, ,,
७ भृग्वंगिराः ,, ८ ,, ,,
८ कश्यप ,, ९ ,, ,,
९ सर्वे ऋषयः ,, ९ ,, ,,

इस प्रकार नौ ऋषियोंके देखे मंत्र इस अष्टम काण्डमें हैं। तथापि इनमें अथर्वाचार्य नामका एक अलग ऋषि सर्वानुक्रमणीकारने माना है। वस्तुतः देखा जाय तो 'आचार्य' शब्द कभी ऋषिके साथ नहीं आता। अतः यह अथर्वा ऋषि ही होगा। यदि इसे अथर्वा ही माना जाय तो एक ऋषि कम हुआ और आठही शेष रहे। 'सर्वे ऋषयः' यह एक सूक्तका ऋषि माना है। परंतु यह अलग ऋषि नहीं है। क्योंकि इस काण्डके 'ब्रह्मा, चातन, अथर्वा, शुक्र, मातृनामा, भृग्वंगिरा और कश्यप' ये सप्त ऋषिही 'सर्वे ऋषयः' का यहां इस काण्डमें तात्पर्य है, अतः यह एक नाम कम करना युक्त है। अर्थात् शेष सात ऋषि रहे, जिनके देखे हुए मंत्र इस काण्डमें हैं। 'अथर्वा' और 'अथर्वाचार्य' को यदि एकही माना जाय, तो इस काण्डमें अथर्वा ऋषिके सूक्तही अधिक हैं। इस विषयमें सप्तम काण्डकी भूमिकामें लिखा लेख पाठक अवश्य देखें। अब देवताक्रमानुसार सूक्तविभाग देखिये—

देवताक्रमानुसार सूक्तविभाग।

१ मंत्रोक्ता देवताके ४—६ ये ३ सूक्त हैं।
२ आयु ,, १, २ ,, २ ,,

३ विराट् देवताके ९, १० ये २ दो सूक्त हैं।
४ अग्नि देवताका ३ यह एक सूक्त है।
५ कृत्यादूषण ,, ५ ,, ,,
६ ओषधयः ,, ७ ,, ,,
७ वनस्पति ,, ८ ,, ,,
८ इन्द्र ,, ८ ,, ,,
९ परसेनाहनन ,, ८ ,, ,,

इस प्रकार नौ देवताके सूक्त इस काण्डमें हैं, तथापि 'मंत्रोक्तदेवता' यह अनेक देवताओंका सामान्य नाम है। इस लिये इन्द्रादि जो अनेक देवताएं इसमें आगयीं हैं, उन सबको मिलानेसे कई देवताओंका वर्णन इस काण्डमें है, यह बात सिद्ध हो जायगी। इसी प्रकार 'ओषधि और वनस्पति' ये दोनों संभवतः एकही देवता हैं। देवताओंकी संख्या निश्चित करनेमें इन बातोंका विचार करना आवश्यक है। इस काण्डमें निम्नलिखित गणोंके मन्त्र हैं—

१ आयुष्यगणके १, २ ये दो सूक्त हैं।
२ स्वस्त्ययनगण का ५ वां सूक्त है।
३ पुष्टिक मंत्र ५ वें सूक्तमें हैं।
४ महाशान्ति और रौद्री शान्तिके मंत्र ५ वें सूक्तमें हैं।

इस प्रकार इन गणोंके मंत्र इस काण्डमें हैं। इन गणोंके अनुसंधानसे पाठक इन सब मंत्रोंका विचार करें।

अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

(अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।)

अष्टम काण्ड ।

दीर्घायु प्राप्त करनेका उपाय ।

[१]

(ऋषिः- ब्रह्मा । देवता-आयुः)

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥ १ ॥

अर्थ—(मृत्यवे अन्तकाय नमः) मृत्युरूपसे सबका अन्त करनेवाले परमेश्वरको नमस्कार है । हे मनुष्य ! (ते प्राणाः अपानाः इह रमन्ताम्) तेरे प्राण और अपान यहां शरीरमें आनन्दसे रहें । (अयं पुरुषः असुना सह) यह मनुष्य प्राणके साथ (इह अमृतस्य लोके सूर्यस्य भागे अस्तु) इस अमृतके स्थानरूपी सूर्यके प्रकाशके भागमें रहे ॥ १ ॥

भावार्थ— संपूर्ण जगत्का नाश करनेवाले एक ईश्वरको हम प्रणाम करते हैं । मनुष्यके प्राण इस शरीरमें दीर्घकाल तक रहें । मनुष्य दीर्घ जीवनके साथ अमृतमय सूर्यप्रकाशमें यथेच्छ विचरता रहे ॥ १ ॥

उदे॑नं॒ भगो॑ अग्रभी॒दुदे॑नं॒ सोमो॑ अंशु॒मान् ।
उदे॑नं म॒रुतो॑ दे॒वा उदि॑न्द्रा॒ग्नी स्व॒स्तये॑ ॥ २ ॥
इ॒ह तेऽसु॑रि॒ह प्रा॒ण इ॒हायु॑रि॒ह ते॒ मनः॑ ।
उत् त्वा॒ निर्ऋ॑त्याः॒ पाशे॑भ्यो॒ दैव्या॑ वा॒चा भ॑रामसि ॥ ३ ॥
उत् क्रा॒मातः॑ पुरुष॒ माव॑ पत्था मृ॒त्योः पड्वी॑शमवमु॒ञ्चमा॑नः ।
मा च्छि॑त्था अ॒स्माल्लो॒काद॒ग्नेः सूर्य॑स्य सं॒दृशः॑ ॥ ४ ॥

अर्थ-(भगः एनं उत् अग्रभीत्) भग देवने इस मनुष्यको उच्च स्थानपर रखा है, (अंशुमान् सोमः एनं उत्) तेजस्वी सोमने इसको उठाया है, (मरुतः देवाः एनं उत्) मरुतदेवोंने इसको उच्च बनाया है, (इन्द्र-अग्नी स्वस्तये उत्) इन्द्र और अग्निने इसके कल्याणके लिये इसको उच्च बनाया है ॥ २ ॥

(इह ते असुः) यहां तेरा जीवन, (इह प्राणः, इह आयुः) यहां प्राण, यहां आयु और (इह ते मनः) यहां तेरा मन स्थिर रहे। (दैव्या वाचा निर्ऋत्याः पाशेभ्यः) दिव्य वाणीके द्वारा अधोगतिके फांसोंसे (त्वा उत् भरामसि) तुझे ऊपर धरदेते हैं ॥ ३ ॥

हे (पुरुष) मनुष्य ! (अतः उत् क्राम) यहांसे ऊपर चढ, (मा अवपत्थाः) मत् नीचे गिर। (मृत्योः पड्वीशं अवमुञ्चमानः) मृत्युकी बेडीसे अपने आपको छुडाता हुआ (अस्मात् लोकात्) इस लोकसे तथा (अग्नेः सूर्यस्य संदृशः) अग्नि और सूर्यके दर्शनसे अपने आपको (मा छित्थाः) मत् दूर रख ॥ ४ ॥

भावार्थ- भग आदि सब देव इसकी उन्नति करनेमें इसकी सहायता करें ॥ २ ॥

हे मनुष्य ! इस शरीरमें तेरा प्राण, आयुष्य, मन और जीवन स्थिर रहे। अनारोग्य रूपी दुर्गतिके पाशोंसे हम सब तुझे ऊपर उठाते हैं ॥ ३ ॥

हे मनुष्य। तू ऊपर चढ, मत् गिर जा। मृत्युके पाशोंसे अपने आपको छुडाओ। दीर्घायु प्राप्त कर और इस मनुष्य लोकसे तथा इस सूर्यके प्रकाशसे अपने आपको दूर न कर ॥ ४ ॥

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे३ शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥ ५ ॥
उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ ६ ॥
मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥ ७ ॥

अर्थ-(मातरिश्वा वातः तुभ्यं पवतां) अन्तरिक्षमें रहनेवाला वायु तेरे लिये शुद्धता करता रहे। (आपः तुभ्यं अमृतानि वर्षन्तां) जल तेरे लिये अमृतकी वृष्टि करे। (सूर्यः ते तन्वे शं तपाति) सूर्य तेरे शरीरके लिये सुखकर तपता है। (मृत्युः त्वां दयतां) मृत्यु तुझपर दया करे अर्थात् तू (मा प्रमेष्ठाः) मत् मर जा ॥ ५ ॥

हे पुरुष ! (ते उत्-यानं) तेरी उन्नतिकी ओर गति हो। (न अव-यानं) अवनतिकी ओर गति न होवे। इसलिये मैं (ते जीवातुं दक्षतातिं कृणोमि) तुझे जीवन और बल देता हूं। (इमं अमृतं सुखं रथं आरोह) इस अमरत्व देनेवाले सुखकारक शरीररूपी रथपर चढ, (अथ जिर्विः) और जब तू वृद्ध होगा, तब (विदथं आवदासि) विज्ञानका उपदेश करेगा॥६॥

(ते मनः तत्र मा गात्) तेरा मन उस निषिद्ध मार्गमें न जावे। और वहां (मा तिरः भूत्) मत् लीन होवे। (जीवेभ्यः मा प्रमदः) जीवोंके संबंधमें प्रमाद न कर। (पितॄन् मा अनुगाः) पितरोंके पीछे न जा अर्थात मत मर जा। (इह विश्वे देवाः त्वा अभि रक्षन्तु) यहां सब देव तेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

भावार्थ-वायु, जल और सूर्य तेरे लिये पवित्रता करे और तुझे शान्ति अर्पण करें। मृत्यु तेरे ऊपर दया करे अर्थात् तू दीर्घायु प्राप्त कर और शीघ्र मत मर जा ॥ ५ ॥ हे मनुष्य ! तू ऊपर चढ, कभी मत् गिर जा। इसी कार्यके लिये तुझे जीवन और बल दिये हैं। तेरा शरीर एक सुख देनेवाला उत्तम रथ है, इससे अमरपन भी प्राप्त किया जा सकता है। इसमें रहता हुआ जब मनुष्य दीर्घजीवन प्राप्त करता है और वृद्ध होता है तब उसको बहोत अनुभव प्राप्त होनेके कारण वह दूसरोंको योग्य उपदेश देनेमें समर्थ होता है ॥ ६ ॥

मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥ ८ ॥
श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥ ९ ॥
मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥१०॥(१)

अर्थ-(गतानां मा आदिधीथाः) गुजरे हुओंका विलाप न कर क्यों कि (ये परावतं नयन्ति) वे तो दूर ले जाते हैं। अतः (आ इहि) यहां आ और (तमसः ज्योतिः आरोह) अंधकारको छोड प्रकाशमें चढ, (ते हस्तौ रभामहे) तेरे हाथोंको हम पकडते हैं ॥ ८ ॥

(श्यामः च शबलः च) काला और श्वेत अर्थात् अंधकार और प्रकाशवाले (श्वा-नौ) कल न रहनेवाले दिन रात ये (यमस्य पथिरक्षी प्रेषितौ) नियामक देवके दो मार्गरक्षक भेजे हैं। (अर्वाङ् एहि) इधर आ। (मा विदीध्यः) मत् विलाप कर । (अत्र पराङ्मनाः मा तिष्ठ) यहां विरुद्ध दिशामें मन रखकर मत् रह ॥ ९ ॥

(एतं पन्थाम् अनु मा गाः) इस बुरे मार्गका अनुसरण मत् कर, (भीमः एषः) यह भयंकर मार्ग है। (येन पूर्वं न ईयथ) जिससे पहिले नहीं जाते हैं

भावार्थ- तेरा मन कुमार्गमें न जावे और यदि गया तो वहां कभी न स्थिर रहे। अन्य जीवोंके विषयमें जो तेरा कर्तव्य है उसमें तू प्रमाद न कर। शीघ्र मरकर अपने पितरोंके पीछे शीघ्रतासे मत् जा। ये सब देवता तेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

गुजरे हुओंका शोक न कर, उनसे तो मनुष्य दूर चला जाता है। यहां कार्यक्षेत्रमें आ, अन्धकार छोड और प्रकाशमें विचर। इस कार्यके लिये हम तेरा हाथ पकडते हैं ॥ ८ ॥

सबका नियमन करनेवाले ईश्वरके दिन (प्रकाश) और रात्री (अंधकार) ये दो मार्गदर्शक हैं। ये दोनों अशाश्वत हैं, परंतु ये तेरे मार्गकी रक्षा करेंगे। अतः तू आगे बढ, विलापमें समय न गमा दे, तथा विरुद्ध दिशामें अपना मन कदापि न जाने दे ॥ ९ ॥

रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्व१न्ता रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह॥११॥
मा त्वां क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर ।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च ॥
अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥ १२ ॥

(तं ब्रवीमि) उस विषयमें मैं कहता हूं। हे (पुरुष) मनुष्य ! (एतत् तमः) यह अन्धकारका मार्ग है, उस मार्गमें (मा प्र पत्थाः) मत् जा। (ते परस्तात् भयं) तेरे लिये परे भय है (अर्वाक् ते अभयं) और इधर अभय है॥ १०॥

(ये अप्सु अन्तः अग्नयः) जो जलोंमें अग्नि हैं वे (त्वा रक्षन्तु) तेरी रक्षा करें। (यं मनुष्याः इन्धते त्वा रक्षतु) जिसको मनुष्य प्रदीप्त करते हैं वह अग्नि तेरी रक्षा करे। (जातवेदाः वैश्वानरः रक्षतु) ज्ञातवेद सब मनुष्योंमें रहनेवाला अग्नि तेरी रक्षा करे। (विद्युता सह दिव्यः मा धाग्) बिजुलीके साथ रहनेवाला द्युलोक का अग्नि तुझे न जलावे॥ ११॥

(क्रव्यात् त्वा मा अभि मंस्त) कच्चा मांस खानेवाला तेरा वध न करे। (संकसुकात् आरात् चर) नाश करनेवालेसे दूर चल। (द्यौः त्वा रक्षतु) द्युलोक तेरी रक्षा करे, (पृथिवी रक्षतु) पृथिवी रक्षा करे। (सूर्यः च चन्द्रमाः च त्वा रक्षतां) सूर्य और चन्द्रमा तेरी रक्षा करें। (देवहेत्याः अन्तरिक्षं रक्षतु) दैवी आघातसे अन्तरिक्ष तेरी रक्षा करे॥ १२॥

भावार्थ- इस भयानक घोर बुरे मार्गसे न जा। जिससे जाना योग्य नहीं उस मार्गपरसे न जानेके विषयमें मैं तुम्हें यह आदेश दे रहा हूं। अर्थात् तू इस अन्धकारके मार्गमें कदापि न जा, इसमे जानेमें आगे बडा भय है। अतः तू इस ओर रह, इस मार्गपर तू रहा तो तेरे लिये यहां अभय होगा॥ १०॥

जलकी उष्णता, अग्नि, विद्युत, सूर्य तथा मानवी समाज इनमेंसे किसी से तेरा अकल्याण न हो, इनसे तेरी उत्तम रक्षा होवे॥ ११॥

घातपात करनेवाले दुष्टोंसे तेरी रक्षा होवे। पृथ्वी अन्तरिक्ष, द्यु, चन्द्रमा, सूर्य आदि सब तेरी रक्षा करें॥ १२॥

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम्।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥ १३ ॥
ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥१४॥
जीवेभ्यस्त्वा समुद्रे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेनु ह्वयामसि ॥ १५ ॥
मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥ १६ ॥

अर्थ— (बोधः च प्रतीबोधः च त्वा रक्षतां) ज्ञान और विज्ञान तेरी रक्षा करें। (अस्वप्नः च अनवद्राणः च त्वा रक्षतां) सुस्ती न होना और न भागना तेरी रक्षा करें। तथा (गोपायन् च जागृविः च त्वा रक्षतां) रक्षक और जागनेवाला तेरी रक्षा करे ॥ १३ ॥

(ते त्वा रक्षन्तु) वे तेरी रक्षा करें। (ते त्वा गोपायन्तु) वे तेरा पालन करें। (तेभ्यः नमः) उनको नमस्कार है। (तेभ्यः स्वा-हा) उनके लिये आत्म-समर्पण है ॥ १४ ॥

(त्रायमाणः धाता सविता वायुः इन्द्रः) रक्षक, पोषक, प्रेरक, जीवन-साधन प्रभु (जीवेभ्यः त्वा सं+उदे दधातु) सब प्राणियोंके लिये तथा तेरे लिये पूर्ण उत्कृष्टता धारण करे। (त्वा प्राणः बलं मा हासीत्) तेरे लिये प्राण बल न छोडे। (ते असुं अनु ह्वयामसि) तेरे प्राणको हम अनुकूलताके साथ बुलाते हैं ॥ १५ ॥

(जम्भः संहनुः त्वा मा विदत्) विनाशक और घातक तुझे कभी न प्राप्त करे। (तमः त्वा मा) अन्धकार तेरे ऊपर कभी न छाये। (जिह्वा मा) जिह्वा अर्थात् किसीके बुरे शब्द तेरे श्रवणपथमें न आवें। भला

भावार्थ— ज्ञान और विज्ञान, सुस्ती न करना और न भागना, रक्षा करना और जागना तेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥

जो तेरी रक्षा और पालना करते हैं, उनको प्रणाम करना और उनके लिये अपनी ओरसे कुछ समर्पण करना योग्य है ॥ १४ ॥

देव सब जीवोंको और तुझको उन्नतिके पथमें रखें। तेरे पास प्राण और बल पूर्ण आयुतक रहे ॥ १५ ॥

उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् ।
उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥ १७ ॥
अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः ।
इमं सहस्र-वीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ॥ १८ ॥
उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।
मा त्वा व्यस्तकेश्योऽ मा त्वाघरुदो रुदन् ॥ १९ ॥

(बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः) तू यज्ञकर्ता होकर घातक कैसा होगा ? (आदित्याः वसवः इन्द्र-अग्नी) आदित्य, वसु, इन्द्र और अग्नि (स्वस्तये) कल्याणके लिये (त्वा उत् भरन्तु) तुझे उच्चताके प्रति ले जावें ॥ १६ ॥

(द्यौः उत) द्युलोक (पृथिवी उत्) पृथिवी और (प्रजापतिः त्वा उत अग्रभीत्) प्रजापालक देव तुझे ऊपर उठावे। (सोमराज्ञीः ओषधयः) सोम जिनका राजा है ऐसी औषधियां (त्वा मृत्योः उत् अपीपरन्) तुझे मृत्युसे ऊपर उठावें अर्थात् तेरी रक्षा करें ॥ १७ ॥

हे (देवाः) देवो ! (अयं इह एव अस्तु) यह यहां इस लोकमें ही रहे, (अयं इतः अमुत्र मा गात्) यह यहांसे वहां परलोकमें न जावे। (सहस्र-वीर्येण इमं मृत्योः उत् पारयामसि) हजारों बलोंसे युक्त उपायसे इस मनुष्यकी मृत्युसे हम रक्षा करते हैं ॥ १८ ॥

(मृत्योः त्वा उत् अपीपरं) मृत्युसे तुझको हम पार करते हैं। (वयोधसः सं धमन्तु) अन्न अथवा आयुका धारण करनेवाले देव तुझे पुष्ट

भावार्थ—कोई नाशक और घातक तेरे पास न पहुंचे। अज्ञान और अन्धकार तेरे पास न आवे। बुरे शब्दोंका प्रयोग कोई न करे। स्मरण रख कि जो यज्ञ करता है उसके पास नाश नहीं आता और सूर्यादि सब देव तुम्हारा कल्याण करेंगे और तेरी उन्नति होनेमें सहायक होंगे ॥ १६ ॥

प्रजाका पालक देव, द्युलोकसे पृथ्वी पर्यंतके औषधियां आदि सब पदार्थ मृत्युसे तेरा बचाव करेंगे ॥ १७ ॥

हे देवो ! इस मनुष्यको दीर्घायु प्राप्त होवे, इसके पाससे मृत्यु दूर होवे। सहस्र प्रकारके बलोंसे युक्त औषधियोंकी सहायतासे इसके मृत्युको हमने दूर किया है ॥ १८ ॥

आहार्षमविंदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेविदम् ॥ २० ॥
व्युवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥ २१ ॥ (२)

करें । (व्यस्तकेश्यः अघ-रुदः) बालोंको खोल खोलकर बुरी तरहसे रोने वाली स्त्रियां (मा त्वा रुदन्, मा त्वा) तेरे लिये न रोयें, अर्थात् तेरी मृत्युके कारण इनपर रोनेका प्रसंग न आवे ॥ १९ ॥

(त्वा आहार्षं) मैंने तुझे लाया है । (त्वा अविंदं) तुझे पुनः प्राप्त किया है । (पुनः नवः पुनः आगाः) पुनः नया होकर पुनः आगया है । हे (सर्वांग) संपूर्ण अंगोंवाले मनुष्य ! (ते सर्वं चक्षुः) तेरी पूर्ण दृष्टी और (ते सर्वं आयुः च) तेरी पूर्ण आयु तेरे लिये (अविदं) प्राप्त करायी है ॥ २० ॥

अब (त्वत् तमः व्यवात्) तेरे पाससे अन्धकार चला गया है । (अप अक्रमीत्) तेरेसे दूर चला गया है । (ते ज्योतिः अभूत्) तेरा प्रकाश फैल गया है । (त्वत् निर्ऋतिं मृत्युं अप नि दध्मसि) तेरेसे दुर्गति और मृत्यु को हम हटाते हैं तथा तेरेसे (यक्ष्मं अप निदध्मसि) रोगको हम दूर करते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थ-अब यह मृत्युसे पार हो चुका है । आयु देनेवाले इसके लिये आयु दें । अब स्त्रियां या पुरुष इसके लिये न रोयें, क्यों कि यह जीवित हुआ है ॥ १९ ॥

रुग्णस्थितिसे मैंने तुझे आरोग्यस्थितिके प्रति लाया है अर्थात् तुझे नवीन जैसा प्राप्त किया है । मानो, तू नयाही हो गया है । तेरे सर्व अंग पूर्ण होगये हैं, तेरे चक्षु आदि इंद्रिय और तेरी आयु तुझे प्राप्त होगई है, अतः तू अब दीर्घकाल जीवित रहेगा ॥ २० ॥

अन्धकार तेरे पास से भाग गया है । और तेरा प्रकाश चारों ओर फैलगया है । दुर्गति और मृत्यु दूर हट गये हैं और रोग दूर भाग गये हैं । इस प्रकार तू नीरोग और दीर्घायु होगया है ॥ २१ ॥

दीर्घायु कैसी प्राप्त होगी ?

धर्मक्षेत्र

मनुष्यके लिये यह शरीर धर्मका साधन है। यही इसका 'कुरुक्षेत्र' अथवा 'कर्मक्षेत्र' किंवा 'धर्मक्षेत्र' है। इसमें रहता हुआ और पुरुषार्थ करता हुआ यह मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर सकता है, अथवा पुरुषार्थसे हीन होता हुआ यही जीव अधोगति भी प्राप्त कर सकता है। इसलिये इस शरीररूपी साधनको सुरक्षित रखने और इससे अधिकसे अधिक काम लेनेके लिये इसको दीर्घकाल तक जीवित रखना आवश्यक है। इसी कारणके लिये दीर्घायु प्राप्त करनेका विषय धर्मग्रंथोंमें आता है। इस सूक्तमें इसी शरीरके विषयमें कहा है—

इमं अमृतं सुखं रथं आरोह। (मं० ६)

'इस न मरे, सुखकारक (शरीररूपी) रथपर आरोहण कर।' इसमें 'सु+ख' शब्दसे 'सु' नाम उत्तम अवस्थामें 'ख' नाम इंद्रियां जिसकी हैं, ऐसे आरोग्यपूर्ण सुदृढ शरीरको प्राप्त करनेकी सूचना है। 'सु+खं रथं' का अर्थ है जिसकी इंद्रियां उत्तम हैं ऐसा यह शरीररूपी रथ मनुष्यको प्राप्त करना चाहिये। इसका दूसरा गुण 'अ+मृत' शब्दसे बताया है। मरे हुए या मुर्दे जैसे दुर्बल और रोगी शरीरको 'मृत' कहते हैं, और जो सतेज, तेजस्वी, बलिष्ठ, सुदृढ, नीरोग और कार्यक्षम शरीर होता है उसको 'अ-मृत' कहते हैं। जिस शरीरको देखनेसे जीवनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है, उसीको अमृत शरीर कहते हैं। शरीर कैसा होना चाहिये ? ऐसा किसीने प्रश्न किया, तो उसका उत्तर इस मंत्रने दिया, कि 'शरीर अमृत और सुखकारक होना चाहिये।' बहुत लोगोंको मृत और दुःखी शरीर प्राप्त हुए होते हैं। वैसे शरीरोंसे मनुष्यके जीवनकी सफलता हो नहीं सकती।

दूरका मार्ग।

यहां शरीरको 'रथ' कहा है। इसको 'रथ' इसलिये कहा है कि, इसमें बैठकर मनुष्य ब्रह्मलोकको पंहुंच सकता है। इतना लंबा मार्ग उत्तम रीतिसे आक्रमण करना मनुष्यको इसी शरीरसे सुगम हो जाता है। दूर ग्रामको जानेके लिये जिस प्रकार उत्तम अश्वरथ, जलरथ (नौका), अग्निरथ (आगगाडी), वायुरथ (विमान) आदि विविध रथ होते हैं, उसी प्रकार मुक्तिधामको पंहुंचनेके लिये इस शरीररूपी रथमें बैठकर, उसके अश्वस्थानीय इंद्रियोंको सुशिक्षित करके धर्मपथपर ले जाना पडता है। इस विषयमें उपनिषदोंमें कहा है—

रथी और रथ।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३ ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥
यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥ ५ ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥ ६ ॥
यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति सँसारं चाधिगच्छति ॥ ७ ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ ८ ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः।
सोऽध्वनः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ९ ॥

कठ उ० ३

" आत्मा रथका स्वामी है, शरीर उसका रथ है, बुद्धि उसका सारथी और मन लगाम है। इंद्रिय घोडे इस रथको जोते हैं, जो विषयोंके क्षेत्रोंमें संचार करते हैं। आत्मा इंद्रियोंसे और मनसे युक्त होनेपर उसको भोक्ता कहा जाता है। जो विज्ञानसे हीन और संयमरहित मनसे युक्त है, उसके आधीन इंद्रियरूपी घोडे नहीं रहते, अर्थात् वे रथके स्वामीको जिधर चाहे उधर फेंक देते हैं। परंतु जो विज्ञानवान् और मनका संयम करनेवाला होता है, उसके आधीन उसकी संपूर्ण इंद्रियां रहती है। जो विज्ञान-रहित,असंयमी मनवाला और सदा अपवित्र होता है, वह उस स्थानको प्राप्त नहीं होता और वारंवार संसृतिमें गिरता है,परंतु जो विज्ञानी,संयमी और पवित्र होता है, वह उस स्थानको प्राप्त करता है, जहांसे वारंवार आना नहीं पडता। जिसका विज्ञान सारथी है और मनरूपी लगाम जिसके स्वाधीन है वही मार्गके परे जाता है वहीं व्यापक देवका परम स्थान है।"

इसमें इस रथका उत्तम वर्णन है, इसके घोडे, सारथी, उत्तम शिक्षित घोडे, अशिक्षित घोडे, इसका जानेका मार्ग, कौन वहां जाता है और कौन नहीं पंहुच सकता, यह सब वर्णन इस स्थानपर है। इसका विचार करनेसे पाठक इस शरीररूपी रथकी योग्यता जान सकते हैं। यह रथ अमृतकी प्राप्ति करनेवाला है, इसलिये ही इसको दीर्घकालतक सुरक्षित रखना चाहिये और इसको नीरोग भी रखना चाहिये। रोगी और अल्पजीवी होनेसे यह रथ निकम्मा होता है और मनुष्यका ध्येय प्राप्त नहीं होता। मनुष्य इसपर चढे,लगाम स्वाधीन रखे, और ज्ञान विज्ञान द्वारा योग्य मार्गसे चले, अर्थात् संयमसे व्यवहार करे और अपनी उन्नतिका मार्ग आक्रमण करे। यही भाव इन वचनोंद्वारा दर्शित किया है—

(हे) पुरुष अतः उत्क्राम। मा अवपत्थाः। (मं० ४)
(हे पुरुष) ते उद्-यानं। न अवयानम्। (मं० ६)

" हे मनुष्य! तू यहांसे ऊपर चढ, नीचे न गिर। हे मनुष्य! तेरी गति ऊपर हो, नीचेकी ओर न हो।" मनुष्यको यह देह इसीलिये प्राप्त हुआ है कि वह उसपर चढे और कभी न गिरे। गिरना या चढना इसके आधीन है। यदि यह चाहेगा तो चढ सकता है और यदि यह चाहेगा तो गिरभी सकता है। यही भाव अन्य शब्दोंमें इस सूक्तमें कहा है—

ज्योतिकी प्राप्ति।

आ इहि। तमसः ज्योतिः आरोह। ते हस्तौ रभामहे। (मं० ८)

" हे मनुष्य, इस मार्गमे आ, अंधकारके मार्गको छोड और प्रकाशके मार्गपे ऊपर चढ, यदि तुम्हें सहारा चाहिये तो हम तुम्हारा हाथ पकडकर सहायता देनेको तैयार हैं।" महापुरुष, साधु, सन्त, महात्मा, योगी, ऋषि, उन्नतिके पथमें सहायता देनेके लिये सदा तैयार रहते हैं, उनकी सहायता लेनेके लिये ही अन्य मनुष्योंकी तैयारी चाहिये। जो निष्ठासे उन्नतिके पथपर चढना चाहता है, उसको सहायता मिलती जाती है। न पूछते हुए उच्च श्रेणीके पुरुष उन्नत होनेवालोंकी सहायता सदा करते ही रहते हैं। इसी विषयमें आगे कहा है—

अर्वाङ् एहि। अत्र पराङ्मनाः मा तिष्ठ। (मं० ९)

"इस ओर आ। यहां विरुद्ध विचार मनमें धारण करके मत ठहर।" यहां धर्ममार्गपर आनेका आदेश है। इससेभी विशेष महत्त्वका उपदेश यहां कहा है वह 'पराङ्मनाः मा तिष्ठ' यह है, इसमें 'पराङ्मनाः (पर+अञ्च्+मनाः) यह शब्द हरएकको विशेष रीतिसे ध्यानमें रखने योग्य है। इसका अर्थ (पर) शत्रु की (अञ्च) अनुकूलतामें जिसका मन हुआ है। शत्रुकी ओर जिसका मन झुका है। जो मनसे शत्रुका हित चाहता है अथवा जो शत्रुको अनुकूल होकर केवल अपनी व्यक्तिका लाभ करना चाहता है और अपनी जातीका अहित होता है वा नहीं यह भी नहीं देखता। इस प्रकारका हीन विचारवाला कोई मनुष्य न होवे। यह तो शत्रुसे भी अधिक घातक है, अतः कहा है, (पराङ्मनाः अत्र मा तिष्ठ) यहां विरोधियोंके आधीन अपने मनको रखकर न ठहर, अर्थात् स्वकीयोंका अनुकूल होकर ही यहां रह। राष्ट्रीय और जातीय दृष्टीसे भी इसका भाव अत्यंत विचारणीय है। जो इस प्रकारके हीन वृत्तिवाले लोग होते हैं, जो अपने स्वार्थ के लिये समाज और राष्ट्रका घात करनेके कारण पाप करते हैं, वे दीर्घजीवी नहीं होते। इस लिये कोई मनुष्य ऐसी स्वार्थकी वृत्ती न धारण करे। सदा वीरवृत्तिवाले मनुष्य हों, जो अपना और समाजका हित साधते हैं।

शोकसे आयुष्यनाश।

शोक करना भी आयुका घात करता है। कई मनुष्य गुजरे हुए बुजुर्गोंका नाम स्मरण कर करके शोक करनेमें दिन व्यतीत करते रहते हैं, उनकी यहां अवनति तो

होती ही है, परंतु साथ साथ आयु भी क्षीण होती है; अतः इस सूक्तमें कहा है—

गतानां मा आदिधीथाः, ये परावतं नयन्ति। (मं० ८)

"गुजरे हुए मनुष्योंका स्मरण करके शोक न करो, क्योंकि ये शोक दूरतककी गहरी अवनतिको पंहुचा देते हैं।" शोक करनेसे अपना मनही गिर जाता है। जिसका शोक किया जाता है वह तो मरा हुआ होता है, अतः उसको किसी प्रकार लाभ नहीं पंहुंच सकता, परंतु जो जीवित रहते हैं उनका समय व्यर्थ जाता है और इसके अतिरिक्त मन उदास होता है, उसकी विचार करनेकी और श्रेष्ठतम पुरुषार्थ करनेकी शक्ति हटजाती है; इस प्रकार सदा शोकमें मग्न रहनेवाला पुरुष इह पर लोकके लिये निकम्मा होता है।

बूढे और बुजुर्ग मरनेपर शोक न करना ठीक है, परंतु जब नवजवान मर जाते है तब भी शोक करना योग्य है वा नहीं, ऐसी कोई लोग शंका करेंगे, उसके विषयमें वेदका कहना यह है कि—

व्यस्तकेश्यः अघरुदः त्वा मा रुदन्। (मं० १०)

"बालोंको अस्ताव्यस्त करके सिर खोल खोल, छाती पीट कर बुरी प्रकार रोनेवाले लोगभी न रोयें।" क्योंकि मरणके पश्चात् रोने पीटनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता है। दूसरी बात यह है कि, इस वेदके उपदेशके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्य की दीर्घायु होगी, अतः उसके पश्चात् रोनेपीटनेका कोई कारण ही नहीं रहेगा, क्योंकि निःसंदेह दीर्घ आयु प्राप्त करनेका उपदेश इस स्थानपर कहा है और उसके लिये एक उपाय यह है 'मन शोकाकुल न करना'। अतः जो मनुष्य दीर्घजीवी बनना चाहते हैं, कमसे कम वे लोग तो कभी अपना मन शोकसे व्याकुल न करें। यह उपदेश सर्वसाधारण जनोंके लिये भी बडा बोधप्रद है। कई प्रांतों और जातियोंमें स्यापा डालनेकी रीति है, मरणोत्तर संबंधी रोने पीटने रहते हैं, कई देशोंमें तो किराया परभी रोनेवाले रखे जाते हैं, उनका धंदाही रोनेका होता है !! यह सब अवनतिकारक प्रथा है और इसको एकदम बन्द करना चाहिये। इस पद्धति से संपूर्ण जातीकी आयु घटती है।

हिंसकोंसे बचना।

दुष्ट मनुष्योंकी संगतिमें रहनेसेभी आयु घटती है। दुष्ट मनुष्य और दुष्ट प्राणी घात-पात करनेकी भी संभावना रहती है, अतः इनसे दूर रहनेको कहा गया है—

क्रव्यात् त्वा मा अभिमंस्त। संकुसुकात् आरात् चर ॥ (मं० १२)
जम्भः संहनुः त्वा मा विदत्। (मं० १३)

" कच्चा मांस खानेवाला प्राणी या मनुष्य तेरी हिंसा न करे। जो घातपात करनेवाला है उससे दूर हो और जो हिंसाशील है वह तुझे न जाने। " इसका तात्पर्य यह है कि हिंसाशील प्राणियोंके आघातसे किसी की अपमृत्यु न होवे। वीरवृत्तीसे युद्धादिमें जो मृत्यु होती है उसका यहां निषेध नहीं है। दीर्घायु प्राप्त करनेवाले मनुष्य धर्मयुद्धमें न जाते हुए घरमें छिपकर मृत्युसे बचे, यह इसका आशय नहीं। वह मृत्यु तो अमरत्व प्राप्त करानेवाली है। यहां जिससे बचनेका आदेश है वह हिंसक जानवरोंके द्वारा होनेवाली मृत्यु सिंह, व्याघ्र, सांप आदिके कारण अथवा ऐसे जन्तुओंके कारण जो अपमृत्यु होती है उससे बचनेका तथा कुसंगति से बचनेका उपदेश यहां किया है। दीर्घायु प्राप्त करनेके जो इच्छुक हैं उनको उचित है कि वे इन आपत्तियोंसे अपने आप का बचाव करें।

अवनतिके पाश।

जो मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं वे अपने आपको मृत्युके और अवनतिके पाशोंसे बचावें। दीर्घायु प्राप्त करनेके उपायका आशय ही यह है, इस विषयमें देखिये-

दैव्या वाचा निर्ऋत्याः पाशेभ्यः त्वा उद्धरामसि। (मं० ३)
मृत्योः पड्वीशं अवमुञ्चमानः। (मं. ४)

"दिव्य वाणी अर्थात् जो शुद्ध वाणी है, उसकी सहायतासे निर्ऋतिके पाशोंसे तुझे हम ऊपर उठाते हैं। मृत्युके पाशको हम खोलते हैं।" निर्ऋति अर्थात् अधोगतिके पाश बडे कठिन होते हैं। जो उनमें अटक जाते हैं उनकी अवनति होती है। निर्ऋति क्या है ? और ऋति क्या है इसका विचार इस प्रकार है—

निर्ऋति	ऋतिः
एकाकी जीवन	सैन्यसमूह, संघ.
अगति, विरुद्धगति	गति, प्रगति
युद्धसे भागना, अधर्मयुद्ध	धर्मयुद्ध
अमार्ग	मार्ग
अवनति	उन्नति
असत्य, अयोग्यता	सत्य, योग्य,

नाश, विनाश	रक्षण, अमरत्व
अपवित्रता,	पवित्रता
तम, अंधकार,	प्रकाश, स्वच्छता
सडावट. रोग	नीरोगता,
आपत्ति, विपत्ति	संपत्ति
संकट	अनुकूलता
विरुद्ध परिस्थिति	अनुकूल परिस्थिति
शाप	वर
मृत्यु	मृत्यु दूर करना
असत्य, असत्यमें रमना.	सत्य, सत्याग्रह

निर्ऋति के और मृत्युके पाश कौनसे हैं और उनसे कैसा बचाव करना चाहिये, इसकी कल्पना इस कोष्टकका विचार करनेसे पाठकोंके मनमें सहजहीमें आसकती है। निर्ऋतिके इन पाशोंको तोडना चाहिये, और ऋतिके साथ अपना संबंध जोडना चाहिये। दीर्घायु प्राप्त करनेवाले इसका अच्छी प्रकार मनन करें, इसी विषयमें और देखिये—

ते मनः तत्र मा गात्। मा तिरः भूत। (मं० ७)

एतं पन्थानं मा गाः। एष भीमः। (मं० १०)

"तेरा मन इस अधोगतिके, निर्ऋतिके मार्गमें कभी न जावे, तथा उस मार्गमें जाकर वहींही कदापि न छिप जावे। इस अवनतिके मार्गसे मत् जा, क्योंकि यह बडा भयानक मार्ग है।" यह मार्ग बडा भयानक है, इससे जो जाते हैं वे दुर्गतिको पंहुंचते है, अतः कोई मनुष्य इस मार्गसे न जावे। अर्थात् जो दूसरा सत्यका मार्ग है उससे जाकर अभ्युदय और निःश्रेयसकी प्राप्ति करें। निर्ऋतिका मार्ग अंधकारका है, अतः जाते समय ठोकरें लगती हैं और गिरावटभी भयानक होती है, अतः कहते हैं—

एतत् तमः, मा प्रपत्थाः, ते परस्तात् भयं।
अर्वाक् अभयम्। (मं० १०)
तमः त्वा मा विदत्। (मं० १६)

" यह अन्धकार है, इसमें तू न गिर, क्योंकि इस मार्ग से जानेसे तेरे लिये आगे भय उत्पन्न होगा। जबतक तू उस मार्गमें नहीं जाता और इस सत्यमार्ग परही रहता है, तब तक तू निर्भय है। भय तो उस असत्यके मार्गपर ही है। उस गिरावटके मार्ग में जानेका मोह तुझे उत्पन्न न हो। "

ये आदेश सर्व साधारणके लिये उपयोगी हैं,अतः इनका मनन सबको करना योग्य है। जिससे आयु क्षीण होगी उन बातोंको अपने आचरणमें लाना योग्य नहीं है। मनुष्यको प्रतिक्षणमें गिरावटके मार्गमें जानेका मोह होता है, उस मोहसे अपने आपका बचाव करना हरएकका कर्तव्य है। इसीसे दीर्घ आयु प्राप्त होनेमें सहायता होती है। मनुष्य गिरावट के प्रलोभनमें न फसे इस बातकी सूचना देनेके लिये निम्नलिखित मंत्र कहा है—

ज्ञान और विज्ञान।

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम्।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम्। (मं० १३)

" ज्ञान और विज्ञान, फुर्ती और चापल्य, तथा रक्षक और जाग्रत तेरी रक्षा करें।" यहां जो ये छः नाम हैं वे विशेष मनन करने योग्य हैं। विशेष कर जो मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं उनको तो ये छः शब्द बडेही बोधप्रद हो सकते हैं—

१ बोध उसको कहते हैं कि जो इंद्रियोंसे जगत्का ज्ञान प्राप्त होता है, जो भी पहिला भास है।

२ प्रतिबोध वह है कि जो विचार और मनन के पश्चात् सत्यज्ञान होता है तथा जो अन्यान्य प्रमाणोंकी कसौटीसे भी सत्य होता है।

यह ज्ञान और विज्ञान मनुष्यको मोहमें गिरानेवाला न हो। सत्य ज्ञान और सत्यविज्ञान कभी गिरानेवाला अथवा मोह उत्पन्न करनेवाला नहीं होता है, तथापि शत्रुके द्वारा जो फैलाया जाता है, उसीको ज्ञान विज्ञान मान कर कई भोले लोग उसको स्वीकारते हैं, और भ्रममें पडते हैं, मोहवश होते हैं और गिरते है। इसलिये इस मंत्रमें कहा है कि 'ज्ञान विज्ञान मनुष्यकी रक्षा करनेवाला हो।' जो मनुष्य ज्ञान विज्ञान प्राप्त करते हैं, वे विचार करें कि जो ज्ञान विज्ञान हम ले रहे हैं, वह सच्चा ज्ञान विज्ञान है वा नहीं और इससे हमारी सच्ची रक्षा होगी या नहीं। शत्रुके दिये हुए भ्रमोत्पादक ज्ञानसे (वस्तुतः अज्ञानसे) आयु, आरोग्य और बल क्षीण हो जाता है और सत्य ज्ञानसे आयु, आरोग्य तथा बल वृद्धिको प्राप्त होता है। इससे पाठकोंको पता लगा ही होगा कि ज्ञान और विज्ञान का महत्त्व दीर्घायुकी प्राप्तिमें कितना है; अब आगे देखिये—

फूर्ति और स्थिरता।

(३) अस्वप्न शब्दका अर्थ निद्रा न आना नहीं है, वह तो रोगी अवस्था है। निद्रा तो मनुष्यके लिये अत्यंत आवश्यक है। यहां 'अ-स्वप्न' का अर्थ है 'सुस्तीका न होना' मनुष्य सुस्त रहना नहीं चाहिये। फुर्ती मनुष्यके अन्दर अवश्य चाहिये। फुर्तीके विना मनुष्य विशेष पुरुषार्थ कर नहीं सकता। अतः यह गुण मनुष्यके लिये सहायक है।

(४) अनवद्राण का अर्थ है न भागना, मंदगति न होना, पीछे न हटना। जो भूमिका प्राप्त की है, उसमें रहना और संभव हुआ तो आगे जानेकी तैयारीमें रहना।

वस्तुतः उन्नतिके पथमें जानेके लिये ये गुण बडे उपयोगी हैं, परंतु कई मनुष्योंमे ऐसे कुछ वेढंगकी फुर्ती होती है कि उसीसे उनकी हानि होती है। इसलिये यहां यह मंत्र पाठकोंको सावध कर रहा है कि ऐसी फूर्ति और गतिसे बचो और जिससे अपनी निःसंदेह उन्नति होगी ऐसी फूर्ति अपनेमें बढाओ। पुरुषार्थी मनुष्यमें फूर्ति तो चाहिये परंतु ऐसी चाहिये कि जो विघातक न हो। पहिले कहे ज्ञान और विज्ञान गुरु आदिसे प्राप्त करने होते है, ये फूर्ति और गति अपनेही अन्दर होते हैं, परंतु विशेष रीतिसे उनको ढालना पडता है। इसके पश्चात् दो और गुण शेष है, उनका विचार अब देखिये-

रक्षा और जाग्रति।

(५) गोपायन् उसका नाम होता है कि जो दूसरोंका संरक्षण करता है, इसका अर्थ रक्षा करनेवाला है।

(६) जागृवि जागता हुआ रक्षा कार्यमें दत्तचित्त होता है। अर्थात् ये दोनों रक्षा कार्य करनेवाले हैं।

यहां 'जागृविः गोपायन् च त्वा रक्षतां'। (मं० १२) जागता हुआ और रक्षा करनेवाला तेरी रक्षा करें ऐसा कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि कई जागनेवाले रक्षाका कार्य नहीं करते और कई रक्षक भी रक्षाका कार्य नहीं करते। देखिये चोर रात्रीका जागता है, परंतु वह जनताकी रक्षा नहीं करता. इसी प्रकार कई रक्षक कार्य-पर नियुक्त हुए ओहदेदार भी प्रजाकी रक्षा नहीं करते, परंतु रिश्वतें आदि खाकर प्रजाको सताते हैं। इस प्रकारके अनंत लोग है जो जागते हैं और रक्षाके कार्यमें अपने आपको रखते भी हैं, परंतु लोगोंको इनसे अपने आपका बचाव करना चाहिये। क्यों

कि ये स्वार्थसाधक हैं। अतः लोग विचार करें कि सच्चे रक्षक कौन हैं और जन-हित करनेके लिये कौन जागते रहते हैं। जो सच्चे रक्षक हैं उनकोही रक्षक मानना और जो स्वार्थसाधक हैं उनको दूर करना चाहिये। तभी सच्ची रक्षा होगी, कल्याण होगा, जनतामें शान्ति रहेगी और अन्तमें ऐसी सुस्थितिमें आयुभी दीर्घ होगी, और नीरोग अवस्था रहनेसे जनता सुखी होगी। दीर्घायु प्राप्त करनेमें ये सब बातें सहायक हैं, इनके बिना अकेलेके वैयक्तिक प्रयत्नसे पर्याप्त दीर्घायु नहीं प्राप्त हो सकती। अर्थात् सामाजिक और राजकीय परिस्थिति अनुकूल रहनेसे मनुष्यकी आयु दीर्घ होती है और प्रतिकूल होनेसे आयु घटती है। इसीलिये स्वतंत्र देशके लोग दीर्घजीवी होते हैं, और परतंत्र देशमें अल्पायु प्रजा होती है।

सामाजिक पाप।

दीर्घजीवी मनुष्यको सामाजिक और राजकीय कर्तव्य भी है यह दर्शानेके उद्देश्यसे इस सूक्तमें स्वतंत्र आदेश विशेष रीतिसे कहा है—

जीवेभ्यः मा प्रमदः। (मं० ७)

' संपूर्ण जीवोंके लिये अपना कर्तव्य करनेके समय तू प्रमाद न कर। ' इससे स्पष्ट होता है कि हरएक मनुष्य का अन्य प्राणियोंके संबंधमें कुछ विशेष कर्तव्य है, अर्थात् अन्य मनुष्य और अन्य पशुपक्षी जीवजन्तु आदिके संबंधमें कुछ कर्तव्य हैं और उसमें प्रमाद होना नहीं चाहिये। प्रमाद होनेसे इस व्यक्तिका और समाजकाभी नुकसान होगा अतः प्रमाद न करते हुए यह कर्तव्य करना चाहिये। यह कर्तव्य ठीक प्रकार होनेसे मनुष्य दीर्घायु हो सकता है। अर्थात् इस सामाजिक कर्तव्यको निर्दोष रीतिसे करनेवाले लोग समाजमें जितने अधिक होंगे, उतने उस समाजमें दोष कम होंगे, और उस प्रमाणसे उस देशके मनुष्योंकी आयु दीर्घ होगी। सामाजिक कार्य के विषय में उदासीन और सामाजिक कार्यको प्रमादयुक्त करनेवाले लोग जिस समाज में अधिक होंगे उस समाजमें अल्पायु लोगोंकी संख्या अधिक होगी। जबतक संपूर्ण समाज निर्दोष नहीं होता तबतक मनुष्यों की दीर्घायु नहीं होगी। दूषित समाजमें एक व्यक्ति कितनी भी निर्दोष हुई तथापि सब समाजके दोषोंका परिणाम उस व्यक्ति पर होगा ही। इसलिये सांघिक जीवन की निर्दोषता करना आवश्यक है।

पितॄन् मा अनुगाः। (मं० ७)

"हे मनुष्य! तू पितरोंके पीछे न जा।" अर्थात् शीघ्र न मर। यह आदेश

मनुष्यको दीर्घायु प्राप्त करनेकी प्रेरणा करनेके उद्देश्यसे कहा है। यदि मनुष्य प्रयत्न करेगा, तो उसको दीर्घ जीवन प्राप्त होगा, अन्यथा उसकी आयु अल्प होती जायगी।

सूर्यप्रकाशसे दीर्घायु।

दीर्घ जीवन प्राप्त करनेके लिये सूर्यप्रकाश बडा सहायक है। जो लोग अपनी आयु बढाना चाहते हैं वे इस अमृतपूर्ण सूर्यप्रकाशसे अवश्य लाभ उठावें—

सूर्यः ते तन्वे शं तपाति। (मं० ५)
अस्माल्लोकात् अग्नेः सूर्यस्य संदृशः मा छित्थाः। (मं० ४)
इह अमृतस्य लोके सूर्यस्य भागे अस्तु। (मं० १)

"सूर्य तेरे शरीरको सुख देनेके लिये ही तपता है। अतः सूर्यके प्रकाशसे अपना संबंध न छोड। यहां अमृतपूर्ण स्थान अर्थात् सूर्यके प्रकाशित भागमें रह।" इसीसे दीर्घ आयु होगी। जो लोग तंग मकानके अंधेरे तंग कमरेमें रहते हैं, जहां सूर्यप्रकाश उनको नहीं मिलता वे अल्प जीवी होते हैं। शरीरके चमडीपर सूर्यप्रकाश लगना चाहिये। थोडासा अधिक सूर्यप्रकाश चमडीपर लगा तो जिनको कष्ट होते हैं वे दीर्घजीवनके अधिकारी नहीं हैं। मनुष्य सदा कपडोंसे वेष्टित रहते हैं अतः वे सूर्यके जीवनसे वंचित रहते हैं। यदि मनुष्य सूर्यातपस्नान करेंगे तो उनके रक्तमें सूर्यकिरणोंसे जीवनविद्युत् घुसेगी और उनको अधिक लाभ होगा। सूर्यके विषयमें प्रश्नोपनिषद्में कहा है—

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं
यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥ ५ ॥
प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥ ८ ॥

प्रश्न उ० १

"सूर्य ही प्राण है और जो सब अन्य मूर्त अथवा अमूर्त है वह रयि है। यह सूर्य प्रजाओंका प्राण है जो उदयको प्राप्त होता है।" इतनी सूर्यकी महिमा है, अतः इस सूक्तमें कहा है कि, 'सूर्यके प्रकाशसे अपना संबंध न छोड।' क्यों कि यह सूर्यप्रकाश ऐसा है कि, जिससे मनुष्यकी आयुष्यमर्यादा वृद्धिंगत हो जाती है। जो जो प्राणी सूर्य-प्रकाशसे अपना संबंध छोडते हैं वे अल्पायु होते हैं। मानो, सूर्य ही जीवनका समुद्र है, इसलिये इससे दूर होना अयोग्य है। सूर्यके समान अन्य देव भी मनुष्यका दीर्घ जीवन करते हैं इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखिये—

भगः अंशुमान्सोमः मरुतः देवाः इन्द्राग्नी स्वस्तये उत् । (मं० २)
मातरिश्वा वातः तुभ्यं पवताम् । (मं० ५)
आपः अमृतानि तुभ्यं वर्षन्ताम् । (मं० ५)
इह विश्वे देवाः तुभ्यं रक्षन्तु । (मं० ७)
अग्नयः जातवेदाः वैश्वानरः [illegible] विद्युतः ते रक्षन्तु । (मं० ११)
द्यौः पृथिवी सूर्यः चन्द्रमाः अन्तरिक्षं त्वा रक्षताम् (मं० १२)
त्रायमाण इन्द्रः जीवेभ्यः त्वा सं-उद् दधातु । (मं० १५)
आदित्या वसव इन्द्राग्नी स्वस्तये त्वा उद्धरन्तु । (मं० १६)
द्यौः पृथिवी प्रजापतिः सोमराज्ञीः ओषधयः त्वा मृत्योः
उदपीपरन् । (मं० १७)

" पृथ्वीस्थानपर प्राप्त होनेवाली देवताएं पृथिवी, जल (आप), अग्नि, वायु, वसु, (सोमराज्ञीः ओषधयः) सोमादि औषधियां, (प्रजापति) प्रजापालक राजा, वैश्वानर, जातवेदा आदि हैं, अन्तरिक्ष स्थानमें रहनेवाली अन्तरिक्ष (आपः) मेघस्थानीय जल, मातरिश्वा वातः, (मरुतः) वायु, चन्द्रमा, इन्द्र, विद्युत्, (प्रजापति) मेघ आदि देवताएं हैं और द्युलोकमें रहनेवाली द्यौः, सूर्य, आदित्य, भग, प्रजापति (परम आत्मा) आदि देवताएं हैं, ये सब देवताएं मनुष्यको दीर्घ आयुष्य देवें। " पाठक जान सकते हैं कि इनमेंसे प्रत्येक देवताका संबंध प्राणीकी दीर्घायुके साथ कैसा है। प्राणी तृषित होनेपर जलसे प्राणधारण करता है, भूख लगनेपर औषधिवनस्पतियां, फूलोंफलों और कन्दोंसे प्राणीको जीवन देती हैं, सूर्यप्रकाश तो सभी पदार्थोंमें जीवन रखता ही है इसी प्रकार अन्यान्य देवतासे जीवन लेकर मनुष्यादि प्राणी प्राण धारण करता है, इस विषयमें विस्तारसे कहनेकी आवश्यकता नहीं है। पाठक स्वयं विचार करके इसकी सत्यता प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

ये सब देव (वयो-धसः) आयुकी धारणा करनेवाले हैं, ये (संधमन्तु) मनुष्यमें दीर्घजीवनकी स्थापना करें। इन देवोंसे जीवनशक्ति प्राप्त करनेका ही नाम यज्ञ है, इसीलिये कहा है कि—

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ भ० गी० ३।११

"यज्ञसे देवोंको संतुष्ट करो और देव तुम सबको संतुष्ट करेंगे, इस प्रकार परस्परको आनन्द प्रसन्न करते हुए तुम सब परम श्रेय प्राप्त करोगे।" इस प्रकार यह यज्ञका

संबंध है, अतः इस सूक्तमें कहा है कि—

वर्हिः प्रमयुः कथा स्यात्? (मं० १६)

"यज्ञ विघातक कैसा होगा?" सच्चा यज्ञ विधिपूर्वक किया जाय तो कभी घातकर्ता नहीं होगा, प्रत्युत पोषक ही होगा। इस रीतिसे सूर्यादि देवोंसे शक्ति प्राप्त करके मनुष्य अपनी शक्तिका विकास कर सकता है और यहां आनन्दसे रहकर दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है। इसी प्राणधारणके विषयमें इस सूक्तमें कहा है—

ते प्राणा अपाना इह रमन्तां। अयं पुरुषः असुना सह। (मं० १)

इह ते असुः, इह प्राणः, इह आयुः, इह ते मनः। (मं० २)

त्वा प्राणः बलं मा हासीत्। ते असुं अनु ह्वयामसि। (मं १५)

इस रीतिसे यज्ञद्वारा देवताओंकी प्रसन्नता करके 'तेरे अन्दर प्राण, अपान, आयु, मन, बल आदि स्थिर रहे।' अर्थात् मनुष्य को दीर्घजीवन प्राप्त हो।

ते जीवातुं दक्षतातिं कृणोमि। (मं० ६)

"मनुष्यमें जो जीवन और बल है" यह सब शुभकर्म करनेके लिये ही है, यज्ञ के लिये ही है। मनुष्य ने जो दीर्घायु प्राप्त करनी है, बहुत बल प्राप्त करना है वह इसी कार्यके लिये है, वह सब श्रेष्ठतम यज्ञरूप कर्मके लिये ही है—

अयं इह अस्तु, अयं इतः अमुत्र मा गात्। (मं० १८)

मृत्योः त्वा उदपीपरम्। (मं० १९)

त्वा आहार्षं, त्वा अविदं, पुनः नवः आगाः। (मं० २०)

हे सर्वाङ्ग! ते सर्वं चक्षुः ते सर्वं आयुः च अविदम्। (मं० २०)

त्वत् निर्ऋतिं मृत्युं अपनिदध्मसि। यक्ष्मं अपनिदध्मसि। (मं० २१)

सहस्रवीर्येण इमं मृत्योः उत्पारयामसि। (मं० १८)

"यह मनुष्य इस लोकमें रहे, परलोक में न जावे, अर्थात् न मरे। मृत्युसे तुझे बचाया है। मृत्युसे तुझे लाया है, मानो तू नया बन कर आगया है, तेरा नयाही जीवन बनगया है। हे सर्वांगसंपूर्ण मनुष्य! चक्षु, आयु आदि सब तुझे प्राप्त हुआ है। तेरेसे दुर्गति, मृत्यु और रोग दूर हुए हैं। हजारों वनस्पतियोंकी औषधियोंके प्रयोग द्वारा तुझे मृत्युसे बचा दिया है।"

इस प्रकार दीर्घ जीवन प्राप्त करनेमें वनस्पति औषधि के विविध प्रयोग करके यह सिद्धि प्राप्त करनी होती है। इसके दीर्घजीवनविषयक उपाय आयुर्वेद, योगसाधन आदिमें विस्तारपूर्वक देखने योग्य है। अतः इनका विस्तार यहां करनेकी आवश्यकता नहीं।

परंतु यहां ' तम और ज्योति ' का संबंध मनुष्य जीवनमें कैसा है इसका विचार विशेष रीतिसे करना चाहिये ।

तम और ज्योति ।

त्वत् तमः व्यवात्, अप अक्रमीत् । ते ज्योतिः अभूत् । (मं० २१)

" तेरेसे अन्धकार दूर हो चुका है और तेरा प्रकाश हुआ है । " इस मंत्रद्वारा जीवनके एक महासिद्धान्त का वर्णन किया है । मनुष्यका जीवन वस्तुतः प्रकाशका जीवन है । बहुत थोडे लोग इसका अनुभव करते है । प्रत्येक मनुष्यका एक एक प्रकाशका वर्तुळ स्वतंत्र है, जैसा जिसका सामर्थ्य अधिक उतना उसका वर्तुळ बडा प्रभावशाली होता है । जिसका आत्मिक बल कम उसका प्रकाशवर्तुळ भी छोटा होता है । यह छोटा या कमजोर भी हुआ तथा आकाशतक, नक्षत्रोंतक फैलने योग्य विस्तृत होता है । मनुष्य जब मरने लगता है तब यह प्रकाशवर्तुळ छोटा छोटा होता जाता है, जो मरनेतक अपने अन्तिम अनुभव बोल सकता है, वह इस बातको प्रत्यक्ष रूपसे कह सकता है । अन्तिम समय क्षणक्षणमें जिसका प्रकाशवर्तुळ छोटा होता है वह वैसा कहता भी है। मनुष्यकी आत्मापर (तमः) अन्धकार या अविद्याका आवरण पडनाही मृत्यु है। अन्तसमयमें यह वर्तुलप्रकाश केवळ अंगुष्ठमात्र रहा तो मृत्यु होती है । यह अनुभव इस मंत्रद्वारा व्यक्त किया है। " हे मनुष्य ! तेरे ऊपर अन्धेरेका आवरण आरहा था, वह अब दूर होगया है और पूर्ववत् तेरी ज्योति जगत्में फैल गयी है। " यह २१ वे मंत्रभागका आशय है । यह आत्मप्रकाशका अनुभव है। यह कोई काल्पनिक बात नहीं है। जितने जगत्का मनुष्यको ज्ञान होता है वहांतक इसका यह प्रकाशवर्तुळ फैला है, मरणसमयमें वहांसे प्रकाशवर्तुल शनैः शनैः छोटा होनेका अनुभव होता है। जिसको शनैः शनैः अन्तिम अनुभव होता है वह कई घण्टे मरणके पूर्व भी कहता है कि यह प्रकाश घट रहा है, परंतु जिसको मरणपूर्व बहुत समय बेहोषी रहती है, वह विचारा कुछ कह नहीं सकता। बेहोशीका अर्थही प्रकाशवर्तुळका संकोच होना। बेहोष होनेवाला मनुष्य कहता ही है कि मेरे आंखके सामने अंधेरा आगया । इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि इसका जो प्रकाश फैला था वह संकुचित होगया, इसलिये इसकी जीवनशक्ति कम हुई और वह मूर्च्छित होगया ।

इतने विचारसे पाठकोंको इस २१ वें मत्रभागका अर्थ ठीक प्रकार विदित हुआ होगा।

दो मार्गरक्षक ।

श्यामश्च शबलश्च यमस्य पथिरक्षी श्वानौ । (मं० ९)

"काला और श्वेत ऐसे दो यमके मार्गरक्षक श्वान हैं।" यहां 'श्वान' शब्दका अर्थ कई लोगोंने 'कुत्ता' किया है और इसका अर्थ ऐसा माना है कि "यमके दो कुत्ते यम-लोकके मार्गमें रहते हैं।" परंतु यह अर्थ ठीक नहीं है। 'श्वान' शब्दका अर्थ यहां "(श्वा-न; श्वः+न) जो कल नहीं रहता" यह है। यम नाम सूर्य अर्थात् काल है, इसके श्वेत दिन और कृष्णवर्ण रात्री का समय ये दो भाग 'कलतक न रहनेवाले,' केवल आज ही रहनेवाले हैं। इस विषयमें वेदमें अन्यत्र कहा भी है-

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च विवर्तेते रजसी वेद्याभिः। ऋ० ६।९।१

"एक (अहः) दिन काला होता है और दूसरा श्वेत होता है।" येही दिन और रात हैं। येही यमके दो-श्वेत और काले मार्गरक्षक हैं। हरएक मनुष्यके मार्गकी रक्षा ये दोनों करते हैं। इनमेंसे प्रत्येक आज हैं परंतु कल तो निःसन्देह नहीं रहेंगे। ये दोनों यमके रक्षक हैं ऐसा जानकर, और हरएकके पीछे ये लगे हैं, कोई इनसे छूटा नहीं है, यह जानकर इन रक्षकोंके सामने कोई पापकर्म न करे और सदा अच्छा सत्कर्म ही किया करें। पाप कर्म करनेसे ये यमके मार्गरक्षक तो किसीको छोडते नहीं। अर्थात् पापीको अवश्य दण्ड मिलेगा। यह दण्ड आयुकी क्षीणता ही है। अन्य रोगादि भी हैं! यह यम वडा प्रबल है किसीको छोडता नहीं, अतः उसको नम्र होकर रहना चाहिये।—

मृत्यवे अन्तकाय नमः। (मं० १)
मृत्युः दयताम्। (मं० ५)

"मृत्युको नमस्कार हो, मृत्यु दया करे" इत्यादि प्रकार मृत्युके सामर्थ्यकी जाग्रति मनमें रखना चाहिये। और उसका डर मनमें रखना चाहिये। उससे दयाकी याचना करना चाहिये। इतनी नम्रता मनमें रही तो मनुष्य सहसा पाप नहीं करेगा। कमसे कम इससे पापप्रवृत्ती न्यून तो अवश्य होगी। इसी प्रकार—

गोपायन्ति रक्षन्ति, तेभ्यः नमः स्वाहा च। (मं० १४)

"जो पालना और रक्षा करते हैं, उनको नमस्कार और समर्पण हो।" इससे पूर्व पालकों और रक्षकोंकी गिनती की है, उन सबके लिये अपनी ओरसे यथायोग्य समर्पण अवश्य होना चाहिये। यही यज्ञ है। जो यज्ञके विषयमें इससे पूर्व लिखा है वह पाठक यहां देखें। यज्ञ और (स्वाहा=स्वा-हा) समर्पण एकही बात है और नमन भी उसीमें संमिलित है।

इस प्रकार विचारवान सुशिक्षित मनुष्य वृद्ध अवस्थामें सत्य ज्ञानका उपदेश देनेमें समर्थ होता है—

उपदेशक ।

जिर्विः विदथं आवदासि । (मं० ६)

" इस प्रकारका वृद्ध मनुष्य अपने ज्ञानका उपदेश कर सकता है । " तबतक किसी को उपदेशक होनेका अधिकारही नहीं है । इससे पूर्व जो जो उपदेश दिया है, उसके अनुसार आचरण करके जो मनुष्य सदाचाररत होकर वृद्ध होता है, वही योग्य उपदेश देनेमें समर्थ होता है । अस्तु । यह सूक्त बडा बोधप्रद और मार्गदर्शक है, अतः पाठक भी इससे बहुत लाभ उठावें ।

इस सूक्तके स्मरण करने योग्य उपदेश ।

(१) इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके । अ० ८।१।१

"जो मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करना चाहता है वह सूर्यके प्रकाशके प्रदेशमें रहे क्यों कि वहां अमृत रहता है ।"

(२) उत्क्रामातः पुरुष, माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ॥अ०८।१।४

"हे मनुष्य ऊपर चढ, मत् गिर, और मृत्युके पाश तोड दे ।"

(३) सूर्यस्ते शं तपाति । अ० ८ । १ । ५

"सूर्य तेरा कल्याण करनेके लिये तपता है ।"

(४) उद्यानं ते पुरुष नावयानम् । अ० ८ । १ । ६

"हे मनुष्य ! तेरी उन्नति हो, अवनति न हो ।" यह वाक्य भगवद्गीता (६।५)के "उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।" अपना उद्धार करना चाहिये, कभी गिरावट करना नहीं चाहिये इस वाक्यके समान है ।

(५) मा जीवेभ्यः प्रमदः ॥ अ० ८ । १ । ७

" प्राणियोंके संबंधमें जो कर्तव्य है उसमें प्रमाद न कर । "

(६) मा गतानामादीधीथा ये नयन्ति परावतम् । अ० ८ । १ । ८

" गत बातोंका शोक न कर वे अधोगतिमें दूरतक ले जाते हैं । "

(७) मात्र तिष्ठ पराङ्मनाः । अ० ८ । १ । ९

" यहां विरुद्ध दिशामें मन करके खडा न रह । "
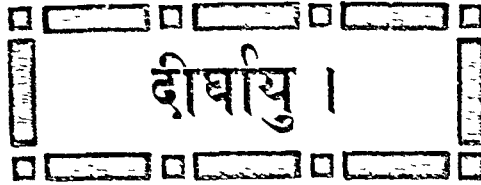
दीर्घायु ।

[२]

(ऋषिः-ब्रह्मा । देवता—आयुः)

आ रंभस्वेमामृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः ॥ १ ॥
जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥ २ ॥

अर्थ—(इमां अमृतस्य श्नुष्टिं आरभस्व) इस अमृत रसके पानको प्रारंभ कर । (ते जरत्-अष्टिः अच्छिद्यमाना अस्तु) तेरा वृद्धावस्था तक जीवन भोग अविच्छिन्न रीतिसे होवे । (ते असुं आयुः पुनः आभरामि) तेरे प्राण और जीवनको मैं तेरे अन्दर पुनः भरता हूं । (रजः तमः मा उपगाः) भोग और अज्ञानके पास न जा । (मा प्र मेष्ठाः) मत् मर जा ॥ १ ॥

(जीवतां ज्योतिः अर्वाङ् अभि-एहि) जीवित मनुष्योंकी ज्योतिको इस ओरसे प्राप्त हो । (त्वा शत-शारदाय आ हरामि) तुझे सौ वर्षकी आयुके लिये लाता हूं ! (मृत्युपाशान् अशस्तिं अवमुञ्चन्) मृत्युके पाशों और अकीर्तिको हटाता हुआ (ते प्रतरं द्राघीयः आयुः दधामि) मैं तेरे लिये उत्कृष्ट दीर्घ आयु देता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—हे रोगी मनुष्य ! तू इस अमृतरस रूपी औषधिरसका पान कर । और दीर्घायुसे युक्त बन । तेरे अन्दर प्राण पुनः स्थिर रखता हूं । तू भोगमय जीवन और अज्ञान के पास न जा । और शीघ्र न मर ॥ १ ॥

जीवित मनुष्योंमें जो एक विलक्षण तेज होता है उसे प्राप्त कर । और सौ वर्ष जीवित रह । मृत्युके पाशको तोड । तेरी आयु बढाता हूं ॥ २ ॥

वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ॥ ३ ॥
प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेकरम् ॥ ४ ॥
अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि।
कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥ ५ ॥

अर्थ-(वातात् ते प्राणं अविदं) वायुसे तेरे प्राणको प्राप्त करता हूं। (अहं सूर्यात् तव चक्षुः) मैंने सूर्यसे तेरे नेत्रको प्राप्त किया है। (यत् ते मनः त्वयि धारयामि) जो तेरा मन है उसको मैं तेरे अन्दर धारण करता हूं। (अंगैः संविस्व) अपने सब अवयवोंको प्राप्त हो। (जिह्वया लपन् वद) जिह्वासे शब्दोच्चार करता हुआ तू बोल ॥ ३ ॥

(जातं अग्निं इव) अभी उत्पन्न हुए अग्निके समान (त्वा द्विपदां चतुष्पदां प्राणेन संधमामि) द्विपाद और चतुष्पादोंके प्राणसे जीवन देता हूं। हे मृत्यो! (ते चक्षुषे नमः) तेरी नेत्र इंद्रियके लिये नमन और (ते प्राणाय नमः अकरं) तेरे प्राणके लिये मैं नमन करता हूं ॥ ४ ॥

(अयं जीवतु) यह पुरुष जीवित रहे, (मा मृत) मत मरे। (इमं सं ईरयामसि) इसको हम सचेत करते हैं। (अस्मै भेषजं कृणोमि) इसके लिये मैं औषध बनाता हूं। हे मृत्यो! (पुरुषं मा वधीः) इस पुरुषका वध न कर ॥ ५ ॥

भावार्थ- वायुसे प्राण, सूर्यसे नेत्र तुझे देता हूं। तेरे अन्दर मन स्थिर रहे, तेरे सब अवयवोंकी पुष्टी होवे और तेरी जिह्वासे उत्तम शब्दोच्चार होवे। ३॥

जिस प्रकार अग्निकी छोटी ज्वालाको धमनीसे थोडा थोडा वायु देकर [illegible] बढावना देते हैं, ठीक उस प्रकार तेरे अन्दर रहे प्राणोंको [illegible] अनेक उपायोंसे प्रदीप्त करते हैं। मृत्युको हम नमस्कार करते हैं [illegible]

यह मनुष्य दीर्घजीवी होवे, शीघ्र न मरे। [illegible] इसको [illegible] करते हैं [illegible] देते हैं। इसकी मृत्यु न हो ॥ ५ ॥

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेस्मा अरिष्टतातये ॥ ६ ॥
आधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥ ७ ॥
अस्मै मृत्यो आधि ब्रूहीमं दयस्वोदितोऽयमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥ ८ ॥

अर्थ- (अहं अस्मै अरिष्ट-तातये) मैं इसको सुखका विस्तार करनेके लिये (जीवलां) जीवन देनेवाली (नघरिषां) हानि न करनेवाली (त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीं) रक्षा करनेवाली, रोग हटानेवाली और बल बढानेवाली, (जीवन्तीं हुवे) जीवनीय औषधिको देता हूं ॥ ६ ॥

(अधि ब्रूहि) तू उपदेश कर, (मा आरभथाः) बुरा बर्ताव न कर, (इमं सृज) इस पुरुषको जगत्में चलाओ, (तव एव सन्) तेराही होकर यह (सर्वहायाः इह अस्तु) पूर्ण आयुतक यहां रहे। (भवा-शर्वौ) हे भव और शर्व ! तुम दोनों (मृडतं) सुखी करो, (शर्म यच्छतं) सुख दो। (दुरितं अपसिध्य) पापको दूर करके (आयुः धत्तं) दीर्घआयु धारण करो ॥ ७ ॥

हे मृत्यो ! (अस्मै अधि ब्रूहि) इसको उपदेश कर, (इमं दयस्व) इस-पर दया कर। (अयं इतः उत् एतु) यह इस विपत्तिसे ऊपर उठे। और (अ-रिष्टः सर्वाङ्गः) पीडारहित सर्व अंगोंसे पूर्ण, (सु-श्रुत) उत्तम ज्ञान या श्रवण शक्तिसे युक्त होकर (जरसा शतहायनः) वृद्धावस्थामें सौ वर्षसे युक्त होकर (आत्मना भुजं अश्नुतां) अपनी शक्तिसे भोगोंको प्राप्त करे ॥ ८ ॥

भावार्थ- इसके दीर्घजीवनके लिये जीवन्ती औषधिके रसको देता हूं। यह आयुष्य बढाने वाली, बल देनेवाली, दोष हटानेवाली, और रोग दूर करनेवाली है ॥ ६ ॥

इस दीर्घजीवनके उपायका जनताको उपदेश कर, कोई बुरा आचरण न करे, यह पुरुष इससे निर्दोष होकर जगत्में संचार करे। इसको दीर्घ-जीवन प्राप्त हो। इसको सुखमय शरीर मिले, रोग और दोष दूर हों और पूर्ण आयु प्राप्त हो ॥ ७ ॥

देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम् ।
आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥ ९ ॥
यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥ १० ॥ (३)
कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोप सेधामि सर्वान् ॥ ११ ॥

अर्थ-(देवानां हेतिः त्वा परिवृणक्तु) देवोंका शस्त्र तुझे दूर रखे। (त्वा रजसः पारयामि) तुझे रजस्‌से पार करता हूं। (त्वा मृत्योः उत अपीपरं) तुझे मृत्युसे उठाया है, तू मृत्युसे दूर होचुका है। (क्रव्यादं अग्निं आरात निरूहं) मांसभक्षक अग्निको दूर रखता हूं। (ते जीवातवे परिधिं दधामि) तेरे जीवनके लिये मर्यादा निश्चित करता हूं ॥ ९ ॥

हे मृत्यो! (यत् ते अनवधर्ष्यं रजसं नियानं) जो तेरा अजिंक्य रजोमय मार्ग है (तस्मात् पथः इमं रक्षन्तः) उस मार्गसे इस पुरुषकी रक्षा करते हुए हम (अस्मै ब्रह्म वर्म कृण्मसि) इसके लिये ज्ञानका कवच करते हैं ॥१०॥

(ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घं आयुः स्वस्ति कृणोमि) तेरे लिये प्राण अपान, बुढापा, दीर्घ आयु और अन्तमें मृत्यु कल्याणमय करता हूं। (वैवस्वतेन प्रहितान् चरतः सर्वान् यमदूतान्) विवस्वान सूर्यसे उत्पन्न कालके भेजे हुए सर्वत्र संचार करनेवाले सब यमदूतोंको (अपसेधामि) मैं दूर करता हूं ॥ ११ ॥

भावार्थ- इसको आरोग्य प्राप्तिका उपदेश कर, मृत्यु इसपर इस समय दया करे, यह सब प्रकार अभ्युदयको प्राप्त होवे, इसके सब अवयव पूर्ण रीतिसे बढें, निर्दोष हों। यह ज्ञानवान होकर पूर्णायु होवे और अन्ततक अपने प्रयत्नसे अपने लिये आवश्यक भोग प्राप्त करे ॥ ८ ॥

देवोंके शस्त्र तुझपर न गिरें। तुझे भोगवृत्तिसे परे ले जाता हूं। मृत्युको हटाता हूं। मुर्दोंको जलानेवाला अग्नि तेरे पाससे दूर होवे और तू पूर्णायुकी अन्तिम मर्यादातक जीवित रह ॥ ९ ॥

मृत्युका अजिंक्य मार्ग है, तथापि उससे हम इसकी रक्षा करते हैं। और इसको ज्ञानका कवच देते हैं जिससे इसकी रक्षा होगी ॥ १० ॥

आरादराँतिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवापं हन्मसि ॥ १२ ॥
अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥१३॥
शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥ १४ ॥

अर्थ-(अरातिं) शत्रु, (निर्ऋतिं) दुर्गति, (ग्राहिं) रोग, (क्रव्यादः) मांस-भक्षक जन्तु, (पिशाचान्) मांस खानेवाले (रक्षः) विनाशक और (यत् सर्वं दुर्भूतं) जो सब अहितकारी है, (तत् तम इव) उसको अन्धकारके समान (परः आरात् अपहन्मसि) दूर हटाता हूं॥ १२॥

(अमृतात् आयुष्मतः जातवेदसः अग्नेः) अमर, आयुवाले जातवेद अग्निसे (ते प्राणं वन्वे) तेरे प्राणको प्राप्त करता हूं। (यथा अमृतः न रिष्याः) जिससे अमर होकर तू न विनष्ट होगा। (सजूः असः) उसके साथ रह, (तत् ते समृध्यतां) वह तेरा कार्य समृद्धियुक्त होवे॥ १३॥

(द्यावापृथिवी ते असन्तापे) द्यौ और पृथ्वी लोक तेरे लिये सन्ताप न करनेवाले, (शिवे अभिश्रियौ) शुभ और श्रीसे युक्त (स्तां) हों। (सूर्यः ते शं आतपतु) सूर्य तेरे लिये सुख देता हुआ प्रकाशित होवे। (ते हृदे वातः शं वातु) तेरे हृदयके लिये वायु सुखदायी होकर बहे। (दिव्याः पयस्वतीः आपः) आकाश के मेघमंडल से प्राप्त होनेवाले और पृथ्वीपर बहनेवाले जलप्रवाह (त्वा शिवाः अभिक्षरन्तु) तेरे लिये शान्ति देते हुए बहते रहें॥ १४॥

भावार्थ—प्राण अपना, वृद्धावस्था, दीर्घ आयु आदिके कारण तुझे सुख प्राप्त हो। तुझे कष्ट देनेवाले जो होंगे उनको मैं दूर करता हूं॥ ११॥

शत्रु, विपत्ति, रोग, विनाशक, घातक, और क्षीणता करनेवाले जो होंगे उनको दूर हटाता हूं॥ १२॥

अमर और आयु देनेवाले अग्नि देवसे मैं तेरे लिये प्राण लाता हूं। इससे तेरी मृत्यु नहीं होगी। तू यहां जीवित रह और समृद्धिसे युक्त हो॥ १३॥

शिवास्ते सन्त्वोषधय उत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥ १५ ॥
यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे३ तत् कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥ १६ ॥
यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥ १७ ॥

अर्थ-(ते ओषधयः शिवाः सन्तु) तेरे लिये औषधियां शुभ गुणयुक्त हों। (अधरस्याः उत्तरां पृथिवीं) नीचली भूमिसे ऊपरकी ऊंची भूमिपर (त्वा अभि उत् आहार्षं) तुझे मैंने लाया है। (तत्र सूर्याचन्द्रमसौ उभौ आदित्यौ त्वा रक्षतां) वहां सूर्य और चन्द्र ये दोनों आदित्य तेरी रक्षा करें॥ १५ ॥

(यत् ते परिधानं वासः) जो तेरा ओढनेका वस्त्र है, (यां त्वं नीविं कृणुषे) जिस वस्त्रको तू कमरपर बांधता है, (तत् ते तन्वे शिवं कृण्मः) वह तेरे शरीरके लिये सुखदायक बनाते हैं। वह वस्त्र (ते संस्पर्शे अद्रूक्ष्णं अस्तु) तेरे स्पर्शके लिये खुरदरा न होवे अर्थात् मृदु होवे ॥ १६ ॥

(वप्ता मर्चयता सुतेजसा क्षुरेण) तू नापित स्वच्छता करनेवाले तेज धारवाले छुरासे (यत् केशश्मश्रु वपसि) जो बालों और मूंछोंका मुंडन करता है उससे (शुभं मुखं) सुंदर मुख बना और (नः आयुः मा प्रमोषीः) हमारी आयुका नाश न कर ॥ १७ ॥

भावार्थ-द्युलोक,अन्तरिक्षलोक, भूलोक में रहनेवाले सब पदार्थ अर्थात् सूर्य, वायु, जल आदि सब तेरे लिये सुख देनेवाले हों ॥ १४ ॥

औषधियां तुझे अपने शुभगुणोंसे सुख दें। इसको मृत्युकी हीन अवस्थासे नीरोगी उच्च अवस्थामें मैंने लाया है। यहां सूर्यचन्द्रादि तेरी रक्षा करें। जो तेरा ओढने और पहननेका वस्त्र है वह तेरे लिये मृदु सुखकारक स्पर्श करनेवाला हो ॥ १५-१६ ॥

उत्तम तेज छुरेसे जो नापित हजामत बनाता है उससे मुखकी सुंदरता बढती है। यह नापित किसीकी आयु का नाश न करे ॥ १७ ॥

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥ १८ ॥
यदश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः ।
यदाद्यं१ यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ॥ १९ ॥
अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि ।
अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ॥ २० ॥ (४)
शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ २१ ॥

अर्थ- (व्रीहियवौ ते शिवौ) चावल और जौ तेरे लिये कल्याणकारी और (अ-बलासौ अदो-मधौ स्तां) कफ न करनेवाले और खानेके लिये सुख दायक हों। (एतौ यक्ष्मं वि बाधेते) ये दोनों रोगका नाश करते हैं, और (एतौ अंहसः मुञ्चतः) ये दोनों पापसे मुक्त करते हैं ॥ १८ ॥

(यत् कृष्याः धान्यं अश्नासि) जो कृषिसे उत्पन्न होनेवाला धान्य तू खाता है और (यत् पयः पिबसि) जो दूध तू पीता है, (यत आद्यं यद्-अनाद्यं) जो खाने योग्य और जो खाने अयोग्य है (ते तत् सर्वं अविषं कृणोमि) तेरे लिये वह सब विषरहित करता हूं ॥ १९ ॥

(त्वा अह्ने च रात्रये च उभाभ्यां परिदद्मसि) तुझे मैं दिन और रात्री इन दोनों समयोंके लिये सौंप देता हूं। (मे इमं) मेरे इस मनुष्य की (अरायेभ्यः जिघत्सुभ्यः परि रक्षत) अदानी भूखोंसे रक्षा कर॥२०॥

(ते शतं हायनान्) तेरी सौ वर्षकी आयु जिसमें (द्वे युगे) दिन रात्रीके दो संधि हैं, तथा (त्रीणि) सर्दी गर्मी और वृष्टी ये तीन काल और (चत्वारि) बाल्य, तारुण्य, मध्यम और वृद्ध ये चार अवस्थाएं हैं

भावार्थ— चावल, जौ आदि धान्य तेरे लिये सुखदायी, खानेके लिये स्वादु, कफ आदि दोष न उत्पन्न करनेवाला, नीरोगता बढानेवाला और पापवृत्ति हटानेवाला हो ॥ १८ ॥

जो कृषिका धान्य और गौका दूध खाया पीया जाता है वह सब विषरहित हो ॥ १९ ॥

दिन और रात्रीके समय शत्रुओंसे तेरी रक्षा हो ॥ २० ॥

शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः॥ २२॥
मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्। तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा बिभेः २३
सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः। न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः॥२४॥

इस प्रकारकी आयुको (अ-युतं कृण्मः) अटूट अथवा अखंडित करते हैं। (इन्द्राग्नी विश्वेदेवाः अहृणीयमानाः) इन्द्र, अग्नि और सब देव विना संकोच करते हुए (ते अनुमन्यन्तां) तेरी आयुका अनुमोदन करें॥२१॥

(शरदे हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय) शरत्, हेमन्त, वसन्त, ग्रीष्म इन ऋतुओंके लिये (त्वा परि दद्मसि) तुझे हम सौंप देते हैं,। (येषु ओषधीः वर्धन्ते) जिस ऋतुमें औषधियां बढती हैं, वह (वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि) वृष्टिका ऋतुभी तुम्हारे लिये सुखकारी हो॥ २२॥

(मृत्युः द्विपदां ईशे) मृत्यु द्विपादोंपर प्रभुत्व करता है, (मृत्युः चतुष्पदां ईशे) मृत्यु चार पांववालों पर अधिकार चलाता है। (तस्मात् गोपतेः मृत्योः) उस जगत्के स्वामी मृत्युसे (त्वां उद्धरामि) तुझे ऊपर उठाता हूं। (सः मा बिभेः) वह तू अब मृत्युसे मत डर॥ २३॥

हे (अ-रिष्ट) अहिंसित मनुष्य! (सः न मरिष्यसि) वह तू नहीं मरेगा। (न मरिष्यसि, मा बिभेः) नहीं मरेगा, अतः मत डर। (तत्र न वै म्रियन्ते) वहां नहीं मरते हैं तथा (अधमं तमः नयन्ति) हीन अन्धकारके प्रतिभी नहीं जाते हैं॥ २४॥

भावार्थ— सौ वर्षकी दीर्घ आयु तुझे प्राप्त हो और इस आयुमें दोनों संधिकाल,सर्दी गर्मी और वृष्टिके तीनों समय, सुखकारक हों। तेरी आयुकी बाल्यादि चारों अवस्थाएं एकके पीछे यथाक्रम तुझे प्राप्त हों॥ २१॥

शरत्, हेमन्त, शिशिर और वर्षा ये सब ऋतु तुझे सुखदायी हों। वृष्टिसे जो वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं वह तेरे लिये सुख देवें॥ २२॥

सब द्विपाद, चतुष्पाद प्राणियोंपर मृत्यु अधिकार चलाता है, उस मृत्युके पाससे तुझे ऊपर निकाला है, अब तू मत् डर॥ २३॥

अब तू नहीं मरेगा। अतः अब डरनेका कारण नहीं है। जहां कोई मरते नहीं और जहां अंधेरा नहीं, ऐसे स्थानमें तुझको लाया है॥ २४॥

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥ २५ ॥
परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः ।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ॥ २६ ॥
ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः ।
मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि ॥ २७ ॥

अर्थ-(यत्र इदं ब्रह्म) जहां यह ज्ञान और (जीवनाय कं परिधिः क्रियते) जीवनके लिये सुखमयी मर्यादा की जाती है (तत्र) वहां (गौः अश्वः पशुः पुरुषः) गाय,घोडा, पशु और मनुष्य (सर्वः वै जीवति) सब कोई जीवित रहता है ॥ ॥ २५ ॥

(समानेभ्यः सबन्धुभ्यः) समान बान्धवोंसे होनेवाले (अभिचारात् त्वा परिपातु) हमलेसे तेरी रक्षा होवे । तू (अ-माम्रिः अमृतः वा अति-जीवः) अक्षीण, अमर और दीर्घजीवी हो । (असवः ते शरीरं मा हासिषुः) प्राण तेरे शरीरको न छोडें ॥ २६ ॥

(ये एकशतं मृतवः) जो एकसौ एक मृत्यु हैं, (या अतितार्याः नाष्ट्राः) जो पार करने योग्य नाश करनेवाली हैं (तस्मात्) उससे (देवाः वैश्वा-नरात् अग्नेः) सब देव वैश्वानर अग्निकी शक्तिसे (त्वां) तुझे (अधिमुञ्चन्तु) मुक्त करें ॥ २७ ॥

भावार्थ-जहां यह ज्ञान और दीर्घजीवनकी विद्या है वहां गाय घोडा मनुष्य आदि सब दीर्घायु होते हैं ॥ २५ ॥

अपने बन्धुबान्धवोंके आक्रमणसे तेरी रक्षा करते हैं। तू नीरोग होकर दीर्घायु हुआ है । तेरे प्राण तुझे अब नहीं छोडेंगे ॥ २६ ॥

जो सैंकडों प्रकारसे आनेवाले मृत्यु हैं, और नाशके जो अन्य साधन हैं वे परमेश्वरकी कृपासे दूर हों ॥ २७ ॥

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा ।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् ॥ २८ ॥ (५)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अर्थ-(अग्नेः पारयिष्णु शरीरं असि) अग्निका पार करनेवाला शरीर तू है (रक्षोहा सपत्नहा असि) घातकों और शत्रुओंका नाशक तू है। (अथो अमीवचातनः) और रोग दूर करनेवाला है। (पू-तु-द्रुःनाम भेषजं) पवित्रता, वृद्धि और गति देनेवाला यह औषध है ॥ २८ ॥

भावार्थ-तैजस तत्त्वका शरीर ही तेरा है। अतः तू स्वयं घातकोंका नाश करनेवाला है। तू स्वयं रोगोंको दूर करनेवाला है। तेरेही अन्दर पवित्रता, वृद्धि और गति करनेकी शक्ति है। अतः उससे तू दीर्घायु हो ॥ २८ ॥

दीर्घायु बननेका उपाय।

मृत्युका सर्वाधिकार।

दीर्घायु बननेकी इच्छा हरएक प्राणीके अन्तःकरणमें रहती है। परंतु मृत्युका अधिकार सबके ऊपर एकसा है, इस विषयमें इस सूक्तमें कहा है—

मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्। (मं० २३)

"द्विपाद और चतुष्पाद इन सब प्राणियोंपर मृत्युका अधिकार है।" द्विपाद प्राणी दो पांववाले होते है जैसे मनुष्य, पक्षी आदि। चतुष्पाद प्राणी चारपांववाले पशु आदि होते है। इनसे अन्य भी जो प्राणी हैं जिनको बहुपाद और अपाद भी कहा जासकता है, इन सब प्राणियोंपर मृत्युका प्रभुत्व है। अर्थात् मृत्युके आधीन ये सब प्राणी है। मृत्युके अधिकारके बाहर इनमेंसे कोई नहीं है। सबकी अन्तिमगति मृत्युके आधीन है। मृत्यु जबतक इस लोकमें इन प्राणियोंको रहने देगा तबतक ही वे रहेंगे, और जिस दिन मृत्यु प्राणीको लेना चाहेगा, तब प्राणी यहांसे चल बसेंगे। इस लिये मृत्युसे दयाकी याचना करते हैं—

मृत्यो ! इमं दयस्व। (मं० ८)

"हे मृत्यु ! इसपर दया कर।" सर्वाधिकारी होता है, यह दया करेगा तो ही अपना कुछ कार्य बनेगा। और यदि उसने प्राणियोंपर क्रोध किया, तो फिर उनकी रक्षा कौन करेगा। परंतु वैसा देखा जाय तो मृत्यु के हाथमें सर्वाधिकार रहते हुए भी

[illegible] आधीन है। [illegible] रहता है, अतः दीर्घ [illegible] रहनेके कुछ नियम हैं। उन नियमोंके अनुसार वर्तनेवालोंको ही लाभ हो सकता है। अतः इन नियमोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, इसी ज्ञानका उपदेश करना चाहिये। यही उपदेश करने योग्य विषय है। इस कारण कहा है—

जीवनीय विद्याका उपदेश।

अभिब्रूहि। (मं० ७) अस्मै अधि ब्रूहि। (मं० ८)
अस्मै ब्रह्म वर्म कृण्मसि। (मं० १०)
सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्॥ (मं० २५)

"मनुष्योंको इस जीवनीय विद्याका उपदेश कर। मनुष्योंको दीर्घायु बननेके नियमोंका उपदेश दे। जिसमे जीवनकी अवधितक सुखपूर्वक रहनेका और दीर्घजीवनके नियमोंका ज्ञान सबको उपदेशद्वारा दिया जाता है, वहां मनुष्य तो दीर्घजीवी होते ही हैं, परंतु उस देशके गाय घोडे आदि पशु भी दीर्घजीवी होजाते हैं।"

दीर्घजीवनकी विद्या है, उसमें प्राणियोंको दीर्घजीवन प्राप्त करनेके लिये विशेष नियम हैं। उन जीवनीय नियमोंका ज्ञान जनताको देनेके लिये उपदेशक नियुक्त करना चाहिये। इनका यही कार्य होगा कि ये ग्रामग्राममें जांय, वहांकी जनताका जीवनक्रम देखें, उनका व्यवहार देखें और उनके रहने सहनेके अनुसार उनका दीर्घजीवन होनेके लिये योग्य उपदेश दें। इस प्रकार हरएक ग्रामके लोगोंको उपदेश दिया जाय। उनसे जो भूलें होती हों, उनके विषयमें उनको समझाया जाय और उनके जीवनमें ऐसा परिवर्तन लाया जाय कि, जिससे दीर्घायु प्राप्त होने योग्य दैनिक व्यवहार वे कर सकें।

ज्ञानका कवच।

इस सूक्तके दसवें मंत्रमें 'ब्रह्म वर्म' अर्थात् 'ज्ञानरूपी कवच' बनानेके विषयमें कहा है। ज्ञान यह बडा भारी कवच है। अन्य कवच ये क्षुद्र कवच हैं। सबसे विशेष प्रभावशाली कवच ज्ञानका कवच है। मानो, ज्ञानके कवचकी निचली श्रेणीपर अन्य कवच होते हैं। इस कारण जिसने ज्ञानका कवच पहन लिया वह सबसे अधिक सुरक्षित होता है। यहां तो यहांतक लिखा है कि जिसने ज्ञानका कवच पहन लिया उसको तो मृत्युकाभी डर नहीं रहता। इतना ज्ञानके इस कवचका सामर्थ्य है। मृत्युका

सामर्थ्य सबसे अधिक है, परंतु जो मनुष्य ज्ञानका कवच पहनता है उसपर मृत्युके छलभी कार्य नहीं कर सकते। ज्ञानका कवच जिसने पहन लिया है वह मृत्युके पाशों को तोड सकता है देखिये—

अवमुञ्चन्मृत्युपाशानशस्तिं। (मं० ७)
देवानां हेतिः त्वा परि वृणक्तु। (मं० ९)

" मृत्युके पाशोंको और अवनतिके बन्धनोंको तोड दो। देवोंके शस्त्र तुझे वर्जित करें।" अर्थात् देवोंके शस्त्र तेरे ऊपर न गिरें। यह अवस्था तब बनती है जब मनुष्य ज्ञानका कवच पहनता है। ज्ञानका कवच पहिने हुए मनुष्यको मृत्युके पाश बांध नहीं सकते, दुर्गति उसके पास नहीं आसकती और देवोंके शस्त्र उसको काट नहीं सकते। इतना सामर्थ्य इसमें होनेसे ही इस जीवनीय विद्याका ज्ञान मनुष्यको प्राप्त करना चाहिये। इसी ज्ञानके बलसे ज्ञानी मनुष्य मृत्युकोभी आदेश देनेमें समर्थ होता है, देखिये—

मृत्यो! मा पुरुषं वधीः। (मं० ५)
देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु। पारयामि त्वा मृत्योरपीपरम्।
आरादग्निं क्रव्यादं निरूहम् ॥ (मं० ९)
यत्ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम्।
पथ इमं तस्माद्रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥ (मं० १०)
वैवस्वतेन प्रहितान्यमदूतांश्चरतोऽपसेधामि सर्वान्। (मं०११)
तस्मात्त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा बिभेः ॥ (मं० २३)

" हे मृत्यो! अब तू इस पुरुषका वध न कर। देवोंके शस्त्रोंसे इसका वध न हो। मैं इस ज्ञानसे इसको रज तमरूपी मृत्युसे पार करता हूं। प्रेतदाहक अग्निसे भी इसको दूर रखता हूं। हे मृत्यो! जो तेरा रज और तमयुक्त मार्ग है और जो अजेय है, उस मार्गसे हम इसका बचाव करते है। क्योंकि हमने ज्ञानरूपी कवच इसके लिये बनाया है। इसी ज्ञानसे हम सब यमदूतोंको भी दूर हटा सकते हैं। मृत्युसे हम इसको ऊपर उठाते हैं, अब डरनेका कोई कारण नहीं है।"

यह ज्ञानरूपी कवचकी महिमा है। ज्ञानी मनुष्य मृत्युको भी कह सकता है कि "हां, इस समय मरनेके लिये फुरसत नहीं है, जब समय मिलेगा, तब देखा जायगा।" ज्ञानीको मृत्युके पाश बांध नहीं सकते। देवोंके शस्त्र उसपर कार्य नहीं करते। मार्गमें मृत्युके भयसे रक्षा करनेवाला एकमात्र ज्ञानही है। यमदूतोंका भय दूर करनेवाला शुद्ध ज्ञानही है। इस प्रकार यह ज्ञानकाही चमत्कार है।

जहां जहां वेदमंत्रोमें मृत्युका भय हटानेकी बात कही है, वहां इस ज्ञानसेही मृत्युभय दूर होता है ऐसा समझना चाहिये । मृत्युका भय दूर करनेवाला ज्ञान बहुत विस्तृत है । आयुर्वेद इसी जीवनीय ज्ञानको प्रकाशित करता है । इसका सारांशरूपसे वर्णन वेदमंत्रोंमें स्थानस्थानपर है । इस सूक्तमें भी थोडा थोडा वह ज्ञान दिया है देखिये—

रजस्तमः मा उपगाः । मा प्रमेष्ठाः ॥ (मं० १)

" रज अर्थात् भोगजीवन और तम अर्थात् ज्ञानहीन जीवन इन दो हीन जीवनोंको न प्राप्त हो । इनसे दूर रहनेसे तू मरेगा नहीं ।" यह मंत्र जीवनीय विद्याका एक प्रधान मंत्र है । रजोगुणी जीवन और तमोगुणी जीवन आयुष्यका नाश करता है । वैसा जीवन नहीं व्यतीत करना चाहिये, जिससे मृत्युसे बचना संभव होगा । रजो और तमोगुणी जीवन का लक्षण और फल भगवद्गीतामें कहा है—

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षाविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥
यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥
म० गी० अ० १७

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ ७ ॥
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥
सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥१८॥म०गी०१४

८ तमः=अज्ञान, हीनता आदि सब तमोगुणके प्रकार दूर करने चाहिये। इससे हरएक प्रकारकी अवनति होती है और अल्पायु भी होती है।

९ रजः=[के विषयमें पूर्व स्थलमें कहा ही है, यह शब्द यहां इन मंत्रोंमें नहीं आया है। पीछेके मंत्रसे लिया है।]

१० अभिचार— (समानेभ्यः सबन्धुभ्यः अभिचारः) अपने समान जो अपनी सभ्यतावाले अपने भाई हैं, उनसे हमले होते हैं। ये हमले भी विघातक होनेसे इनके कारण विपत्ति और मृत्युभी होते हैं। अतः अपने बन्धुबान्धवोंमें एक विचार होना चाहिये जिससे आयु बढनेमें सहायता होगी। ये एक प्रकारके हमले हैं, इनसे भिन्न दूसरे प्रकारके भी हमले होते हैं वे (विषमेभ्यः अबन्धुभ्यः अभिचारः) अपनी सभ्यतासे विपरीत सभ्यतावाले शत्रुओंसे जो हमले होते हैं वे भी अकाल मृत्यु करनेवाले होते हैं, अतः इस प्रकारके शत्रु सदाके लिये दूर करने चाहिये। कोई किसीके ऊपर हमला न करे और सब आनन्द प्रसन्न रहते हुए सुखसे रहें।

११ शरीरं असवः मा हासिपुः=किसी अन्य प्रकारसे होनेवाले अकाल मृत्यु भी न हों। सब लोग (अ-मम्रिः) मरियल न हों, (अ-मृतः) अकालमें न मरें, और (अतिजीवः) अतिदीर्घ कालतक जीवित रहें। मनुष्यको ये तीन बातें साध्य करना है कि मरियल न रहना, अकालमें न मरना और अतिदीर्घ आयु प्राप्त करना। इसके विरुद्ध तीन विघ्न हैं जो ये हैं, एक मरियल होना, रोगादिकोंसे क्षीण होना; दूसरा अकालसे तथा व्रणादिसे पीडित होना और अल्प आयु होना। मनुष्यका प्रयत्न इन विपत्तियोंको हटानेके लिये होना चाहिये।

१२ एकशतं मृत्यवः= एकसौ एक मृत्यु हैं। मृत्यु इतने अनेक प्रकारके हैं। इन सबको हटाना मनुष्यका कर्तव्य है। जीवनविद्याके नियमोंके अनुकूल व्यवहार करनेसे ये सब अपमृत्यु होते हैं। जो महामृत्यु है वह दूर होगा परंतु हटेगा नहीं, अपमृत्यु सौ हों, या अधिक हों, वे सब दूर किये जासकते हैं।

१३ नाष्ट्राः= जो अन्य नाशक साधन हैं वे भी (अतिवार्याः) दूर करने योग्य हैं। जिस जिस कारणसे मनुष्यादि प्राणीका नाश होता है, घात होता है, क्षीणता होती है, अवनति होती है, उन्नति रुक जाती है वे सब कारण हटाना अत्यंत आवश्यक है।

१४ तस्मात् मुञ्चतु– पूर्वोक्त विपत्तियोंसे बचाव करनेका नाम मुक्ति है। यह मुक्ति मनुष्य इसी लोकमें प्राप्त कर सकता है और यह प्राप्त करना मनुष्यका आवश्यक

कर्तव्य है। 'वैश्वानर' की कृपासे यह मुक्ति प्राप्त हो सकती है। वैश्वानर उसको कहते हैं कि, जो (विश्व) सब (नर) मनुष्योंका एक अभेद्य संघ होता है। मानव संघने अपना ऐसा व्यवहार करना चाहिये कि जिससे सबका सुख बढे, सबकी उन्नति हो और कोई पीछे न रहे। संघटित प्रयत्नसे सबका भला हो सकता है। संघटना मानवी उन्नतिका मूल मंत्र है।

इस प्रकार इन मंत्रोंमें मानवी विपत्तिके कारण दिये हैं और उनको दूर करनेके उपाय भी कहे हैं। पाठक इनका विशेष विचार करें।

इससे पूर्व बता ही दिया है कि वेदको तीन बातें सिद्ध करना अभीष्ट है-(१) एक (अ-म्रिः) लोग मरियल न हों, हृष्टपुष्ट नीरोग और सुदृढ बनें, (२) दूसरे लोग (अ-मृतः) अमर जीवनसे युक्त, अर्थात् अमृतरूपी सुखमय जीवनवाले बनें और (३) तीसरे मनुष्य (अतिजीवः) दीर्घजीवी बनें। वेदको अभीष्ट है कि मनुष्य समाज ऐसा बने, यही बात अन्य शब्दोंसे निम्नलिखित मन्त्र भागोंमें कही है—

ते अच्छिद्यमाना जरदष्टिः अस्तु। (मं० १)

द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि। (मं० २)

अयं जीवतु, मा मृत, इमं समीरयामि, सर्वहाया इहास्तु। (मं०७)

"तेरी अविच्छिन्न वृद्धावस्था होवे। दीर्घ आयु उत्कृष्टरूपसे तेरे लिये धारण करता हूं। यह मनुष्य जीवित रहे, मत मरे, इसको सचेत करता हूं यह पूर्ण आयु होकर यहां रहे।"

ये सब मंत्र भाग मनुष्य की दीर्घ आयु होने योग्य समाजकी रचना करनेके सूचक हैं। दीर्घ आयु प्राप्त करनेके लिये व्यक्तिके अंदरका तथा समाजके अन्दरका पाप कम होना चाहिये, इसकी सूचना देनेके लिये कहा है—

अपसेध्य दुरितं धत्तमायुः। (मं० ७)

"पापको दूर करके दीर्घ आयुको धारण करिये।" यही दीर्घायु प्राप्त करनेका उपाय है। जबतक अंदर पाप होगा, तबतक आयु क्षीण ही होती जायगी। व्यक्तिका पाप व्यक्तिमें होता है और संघका पाप संघमें होता है, इस पापसे जैसी व्यक्तिकी वैसी संघकी आयु क्षीण होती है। अतः पापको दूर करना दीर्घायु प्राप्ति के लिये अत्यंत आवश्यक है। जब पाप दूर होगा, तब मनुष्य सौ वर्षकी आयुके लिये योग्य होगा—

जीवतां ज्योतिः अर्वाङ् अभ्येहि त्वा शतशारदाय आ हरामि । (मं०
ते जीवातवे परिधिं दधामि । (मं० ९)

"जीवित लोगोंकी ज्योतिके पास आ, तुझे सौ वर्षकी दीर्घ आयुके लिये मैं प्राप्त करता हूं । तेरे लिये सौ वर्षकी आयुष्यकी अवधी निश्चित करता हूं ।" यह सौ वर्षकी आयुष्य मर्यादाका निश्चय उन लोगोंके लिये हो सकता है कि जिन्होंने अपना जीवन पवित्र किया है, पापरहित किया है और पुण्य संचयसे युक्त किया है । इस प्रकार दीर्घजीवनके साथ मनुष्य के पापपुण्यका संबंध है । पाठक इस बातका अवश्य विचार करें ।

प्राणधारणा ।

दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये शरीरमें प्राण स्थिर रहना चाहिये । प्राण जबतक अशक्त अवस्थामें शरीरमें रहेगा तबतक दीर्घायु प्राप्त होना असंभव है, यह बात स्पष्ट करनेके लिये कहते हैं—

ते असुं आयुः पुनः आभरामि । (मं० १)

"तेरी आयु और प्राणको तेरे अन्दर मैं पुनः भर देता हूं ।" यह इस लिये कहा है कि पाठकोंके अन्दर यह विश्वास जमा रहे कि यदि किसीके प्राण अत्यन्त निर्बल हुए हों, तोभी उनमें पुनः बल भर दिया जा सकता है । इस कारण निर्बल बना हुआ मनुष्य हताश न होवे, निरुत्साहित न बने; परंतु उत्साह धारण करे कि मैं वेदकी आज्ञाके अनुसार चलकर फिर नवीन बल प्राप्त कर सकता हूं और अपने अन्दर प्राणका जीवन पुनः संचारित करा सकता हूं । यह किस प्रकार साध्य किया जा सकता है ? इसकी विधि यह है—

वातात्ते प्राणमाविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत्ते मनस्त्वयि तद्धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ॥ (मं० ३)

"वायुसे प्राण, सूर्यसे चक्षु तेरे लिये प्राप्त करता हूं, इस प्रकार तूं सब अंगोंसे युक्त हो, मन भी तेरे अंदर स्थापित करता हूं । तूं जिह्वासे भाषण कर ।" यहां जीवनका साधन बताया है । वायुसे प्राण प्राप्त होता है, सूर्यसे आंख प्राप्त होती है । सूर्यदर्शन करनेसे नेत्रके बहुत दोष दूर होते हैं, सुबेशाम प्रतिदिन टकटकी लगाकर सूर्यदर्शन करनेसे कईयोंके आंख सुधर गये हैं, और जिनको आयनकके विना पढना असंभव था वे उक्त उपायसे विना आयनक पढने लगे हैं । इसी प्रकार जिनको प्राण

स्थानके रोग होते हैं, क्षय राजयक्ष्मा आदि तथा रक्त स्थानके पाण्डुरोग आदि रोग होते हैं, उनको भी शुद्ध वायुके सेवनसे और योग्य प्राणायामादि यौगिक उपायोंसे पुनः आरोग्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार मृत्तिका, जल, अग्नि, सूर्यप्रकाश, वनस्पति, औषधि, चन्द्रप्रकाश, विद्युत् आदिके योग्य सेवनसे और उत्तम प्रयोगसे पुनः उत्तम जीवनकी और दीर्घआयु की प्राप्ति हो सकती है। दीर्घजीवन और आरोग्य प्राप्तिका अति संक्षेपसे यह साधन है। मनुष्यके सब अंग, अवयव इंद्रियां आदि सबका सुधार इससे हो सकता है। यह उपाय विनामूल्य बहुत अंशोंमें होसकता है और युक्तिपूर्वक करनेसे लाभ भी निश्चयसे हो सकता है। यह 'निसर्गचिकित्सा' का मूलमंत्र है। पाठक इसका इस दृष्टिसे विचार करें। यह उपाय किस रीतिसे करना चाहिये, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र विशेष मनन पूर्वक देखने योग्य है-

अग्निं जातमिव प्राणेन त्वा संधमामि॥ (मं० ४)

" नवीन उत्पन्न हुए अग्निके समान प्राणसे तुझे बल देता हूं।" हवन कुण्डमें, चूल्हेमें या किसी अन्य स्थानपर अग्नि प्रदीप्त करनेके समय प्रारंभमें बहुत सावधानीसे अग्निको मंदवायु देना पडता है और सहज जलने योग्य सूखी लकडी अग्निके साथ लगानी पडती है। अन्यथा अग्नि बुझ जानेका भय रहता है। इसी प्रकार बीमार मनुष्य को भी सहज हाजम होने योग्य अन्न देना चाहिये, प्राणायामादि योगसाधनभी थोडा थोडा करना चाहिये, औषध और पथ्यका सेवनभी योग्य प्रमाणसे करना चाहिये। ऐसा न किया तो लाभके स्थानपर हानी होगी। इसलिये कहा है कि अग्नि सिलगानेके समान प्राणकी शक्ति शनैः शनैः बढानी चाहिये। योगसाधन, औषधिसेवन तथा अन्य उपायोंसे आरोग्यवर्धन या दीर्घजीवन प्राप्त होसकता है, परंतु सुयोग्य प्रमाणसे यह सब करना चाहिये। शरीरमें भी यह जीवनाग्नि ही है। हवनकी अग्निके समान ही इसको शनैः शनैः बढाना पडता है। यह नियम हरएक पाठकको ध्यानमें धारण करना आवश्यक है। क्योंकि अन्य संपूर्ण साधन उपस्थित होनेपरभी इस नियमका पालन न करनेपर लाभकी आशा करना व्यर्थ है। परंतु इस रीतिसे जो लोग अपना लाभ सिद्ध होनेके लिये साधन करेंगे, उनका निःसन्देह भला हो सकता है, अतः कहा है—

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति। (मं० ११)

" मैं तेरे प्राण और अपान पुष्ट करता हूं, तेरा बुढापा, तेरी मृत्यु और तेरी दीर्घ आयुके विषयमें तेरा कल्याण होगा ऐसा प्रबंध करता हूं।" यदि तो कोई मनुष्य

अपनी दीर्घ आयु और उत्तम आरोग्यके लिये पूर्वोक्त प्रकार यत्न करेगा, तो नियमपूर्वक चलनेपर उसको लाभ तो अवश्यही होगा। इस मंत्रसे यह विश्वास हरएकके मनमें उत्पन्न हो सकता है। नियमपूर्वक चलनेवालेकी कभी अधोगति नहीं होगी। जातवेदस् अग्निसे दीर्घजीवन प्राप्त करनेके विषयमें निम्नलिखित मन्त्रमें कहा है--

> अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः।
> यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत्ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम्॥
> (मं० ११)

" तेरा प्राण आयुष्य बढानेवाले जातवेद अग्निसे प्राप्त करता हूं, जिससे तू अमर हो कर नहीं मरेगा, यह तेरा अमरत्व प्राप्तिका कार्य सफल होवे। " जातवेद अग्निसे दीर्घायुकी प्राप्तिका संभव इस मंत्रमें बताया है। अग्नि आयु देनेवाला है, ज्ञान और धन देनेवाला है, जीवन देनेवाला है, अमरत्व देनेवाला है। वेदमें अग्निदेवके ये कार्य वर्णन किये हैं। अग्निसे ये गुण किस रीतिसे प्राप्त करने होते हैं, इसका विचार पाठकोंको करना चाहिये। हमारे विचारसे आग्नेयधर्म विशिष्ट सुवर्ण पारद आदि पदार्थोंके प्रयोगोंसे तथा भल्लातक, केशर, चित्रक आदि वनस्पति भागोंसे मनुष्य नीरोगता और दीर्घायु प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त ' अग्नि ' शब्दका अर्थ जाठर अग्नि भी है और जिसके देहमें यह अग्नि उत्तम अवस्थामें रहता है उसको नीरोगता और दीर्घायु प्राप्त होनेमें शंकाही नहीं है। तथा जिन औषधिप्रयोगोंसे जाठर अग्नि उत्तम कार्य करनेवाला होता है वे सब चिकित्साके प्रयोग इस में संमिलित होते हैं।

जाठर अग्नि।

जाठर अग्नि चार प्रकारका होता है। मन्द, तीक्ष्ण, विषम, और सम ये इस जाठर अग्निके चार भेद हैं। इसका वैद्यक ग्रन्थोंमें इस प्रकार वर्णन आता है—

> मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः।
> कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः॥
> विषमो वातजान्रोगान्तीक्ष्णः पित्तनिमित्तकान्।
> करोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान्कफसंभवान्॥
> समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते।
> स्वल्पापि नैव मन्दाग्नेर्विषमाग्नेस्तु देहिनः॥
> कदाचित्पच्यते सम्यक्कदाचिच्च न पच्यते।

तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात्समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते ॥ (भा० नि०)

" विषम जाठर अग्नि वातरोगोंको निर्माण करता है, तीक्ष्ण अग्नि पित्त रोग बढाता है, मन्दाग्नि कफविकार उत्पन्न करता है। समाग्नि उत्तम प्रमाणमें भक्षण किया हुआ अन्न योग्य रीतिसे पचन करता है। मन्दाग्नि, तीक्ष्णाग्नि अथवा विषमाग्नि ये जाठर अग्नि ठीक नहीं। इनके कारण कभी पचन होता है कभी नहीं, परंतु जो समाग्नि है। वह सबसे श्रेष्ठ है।" अर्थात् आरोग्य और दीर्घायु प्राप्त करनेके इच्छुक लोगोंको यह समाग्नि अपनेमें स्थिर करना चाहिये। इस अग्निका स्थान अपने देहमें देखिये—

वामपार्श्वाश्रितं नाभेः किञ्चित्सोमस्य मण्डलम्।
तन्मध्ये मण्डलं सौर्यं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः॥
जरायुमात्रप्रच्छन्नः काचकोशस्थदीपवत् ॥ (भा०)

तथा—

सूर्यो दिवि यथा तिष्ठन् तेजोयुक्तैर्गभस्तिभिः।
विशोषयति सर्वाणि पल्वलानि सरांसि च॥
तद्वच्छरीरिणां भुक्तं ज्वलनेनाभिमाश्रितः।
मयूखैः पच्यते क्षिप्रं नानाव्यञ्जनसंस्कृतम्॥
स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यवमात्रः प्रमाणतः।
कृमिकीटपतङ्गेषु वालमात्रोऽवतिष्ठते॥ (रस० प्र०)

" नाभिके वाम भागमें सोमका मण्डल है, मध्यमें सूर्य मण्डल है, उसके अन्दर अग्नि व्यवस्थासे रहा है। जैसा शीशे में दीप होता है" इस अग्निको सम रखना मनुष्यका कार्य है, सब वैद्योंको भी यही कार्य करना चाहिये। इसी प्रकार- "जैसा सूर्य आकाश में रहता हुआ अपने किरणोंसे सब जल स्थानोंको सुखाता है, उस प्रकार यह जाठर अग्नि प्राणियोंका भक्षण किया अन्न अपने किरणोंसे पकाता है, स्थूल देहवाले प्राणियोंमें यह जौके समान होता है और छोटे कृमियोंमें यह वाल के समान सूक्ष्म प्रमाण में रहता है।" इसीसे सब अन्न पचता है, आरोग्य स्थिर रहता है और दीर्घ-जीवन प्राप्त होता है। जैसा सूर्यके सामने घने बादल आनेसे और मेघाच्छादित दिन अनेक दिवस रहनेसे सौर शक्ति न प्राप्त होनेके कारण प्राणियोंकी पाचनशक्ति कम होती है, वर्षाऋतुमें इसी कारण पचन शक्ति क्षीण होती है, इसी प्रकार प्राणियोंके अन्दर का जाठर अग्नि प्रदीप्त स्थितिमें बहुत समय न रहा तो पाचनशक्ति कम होती है, अपचन होता है, रोग बढते हैं और जीवनकी मर्यादा क्षीण हो जाती है। इस प्रकार

जाठर अग्निके सम होने और विषम होनेसे प्राणियोंकी जीवन मर्यादा संबंधित है। इसी कारण (मंत्र १२ वेमें) अग्निको अर्थात् जाठर अग्निको (आयुष्मत्) आयुवाला अर्थात् आयु बढानेवाला, जिसके पास आयु है, (अमृतः) अमर, रोगादि कम करनेवाला, जिसके पास रोग और मृत्यु नहीं होते,(अग्नेः प्राणं) इस जाठर अग्निसे प्राणशक्ति-जीवनशक्ति बढती है, इत्यादि विशेषण प्रयुक्त हुए हैं । इन सब विशेषणोंकी सार्थकता इसका स्वरूप जाठराग्नि है ऐसा माननेसेही हो सकती है । इसके निम्नलिखित संस्कृत नामभी शरीरस्थ जाठराग्निके विषयमें कैसे संगत होते हैं यह देखिये—

१ तनू-न-पात् = शरीर को न गिरानेवाला, शरीरका पतन न होने देनेवाला,

२ पावकः = पवित्रता करनेवाला,

३ हुतभुक्, हव्यभुक् = अन्न खानेवाला,

४ पाचनः = पचन करनेवाला,

५ आश्रयाशः, आशयाशः= पेटमें गया अन्न खानेवाला ।

ये जाठर अग्निके नाम कितने सार्थ हैं यह भी पाठक यहां देख सकते हैं। यहां तक जाठर अग्निके गुणोंका वर्णन वैद्यक ग्रंथोंमें है । पाठक इसका यहां विचार करें। अब अग्निके गुण वैद्यशास्त्रमें क्या लिखे हैं सो देखते हैं—

(अग्नितापः) वात कफस्तम्भताशीतकम्पघ्नः ।
आमाशयकरः रक्तपित्तकोपनश्च ॥ (राज० भा०)

"अग्निका ताप वात, कफ, स्तब्धता, शीत और कम्पको दूर करता है, रक्त और पित्तका प्रकोप करता है । आमाशय अर्थात् पेटको ठीक करता है ।" यदि अग्नितापसे भी वात कफ और शीत संबंधके रोगोंमें लाभ होते हैं तो प्रतिदिन हवन करनेवाले लोग और हवनकी अग्निसे शरीरको तपानेवाले लोग कमसे कम इन रोगोंसे तो बच सकते हैं । हवनसे यह एक लाभ वैद्यक ग्रंथोंके प्रतिपादन द्वारा सिद्ध हुआ है । अब औषधि उपायका विचार करते हैं—

औषधिप्रयोग ।

दीर्घ आयु प्राप्त करनेके अनेक उपाय हैं, उनमें औषधिका सेवन भी एक उपाय है। योग्य औषधिका सेवन योग्य रीतिसे करनेसे रोग दूर होते हैं, नीरोगता बढती है और दीर्घ आयु भी प्राप्त हो जाती है । इसलिये इस सूक्तमें कहा है—

इमां अमृतस्य श्रुष्टिं आरभस्व । (मं० १)

"हे मनुष्य ! तू इस अमृत रसके पानका प्रारंभ कर।" अर्थात् औषधीका रस जो जीवनवर्धक होगा उसका योग्य रीतिसे सेवन कर। 'अमृत-श्नुष्टि' का अर्थ अमरत्व देनेवाला रसपान है। ऐसे रसपानका सेवन करना चाहिये कि जो अमरपनको बढानेवाला हो। अमरपन का अर्थ दीर्घ जीवन, दीर्घ आरोग्य और रोगोंसे पूर्णतया दूर रहना है। जो औषधिरस इन गुणोंकी वृद्धि करते हैं उनका सेवन करना योग्य है। अतः कहा है—

कृणोम्यस्मै भेषजं, मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥ (मं० ५)

"इस मनुष्यके लिये रोगनिवृत्तिके उद्देश्यसे मैं औषध बनाता हूं. हे मृत्यु ! अब इस पुरुषका वध न कर।" इस मंत्रसे स्पष्ट है कि पूर्वोक्त प्रकार विविध चिकित्साएं करनेसे मनुष्य पूर्ण रोगमुक्त हो सकता है और उसका मृत्युभय दूर हो जाता है। इसी विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखिये—

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवे स्मा अरिष्टतातये ॥ (मं०६)

"मैं इस रोगीको सुखका विस्तार करनेके लिये जीवन देनेवाली और कभी हानी न करनेवाली रक्षा करनेवाली, रोग हटानेवाली और बल बढानेवाली जीवन्ती नामक औषधीको देता हूं।" इस मंत्रमें जीवन्ती औषधीका उपयोग करनेका विधान है। इस औषधीका नाम जीवन्ती इसलिये है कि यह औषधि मनुष्यको दीर्घ जीवन देती है। (त्रायमाणा) रोगोंसे बचाती है, आरोग्य देती है, (सहस्वती) बल देनेवाली है, मनुष्यको बलशाली करती है इतनाही नहीं परंतु (सहमाना) विविध रोगोंको परास्त करती है, अपने बलसे क्षीणता आदिको हटाती है, इस प्रकार अनेक रीतियोंसे (त्रायमाणा) मनुष्यकी रक्षा करती है। यह औषधी कभी किसीकी हानि नहीं (न घारिषा) करती, सदा किसी न किसी रूपसे लाभ ही पहुंचाती है। इस प्रकार इस जीवन्ती औषधीका वर्णन इस वेदमंत्रमें है। इस जीवन्ती औषधीके विषयमें वैद्यक ग्रंथोंमें निम्नलिखित बातें मिलती हैं—

इसके फूल अत्यंत मीठे होते हैं अतः इसको 'जीवशाक' कहते हैं। इसके मधुर और अमधुर ये दो भेद हैं। मधुर जीवन्तीसे त्रिदोष हटता है और अमधुर जीवन्तीसे पित्त दूर होता है। मधुर जीवन्तीका रस मीठा, शीत वीर्य और परिपाक भी मधुर होता है। इससे दृष्टिदोष दूर होते हैं और प्रायः सभी रोग दूर होते हैं। वा० सू० अ० १५ में (वरा शाकेषु जीवन्ती) शाकमें जीवन्ती श्रेष्ठ शाक है ऐसा कहा है। वैद्य

शास्त्रमें 'जीवन्ती' के अर्थ गुळवेल (गुडूची), हरीतकी, मेदा, काकोली, डोडी, मधुवृक्ष, शमी, इतने हैं। इसके नाम "जीवन्ती, जीवनीया, जीवा, जीवना, मंगल्य नामधेया, जीव्या, जीवदा, जीवदात्री, जीवभद्रा, भद्रा, मंगल्या, यशस्या, जीवद्री, पुत्रभद्रा, जीवश्रेष्ठा, सुखंकरी, जीवपत्री, जीवपुष्पी" संस्कृतमें और वैद्यक ग्रंथोंमें है। इन नामोंसे स्पष्ट हो जाता है कि यह वनस्पति जीवन देनेवाली है। अतः इस विषयमें कहा है–

> जीवन्ती स्वर्णवर्णाभा सुराष्ट्रजा च।
> जीवनयोगाज्जीवन्ती नाम॥ (मद० व० १)

"इस जीवन्ती औषधीका सुवर्णके समान वर्ण है, यह (सौराष्ट्र) काठियावाडमें होती है। इससे दीर्घजीवन प्राप्त होता है, इस कारण इसका नाम जीवन्ती है।"

इसके गुण ये हैं— "मधुर; शीत; रक्त पीत्त वात क्षय दाह ज्वर का नाश करनेवाली, कफ बढानेवाली, वीर्य बढानेवाली, रसायनधर्मवाली और भूतरोग दूर करनेवाली है।

> जीवन्ती शीतला स्वादुः स्निग्धा दोषत्रयापहा।
> रसायना बलकरी चक्षुष्या ग्राहिणी लघुः। (भा०)
> चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवन्ती मधुरा हिमा॥ (अत्रि०अ० १६)

इस प्रकार इस जीवन्ती औषधिके गुण हैं। पाठक इस औषधिका सेवन करें। वैद्यकग्रंथोंमें इसके विविध प्रयोग लिखे हैं और सुयोग्य वैद्यके द्वारा इसके सेवनविधिका ज्ञान हो सकता है। यह उत्तम औषधि है और आरोग्य बल और दीर्घायु देनेवाली है। इसी प्रकार निम्नलिखित मंत्र यहां देखने योग्य हैं—

> शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ।
> शं ते सूर्य आतपतु शं वातो वातु ते हृदे॥
> शिवा अभि रक्षन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः॥ (मं० १४)
> शिवास्ते सन्त्वोषधय उ त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि।
> तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा॥ (मं० १५)

"द्युलोक और पृथ्वी लोकके सब पदार्थ तेरा संताप न बढावें, इतनाही नहीं परंतु वे तेरे लिये शोभा और ऐश्वर्य देवें। सूर्य तेरे लिये सुख देवे, वायु तुझे सुख देवे। जलसे तुझे आनन्द प्राप्त होवे। औषधियां तेरा सुख बढावें। ये औषधियां भूमिसे लायी

हैं। सूर्य और चन्द्र तेरी रक्षा करें।" इन मंत्रोंमें कहा है कि जगत्के सब पदार्थ अर्थात् सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, भूमि, औषधि, जल, वायु, तेज आदि अनन्त पदार्थ मनुष्यका सुख बढावें। मनुष्यको शान्ति दें। मनुष्यका सन्ताप बढानेवाले न हों। इसका तात्पर्य यह है कि ये सब पदार्थ योग्य रीतिसे बर्ते जानेपर मनुष्यका सुख बढानेवाले होते हैं। इन पदार्थोंका उपयोग करनेकी विधि वैद्यग्रंथोंमें अर्थात् आयुर्वेदमें लिखी है। जो पाठक लाभ प्राप्त करनेके इच्छुक हैं वे इसका अभ्यास करें। इसी संबंधमें निम्नलिखित मंत्र देखने योग्य है—

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा।
अथो अमीवचातनः पुतुद्रुर्नाम भेषजम् ॥ (मं० २८)

"अग्निका शरीर रोगोंसे पार करनेवाला है, वह अग्निका शरीर राक्षसों (रोगजन्तुओं) का नाश करता है तथा अन्यान्य शत्रुओंको दूर करनेवाला है। इसी प्रकार वह आमाशयके सब दोषोंको हटाता है। यह पुतुद्रु नामक औषध है।" अग्निका यह वर्णन हरएकको ध्यानमें धारण करनेयोग्य है। अग्नि रोगोंसे पार करनेवाला है; जहां विविध रोग बढते हैं वहां अग्नि प्रदीप्त करनेसे रोगकी हवा वहांसे हट जाती है और वहां नीरोगता हो जाती है। इसलिये जिस ग्राममें सांसर्गिक रोग बहुत फैलते हैं उस ग्राममें नाके नाके पर और गलीगलीमें बृहत् हवन किये जांय तो लाभकारी होगा। आजकल दूषित ग्रामों और स्थानोंमें इसीलिय आग जलाते है।

अग्निको 'रक्षो-हा' अर्थात् राक्षस संहारक कहा है, यहां राक्षस, रक्षस् तथा रक्षः शब्दका अर्थ रोगबीज हैं। रोगबीजोंका नाश अग्नि करता है। आरोग्यके जो अन्यान्य शत्रु हैं उनका भी नाश अग्निसे होता है। रोगकृमि आदि सब रोगबीजोंका नाम राक्षस है ये राक्षस--

ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। वा० यजु० १६।६२

"जो अन्नों और पानपात्रों अर्थात् खानपानके पदार्थोंमेंसे पेटमें जाकर विविध रोग उत्पन्न करते हैं।" यह वर्णन रोगबीजोंका है। रोगबीज अन्न और जल द्वारा पेटमें जाते हैं और रोग उत्पन्न करते है। इनके नाम रुद्र और रक्षस् आदि अनेक हैं। यहां अग्नि इन रोगबीज रूपी राक्षसोंका नाश करनेवाला कहा है। इसी प्रकार अग्नि आमाशयके रोगोंको दूर करनेवाला (अमीवचातनः) है। इसका वर्णन इसी सूक्तकी व्याख्यामें इससे पूर्व बताया है।

अग्नि यह एक 'पु-तु-द्रु' नामक औषध है। यह पुतद्रु क्या है इसका विचार करना चाहिये। 'पु' का अर्थ (पवने) 'पवित्र करना, मल दूर करना, शुद्ध करना' है। 'तु' का अर्थ '(वृद्धौ) वृद्धि, बढना, संवर्धन होना' है और 'द्रु' का अर्थ (गतौ) 'गति, प्रगति' आदि है। जिससे 'पवित्रता, वृद्धि और प्रगति होती है' उसको पुतद्रु औषधि कहते हैं। चिकित्सामें क्या करना चाहिये इसका विधान इस शब्दमें हुआ है। वैद्य रोगी के शरीरसे रोगको दूर करनेके लिये तीन बातें करे-(१) पु=रोगीका शरीर पवित्र शुद्ध और दोषरहित करे, (२) तु=शरीरकी वृद्धि करे, शरीरको पुष्ट करे, शरीर बलवान् करे और (३) द्रु=शरीरकी नीरोग अवस्थामें प्रगति करे। ये तीन बातें प्रत्येक चिकित्सकको करना चाहिये तभी रोगोंका प्रतिकार होगा। चिकित्साके ये तीन मुख्य कार्य हैं। जो इन कार्योंको करता है, वही उत्तम यश प्राप्त करता है। शरीरशुद्धि, शरीरबलवर्धन और व्याधिप्रतिकार ये तीन भाग हैं जिन भागोंका विचार करनेसे पूर्ण चिकित्सा हो जाती है। 'पु-तु-द्रु' इस एकही शब्दने वेदकी चिकित्साशैलीको उत्तम रीतिसे दर्शाया है। यह सर्वांगपूर्ण चिकित्साकी पद्धति है।

वेदने इस एक शब्दमें चिकित्साकी रीति कैसी उत्तम शैलीसे बतायी है यह देखिये। इस रीतिका अवलंबन करनेवाले वैद्य सुख का विस्तार करते हैं—

मृडतं शर्म यच्छतम्। (मं० ७)

"सुखी करो और शान्ति प्रदान करो" पूर्वोक्त प्रकार "पवित्रता, वृद्धि और प्रगति" करनेसे सब लोग सुखी होंगे और सबको शान्ति प्राप्त होगी इसमें कोई संशय नहीं है। सुख शान्ति और दीर्घ आयुष्य यही मनुष्यका प्राप्तव्य इस जगत्में है। इसीका स्पष्टीकरण करनेके लिये निम्नलिखित मंत्र है—

अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन।
आत्मना भुजमश्नुताम्। (मं० ८)

"इस रीतिसे सब अंगों और अवयवोंसे पूर्ण, अक्षीण अवयववाला, उत्तम ज्ञानी, वृद्धावस्थामें सौ वर्षतक जीवित रहनेवाला होकर अपनी शक्तिसे सब भोग प्राप्त करनेवाला बने।" अर्थात् यह मनुष्य अतिवृद्ध अवस्थातक जीवित रहे और उस वृद्ध अवस्थामें भी अपनी शक्तिसे और अपने प्रयत्नसे अपनेलिये भोग प्राप्त करे। परावलम्बी न बने, अन्ततक स्वावलम्बनशील रहे। इस स्थानपर वेद का आदर्श बताया है।

केवल अतिवृद्ध होना वेदको अभीष्ट नहीं है, परन्तु अतिवृद्ध होते हुए नीरोग और बलवान् बनना वेदका साध्य है। प्रत्येक अवयव सुदृढ बने, सब अवयव और इन्द्रिय ठीक अवस्थामें रहें, बल स्थिर रहे और यह सब होते हुए मनुष्य वृद्ध बने यह वेदका आदर्श है। वेद कहता है कि अन्यान्य उपभोगभी मनुष्य लेते रहें; उत्तम कपडे पहनें और सुखसे रहें, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखिये-

यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम्।
शिवं ते तन्वे तत्कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥ (मं० १६)

" जो तेरा ओढनेका वस्त्र तू कमरपर बांधता है वह कपडा तेरे शरीरको सुखदायक हो और वह स्पर्शकेलिये मृदु हो।" खुर्दरा न हो। इस मन्त्रका आशय स्पष्ट तो यह दीखता है कि सुंदर और उत्तम कपडे जिनका स्पर्श शरीरको उत्तम सुखकारक होता है, वैसे उत्तमोत्तम कपडे मनुष्य पहने और शरीरका सुख लें। इसी प्रकार हजामत बनवाकर मुखकी सुंदरता बढानेके विषयमें निम्नलिखित मन्त्र मनन करनेयोग्य है—

यत्क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु।
शुभं मुखं मा न आयुः प्रमोषीः ॥ (मं० १७)

" जो तू नापित स्वच्छता करनेवाले तेजधारवाले छुरेसे जो बालों और मूछोंका मुण्डन करता है, उससे मुख सुन्दर दीखता है, परन्तु यह सुन्दरता किसीकी आयुका नाश न करे।" उत्तम उस्तरेसे हजामत बनाकर मुखकी सुन्दरता बढानेका उपदेश वेदमें इस प्रकार दिया है। हजामत बढनेसे मुख शोभाहीन होता है और हजामत बनानेसे वही मुख सुन्दर होता है, यह कहनेका उद्देश यह है कि मनुष्य हजामत बनावें और अपने मुखकी सुन्दरता बढावें। कोई मनुष्य अपना शोभाहीन मुख न रखे। सब लोग सुन्दर, नीरोग, बलवान्, पूर्णायु और कर्तव्यतत्पर बनें, यह वेदका उपदेश है। इसी प्रकार उत्तम भोजनके विषयमें भी वेदका उपदेश देखने योग्य है—

शिवौ ते व्रीहियवावबलासावदोमधौ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥ (मं० १८)

"चावल और जौ कल्याणकारी हैं, कफ दोषको दूर करनेवाले और भक्षण करनेके लिये मधुर हैं। ये यक्ष्म रोगको दूर करेंगे और दोषोंसे मुक्त करेंगे।" भोजनके विषयमें अनेक मंत्र वेदमें है, उनका इस समय विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। यहां केवल यही बताना है कि. भोजनके विविध पदार्थ भी वेदने दिये हैं अर्थात् जिस

प्रकार वेद बल, आरोग्य और दीर्घ आयु देना चाहता है उसी प्रकार सुंदर वस्त्र और उत्तम भोजन देकर भी मनुष्यकी सुखसमृद्धि बढाना चाहता है। यह भोजन निर्विष होनेकी सूचना भी समय पर वेद देता है, पाठक इसको यहां देखें—

यदश्नासि यत्पिबसि धान्यं कृष्याः पयः।
यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि॥ (मं० १९)

"जो कृषिसे उत्पन्न होनेवाला धान्य तू खाता है जो दुग्धादि पेय पदार्थ पीता है वह सब खाने योग्य और जो न खानेकी चीज हो, वह सब निर्विष बनाता हूं।" अर्थात् वह सब खानपान विष रहित हो। यहां विषसे बचनेकी सावधानी धारण करनेका उपदेश दिया है। मनुष्यके खानपानमें मद्य, गांजा, भांग, अफीम, तमाखू, चा, काफी, आदि अनेकानेक पदार्थ विषमय हैं, इनका परिपाक भी विषरूप है। ऐसे पदार्थ खानेसे मनुष्य का स्वास्थ्य बिगड जाता है और मनुष्य अल्पायु हो जाता है। अतः मनुष्य विचार करे कि जो पदार्थ मैं खाता और पीता हूं, वे कैसे हैं, वे निर्विष हैं या नहीं? वे आरोग्य वर्धक और दीर्घायुकारक हैं या नहीं? ऐसा विचार करके मनुष्य अपने खानपानका सेवन करे। सुयोग्य पदार्थही खानेपीनेमें आने चाहियें परंतु मनुष्यको कभी उचित नहीं कि वह विषमय पदार्थोंकी लालचमें फंसे और अपनी हानि करे। अतः मनुष्यको सदा उत्तम उपदेश श्रवण करना चाहिये, अतः कहा है—

उपदेशक का कार्य।

अधि ब्रूहि, मा रभथाः, सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु। (मं० ७)

" उत्तम उपदेश कर, बुरा काम न कर, इस मनुष्यको जगत्में भेजो, तेरे नियमानुकूल चलता हुआ यह मनुष्य पूर्णायु होकर यहां रहे। उपदेशक इस प्रकारका उपदेश जनताको करे और जनताको ऐसे मार्गसे चलावे कि सारे लोग उपदेश सुनकर बुरे कार्यसे हटें, जगत्में जाते हुए धर्मनियमानुकूल चलें और नीरोग बलवान् और पूर्णायु बनें। तथा सब प्रकारकी उन्नति प्राप्त करें—

अस्मै अधिब्रूहि, इमं दयस्व, अयं इतः उत् एतु। (मं० ८)

" इस मनुष्यको उत्तम उपदेश कर, इस पर दया कर, और इसको ऐसा मार्ग बताओ कि यह यहांसे उन्नति करे" उच्च अवस्था प्राप्त करे। यह उपदेशकोंकी जिम्मेवारी है कि वेही राष्ट्रके लोगोंपर उत्तम शुभ संस्कार डालें, उनको शुभ मार्ग बतावें और वे

सांधे उन्नतिके पथपर ले आवें। जिस देशके और राष्ट्रके उपदेशक इस रीतिसे अपना ज्ञान प्रचारका कर्तव्य उत्तम रीतिसे करते हैं, वहांके लोग नीरोग, सुदृढ, दीर्घायु तथा परम पुरुषार्थी होते हैं। परमपुरुषार्थी मनुष्य अपनी आयुका योग्य उपयोग करे। मनुष्यकी आयुका उत्तरदातृत्त्व उसीके ऊपर है यह बात कोई न भूले—

समयविभाग।

शतं ते युतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः॥ (मं० २१)
शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः॥ (मं० २२)
अह्ने त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि॥ (मं० २०)

"मैं तेरी सौ वर्षकी आयु अखण्डित करता हूं, उसमें दो संधिकालके जोडे, सर्दी गर्मी वर्षा ये तीन काल और बाल्य तरुण मध्यम और वार्धक्य ये चार अवस्थाएं हैं। वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा, शरत्, हेमन्त, आदि ऋतु तेरे लिये शुभ कारक हों। दिन और रात्रीके समयके लिये मैं तुझे सोंप देता हूं।"

दीर्घ जीवन की आयुष्यमर्यादा का सौ वर्षका समय है, उसमें सौ वर्ष, वर्षमें दो अयन, छः ऋतु और तीन काल अर्थात् सर्दी गर्मी और वर्षा ये तीन समय होते हैं। प्रत्येक दिनमें दो संधिकाल और दिन तथा रात्रीका समय इतने समयविभाग होते हैं। इन समयविभागोंके लिये मनुष्य सोंपा हुआ होना चाहिये। समय विभागके लिये मनुष्यका सोंपा हुआ होना, इसका अर्थ यह है कि समयविभागके अनुसार मनुष्यने अपना व्यवहार करना। जो समयविभाग बनाया हो उसके अनुसार ही मनुष्यको अपना कामकाज करना चाहिये। इसीसे बहुत कार्य होता है और उन्नतिका निश्चय भी हो जाता है। अतः इन मंत्रोंके उपदेशसे मनुष्य यह बोध लेवे कि मनुष्यको समयविभागके अनुसार कार्य करना चाहिये, व्यर्थ बेकारीमें समय गमाना उचित नहीं। अपने पास जो समय होगा उसका योग्य उपयोग करना चाहिये। समय का व्यय व्यर्थ नहीं होना चाहिये।

इस सूक्तमें बहुतही उत्तमोत्तम आदेश दिये हैं, जो पाठक इन आदेशोंके अनुसार चलेंगे वे निःसन्देह लाभ प्राप्त कर सकते हैं। विशेषतः दीर्घायु प्राप्त करनेके इच्छुक इस सूक्तसे बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं।

दुष्टोंका नाश।

[३]

(ऋषिः—चातनः । देवता—अग्निः)

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥१॥
अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥२॥

अर्थ—(रक्षो-हणं वाजिनं प्रथिष्टं मित्रं आ जिघर्मि) राक्षसोंका नाश करनेवाले बलवान् प्रसिद्ध मित्रको मैं प्रकाशित करता हूं। और उससे (शर्म उपयामि) सुख प्राप्त करता हूं। (सः क्रतुभिः समिद्धः) वह यज्ञोंसे प्रदीप्त हुआ (शिशानः अग्निः) तीक्ष्ण अग्नि (सः नः दिवा नक्तं रिषः पातु) हमें दिन रात्र शत्रुओंसे बचावे ॥ १ ॥

हे (जातवेदः) जातवेद अग्ने ! (समिद्धः अयोदंष्ट्रः) प्रदीप्त होकर लोहेकी दाढोंसे युक्त होकर (अर्चिषा यातु-धानान् उपस्पृश) अपने प्रकाशसे यातना देनेवालोंको जला। तथा (मूरदेवान् जिह्वया आरभस्व) मूढविशेषोंको अपनी जिह्वारूप ज्वालासे ठीक करना आरंभ कर। (वृष्ट्वा) बलयुक्त होकर (क्रव्यादः आसनि अपि धत्स्व) मांस खानेवाले हिंसकोंको अपने मुखमें डाल ॥ २ ॥

भावार्थ— दुष्टोंका नाश करनेवाला बलवान् प्रसिद्ध हितकर्ता सदा प्रशंसनीय है। इससे सुख प्राप्त होता है। वह उत्तम प्रशस्त कर्म करनेवाला, तीक्ष्ण अथवा उग्र, प्रयत्न करके हमें दिन रात शत्रुओंसे बचावे ॥ १ ॥

ज्ञानी अपने तेजसे दुष्टोंको निर्बल करे, मूढोंको अपने जिह्वाके उपदेशोंसे सुधारे। मांस भक्षक क्रूरोंको अपने मुखसे आच्छादित करे अर्थात् क्रूरतासे निवृत्त करे ॥ २ ॥

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानो वरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥ ३ ॥
अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ॥ ४ ॥
यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥ ५ ॥

अर्थ—हे (उभयाविन् अग्ने) दोनों को जाननेवाले अग्ने ! तू (हिंस्रः शिशानः) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाला तीक्ष्ण बन कर (अवरं परं च उभौ) हमसे निकृष्ट और उत्कृष्ट दोनों प्रकारके शत्रुओंको अपने (दंष्ट्रौ उपधेहि) दाढोंमें रख । (उत अन्तरिक्षे परियाहि) और अन्तरिक्षमें तू संचार कर । और वहांसे (जम्भैः यातु-धानान् अभिसंधेहि) अपने जबडोंसे यातना देनेवाले शत्रुओंपर चढाई कर ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! (यातुधानस्य त्वचं भिन्धि) कष्ट देनेवालेकी त्वचाको छिन्न-भिन्न कर । (हिंस्र-अशनिः हरसा एनं हन्तु) हिंसक विद्युत् वेगसे इसका नाश करे । हे (जातवेदः) जातवेद ! शत्रुके (पर्वाणि शृणीहि) पर्वोंको काट । (क्रविष्णुः क्रव्यात् एनं विचिनोतु) मांसभक्षक क्रूर प्राणी इस दुष्टको पकड पकड कर खा जाय ॥ ४ ॥

हे (जातवेदः) ज्ञानी अग्ने ! तू (यत्र इदानीं) जहां अब (तिष्ठन्तं चरन्तं उत अन्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं पश्यसि) खडे हुए, भ्रमण करने-वाले और अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले यातना देनेवाले दुष्टको देखता है वहां (शिशानः अस्ता शर्वा) तीक्ष्ण शस्त्र फेंकनेवाला शत्रुहिंसक तू (तं विध्य) उस शत्रुका वेध कर ॥ ५ ॥

भावार्थ-दोनों को जाननेवाला देव बलवान और निर्बल हिंसकोंको अपने काबूमें रखे । सब स्थानपर संचार करके कष्ट देनेवाले दुष्टोंको दबावे ॥ ३ ॥ दुष्टोंको पीट कर उनके चमडेको छिन्नभिन्न कर । बिजुलीके आघातसे दुष्टोंका नाश हो । दुष्टोंके जोडोंको काटो । मांस भक्षक हिंसक और क्रूर को पकड पकडकर नाश करो ॥ ४ ॥ जहां कष्ट देनेवाले हिंसक दुष्ट होंगे वहां उनको दबा दिया जावे ॥ ५ ॥

[३]

(ऋषिः–चातनः। देवता—अग्निः)

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्॥१॥
अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन्॥२॥

अर्थ—(रक्षो-हणं वाजिनं प्रथिष्टं मित्रं आ जिघर्मि) राक्षसोंका नाश करनेवाले बलवान् प्रसिद्ध मित्रको मैं प्रकाशित करता हूं। और उससे (शर्म उपयामि) सुख प्राप्त करता हूं। (सः क्रतुभिः समिद्धः) वह यज्ञोंसे प्रदीप्त हुआ (शिशानः अग्निः) तीक्ष्ण अग्नि (सः नः दिवा नक्तं रिषः पातुः) हमें दिन रात्र शत्रुओंसे बचावे॥ १॥

हे (जातवेदः) जातवेद अग्ने! (समिद्धः अयोदंष्ट्रः) प्रदीप्त होकर लोहेकी दाढोंसे युक्त होकर (अर्चिषा यातु-धानान् उपस्पृश) अपने प्रकाशसे यातना देनेवालोंको जला। तथा (मूरदेवान् जिह्वया आरभस्व) मूढविशेषोंको अपनी जिह्वारूप ज्वालासे ठीक करना आरंभ कर। (वृष्ट्वा) बलयुक्त होकर (क्रव्यादः आसनि अपि धत्स्व) मांस खानेवाले हिंसकों को अपने मुखमें डाल॥ २॥

भावार्थ— दुष्टोंका नाश करनेवाला बलवान् प्रसिद्ध हितकर्ता सदा प्रशंसनीय है। इससे सुख प्राप्त होता है। वह उत्तम प्रशस्त कर्म करनेवाला, तीक्ष्ण अथवा उग्र, प्रयत्न करके हमें दिन रात शत्रुओंसे बचावे॥ १॥

ज्ञानी अपने तेजसे दुष्टोंको निर्बल करे, मूढोंको अपने जिह्वाके उपदेशों से सुधारे। मांस भक्षक क्रूरोंको अपने मुखसे आच्छादित करे अर्थात् क्रूरतासे निवृत्त करे॥ २॥

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानो वरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥ ३ ॥
अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ॥ ४ ॥
यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥ ५ ॥

अर्थ—हे (उभयाविन् अग्ने) दोनों को जाननेवाले अग्ने! तू (हिंस्रः शिशानः) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाला तीक्ष्ण बन कर (अवरं परं च उभौ) हमसे निकृष्ट और उत्कृष्ट दोनों प्रकारके शत्रुओंको अपने (दंष्ट्रौ उपधेहि) दाढोंमें रख। (उत अन्तरिक्षे परियाहि) और अन्तरिक्षमें तू संचार कर। और वहांसे (जम्भैः यातु-धानान् अभिसंधेहि) अपने जबडोंसे यातना देनेवाले शत्रुओंपर चढाई कर ॥ ३ ॥

हे अग्ने! (यातुधानस्य त्वचं भिन्धि) कष्ट देनेवालेकी त्वचाको छिन्न-भिन्न कर। (हिंस्र-अशनिः हरसा एनं हन्तु) हिंसक विद्युत् वेगसे इसका नाश करे। हे (जातवेदः) जातवेद! शत्रुके (पर्वाणि शृणीहि) पर्वोंको काट। (क्रविष्णुः क्रव्यात् एनं विचिनोतु) मांसभक्षक क्रूर प्राणी इस दुष्टको पकड पकड कर खा जाय ॥ ४ ॥

हे (जातवेदः) ज्ञानी अग्ने! तू (यत्र इदानीं) जहां अब (तिष्ठन्तं चरन्तं उत अन्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं पश्यसि) खडे हुए, भ्रमण करने-वाले और अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले यातना देनेवाले दुष्टको देखता है वहां (शिशानः अस्ता शर्वा) तीक्ष्ण शस्त्र फेंकनेवाला शत्रुहिंसक तू (तं विध्य) उस शत्रुका वेध कर ॥ ५ ॥

भावार्थ-दोनों को जाननेवाला देव बलवान और निर्बल हिंसकोंको अपने काबूमें रखे। सब स्थानपर संचार करके कष्ट देनेवाले दुष्टोंको दबावे ॥ ३ ॥ दुष्टोंको पीट कर उनके चमडेको छिन्नभिन्न कर। बिजुलीके आघातसे दुष्टोंका नाश हो। दुष्टोंके जोडोंको काटो। मांस भक्षक हिंसक और क्रूर को पकड पकडकर नाश करो ॥ ४ ॥ जहां कष्ट देनेवाले हिंसक दुष्ट होंगे वहां उनको दबा दिया जावे ॥ ५ ॥

दुष्टोंका नाश ।

[२]

(ऋषिः—चातनः । देवता—अग्निः)

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥
अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥२॥

अर्थ—(रक्षो-हणं वाजिनं प्रथिष्ठं मित्रं आ जिघर्मि) राक्षसोंका नाश करनेवाले बलवान् प्रसिद्ध मित्रको मैं प्रकाशित करता हूं। और उसके (शर्म उपयामि) सुख प्राप्त करता हूं। (सः क्रतुभिः समिद्धः) वह यज्ञोंसे प्रदीप्त हुआ (शिशानः अग्निः) तीक्ष्ण अग्नि (सः नः दिवा नक्तं रिषः पातु) हमें दिन रात्र शत्रुओंसे बचावे ॥ १ ॥

हे (जातवेदः) जातवेद अग्ने ! (समिद्धः अयोदंष्ट्रः) प्रदीप्त होकर लोहेकी दाढोंसे युक्त होकर (अर्चिषा यातु-धानान् उपस्पृश) अपने प्रकाशसे यातना देनेवालोंको जला। तथा (मूरदेवान् जिह्वया आरभस्व) मूढविशेषोंको अपनी जिह्वारूप ज्वालासे ठीक करना आरंभ कर। (वृष्ट्वा) बलयुक्त होकर (क्रव्यादः आसनि अपि धत्स्व) मांस खानेवाले हिंसकों को अपने मुखमें डाल ॥ २ ॥

भावार्थ— दुष्टोंका नाश करनेवाला बलवान् प्रसिद्ध हितकर्ता सदा प्रशंसनीय है। इससे सुख प्राप्त होता है। वह उत्तम प्रशस्त कर्म करनेवाला, तीक्ष्ण अथवा उग्र, प्रयत्न करके हमें दिन रात शत्रुओंसे बचावे ॥ १ ॥

ज्ञानी अपने तेजसे दुष्टोंको निर्बल करे, मूढोंको अपने जिह्वाके उपदेशों से सुधारे। मांस भक्षक क्रूरोंको अपने मुखसे आच्छादित करे अर्थात् क्रूरतासे निवृत्त करे ॥ २ ॥

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥ ३ ॥
अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ॥ ४ ॥
यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥ ५ ॥

अर्थ—हे (उभयाविन् अग्ने) दोनों को जाननेवाले अग्ने! तू (हिंस्रः शिशानः) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाला तीक्ष्ण धन कर (अवरं परं च उभौ) हमसे निकृष्ट और उत्कृष्ट दोनों प्रकारके शत्रुओंको अपने (दंष्ट्रौ उपधेहि) दाढोंमें रख। (उत अन्तरिक्षे परियाहि) और अन्तरिक्षमें तू संचार कर। और वहांसे (जम्भैः यातु-धानान् अभिसंधेहि) अपने जबडोंसे यातना देनेवाले शत्रुओंपर चढाई कर ॥ ३ ॥

हे अग्ने! (यातुधानस्य त्वचं भिन्धि) कष्ट देनेवालेकी त्वचाको छिन्न-भिन्न कर। (हिंस्र-अशनिः हरसा एनं हन्तु) हिंसक विद्युत् वेगसे इसका नाश करे। हे (जातवेदः) जातवेद! शत्रुके (पर्वाणि शृणीहि) पर्वोंको काट। (क्रविष्णुः क्रव्यात् एनं विचिनोतु) मांसभक्षक क्रूर प्राणी इस दुष्टको पकड पकड कर खा जाय ॥ ४ ॥

हे (जातवेदः) ज्ञानी अग्ने! तू (यत्र इदानीं) जहां अब (तिष्ठन्तं चरन्तं उत अन्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं पश्यसि) खडे हुए, भ्रमण करने-वाले और अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले यातना देनेवाले दुष्टको देखता है वहां (शिशानः अस्ता शर्वा) तीक्ष्ण शस्त्र फेंकनेवाला शत्रुहिंसक तू (तं विध्य) उस शत्रुका वेध कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—दोनों को जाननेवाला देव बलवान और निर्बल हिंसकोंको अपने काबूमें रखे। सब स्थानपर संचार करके कष्ट देनेवाले दुष्टोंको दबावे ॥ ३ ॥ दुष्टोंको पीट कर उनके चमडेको छिन्नभिन्न कर। बिजुलीके आघातसे दुष्टोंका नाश हो। दुष्टोंके जोडोंको काटो। मांस भक्षक हिंसक और क्रूर को पकड पकडकर नाश करो ॥ ४ ॥ जहां कष्ट देनेवाले हिंसक दुष्ट होंगे वहां उनको दबा दिया जावे ॥ ५ ॥

यज्ञैरिषूः संनर्ममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ध्येषाम् ॥६॥
उतारब्धान्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणाँ ऋष्टिभिर्यातुधानान् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७॥
इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥ ८ ॥

अर्थ-हे अग्ने! (यज्ञैः) सत्कर्मोंद्वारा बढता हुआ तू (इषूः संनममानः) अपने बाणोंको ठीक करके (वाचा) वाणीसे उपदेश करता हुआ (शल्यान् अशनीभिः दिहानः) शल्योंको बिजुलीसे तीक्ष्ण करता हुआ (ताभिः प्रतीचः यातुधानान् हृदये विध्य) उनसे शत्रुके संमुख होकर उन दुष्टोंको हृदयपर वेध करके, (एषां बाहून् प्रति भिङ्ग्धि) इनके बाहुओंको तोड डाल ॥ ६ ॥

हे जातवेद ! (उत आरब्धान् उत आरेभाणान्) सत्कार्यका आरंभ करनेवाले और किये हुए लोगोंको (ऋष्टिभिः स्पृणुहि) शस्त्रोंसे सुरक्षित रख। हे अग्ने ! (यातुधानान् पूर्वः शोशुचनः निजहि) दुष्टोंको सबसे प्रथम प्रकाशित होकर नाश कर। (आमादः एनीः क्ष्विंकाः एनं अदन्तु) मांस खानेवाले लाल पक्षी इनको खाजावें ॥ ७ ॥

हे अग्ने! (यः यातुधानः इदं कृणोति) जो दुष्ट यह दुष्ट कार्य करता है (यतमः सः इह प्रब्रूहि) वह कौनसा है यह यहां कह दे। (तं आरभस्व) उसको दण्ड देना आरंभ कर। (तं समिधा आरभस्व) उसको लकडियोंसे जलाना आरंभ कर। (नृचक्षसः चक्षुषे एनं रन्धय) मनुष्योंके हितकी दृष्टिसे इस दुष्टका नाश कर ॥ ८ ॥

भावार्थ-सत्कर्मोंसे बढो, अपने शस्त्रास्त्र तैयार रखो, वाणीसे उत्तम उपदेश करो, अपने शस्त्रोंको बिजुलीसे तीक्ष्ण करो, और उनसे शत्रुओंके हृदयोंका वेध करो, तथा उनके बाहुका छेदन करो ॥ ६ ॥

शुभ कर्म करनेवालोंकी रक्षा अपने शस्त्रोंसे कर। दुष्टोंका नाश कर। मांस खानेवाले पक्षी दुष्टोंका मांस खावें ॥ ७ ॥

जो दुष्ट है उनको ढूंढना यहां कहा, उनको दण्ड दो, जनताका हित करनेकी दृष्टिसे उनका नाश कर ॥ ८ ॥

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्रणय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ॥ ९ ॥
नृचक्षाः रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥ १० ॥ (६)
त्रिर्यातुधानः प्रमितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि युङ्धिः ॥ ११ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! (तीक्ष्णेन चक्षुषा प्राञ्च यज्ञं रक्ष) तू अपने तीक्ष्ण आंखसे श्रेष्ठ यज्ञकी रक्षा कर । हे (प्र-चेतः) ज्ञानी ! तू (वसुभ्यः प्रणय) वसुओंकेलिये उसको ले जा । हे (नृ-चक्षः) लोगोंके निरीक्षक (हिंस्रं रक्षांसि अभिशोचन्) हिंसकको और राक्षसोंको तपाते हुए (त्वा) तुझको (यातुधाना मा दभन्) यातना देनेवाले न दबावें ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! तू (नृ-चक्षाः विक्षु रक्षः परिपश्य) मनुष्योंका निरीक्षण करता हुआ सब दिशाओंमें राक्षसोंको देख । (तस्य त्रीणि अग्रा प्रति शृणीहि) उसके तीनों अग्रभागों का नाश कर । (तस्य पृष्टीः हरसा शृणीहि) उसकी पसुलियोंको अपने बलसे तोड । (यातुधानस्य मूलं त्रेधा वृश्च) यातना देनेवालेकी जड तीनों प्रकारोंसे काट डाल ॥ १० ॥

हे अग्ने ! (यः अनृतेन ऋतं हन्ति) जो असत्यसे सत्यका नाश करता है, वह (यातुधानः ते प्रसितिं त्रिः एतु) दुष्ट तेरे बन्धनमें तीन प्रकारोंसे प्राप्त होवे । हे जातवेद ! (तं अर्चिषा स्फूर्जयन्) उसको अपने प्रकाशसे प्रभावित करता हुआ तू (एनं समक्षं गृणते नि युङ्धि) इसको अपने सामने ईशस्तुति करनेवालेके हितके लिये प्रतिबन्धमें रख ॥ ११ ॥

भावार्थ—अपनी दृष्टिसे-शक्तिसे-सत्कर्मका संरक्षण कर । और निवासकोंकी ओर उसे ले चल । हिंसकोंको अपने तेजसे हटा और ऐसा कर कि दुष्ट तुझे न दबावें ॥ ९ ॥ जनताकी रक्षा करनेके लिये तू सब दिशाओंसे दुष्टोंको ढूंढ निकाल । और उनके तीनों प्रकारके प्रयत्नोंको प्रतिबंध कर । दुष्टोंकी पीठ तोड और उनकी जड उखाड दो ॥ १० ॥
जो असत्यसे सत्यको दबाता है उस दुष्टको बंधनमें डाल। अपने तेजसे उसको निःसत्त्व कर और ईश्वर भक्तके सन्मुख उसको प्रतिबंध कर ॥ ११ ॥

यद॑ग्ने अ॒द्य मि॑थु॒ना शपा॑तो यद् वा॒चस्तृ॒ष्टं ज॒नय॑न्त रे॒भाः ।
म॒न्योर्मन॑सः श॒र॒व्या॒३ जाय॑ते॒ या तया॑ विध्य॒ हृद॑ये यातु॒धाना॑न् ॥ १२॥
परा॑ शृणीहि॒ तप॑सा यातु॒धाना॒न् परा॑ग्ने॒ रक्षो॒ हर॑सा शृणीहि ।
परा॒र्चिषा॒ मूर॑देवान् छृणीहि॒ परा॑सु॒तृपः॒ शोशु॑चतः शृणीहि ॥ १३ ॥
परा॒द्य दे॒वा वृ॑जि॒नं शृ॑णन्तु प्र॒त्यगे॑नं श॒पथा॑ यन्तु सृ॒ष्टाः ।
वा॒चास्ते॒नं शर॑व ऋच्छन्तु॒ मर्म॒न् विश्व॑स्यैतु॒ प्रसि॑तिं यातु॒धानः॑ ॥ १४॥

अर्थ-हे अग्ने ! (यत् अद्य मिथुना शपातः) जो आज दोनों एक दूसरेको शापते हैं, (यत् रेभाः वाचः तृष्टं जनयन्त) जो आक्रोश करनेवाले वाणीकी कठोरता प्रकाशित करते हैं। (या मन्योः मनसः शरव्या याजते) जो क्रोधी मनसे शस्त्र होता है (तया यातुधानान् हृदये विध्य) उससे पीडकोंको हृदयमें वेध डाल ॥ १२ ॥

(यातुधानान् तपसा परा शृणीहि) यातना देनेवालोंको अपने तपसे दूर करके नाश कर। और हे अग्ने ! (हरसा रक्षः परा शृणीहि) अपने बलसे दूर करके नाशकर। (मूरदेवान् अर्चिषा परा शृणीहि) मूढोंको अपने तेजसे दूर करके नाश कर तथा (असुतृपः शोशुचतः पराशृणीहि) दूसरोंके प्राणों पर तृप्त होनेवाले शोक करनेवाले दुष्टोंको भी दूर करके नाश कर ॥ १३ ॥

(देवाः अद्य वृजिनं परा शृणन्तु) देव आज पाप करनेवाले पापीको दूर करें। (सृष्टाः शपथाः एनं प्रत्यक् यन्तु) भेजी हुई गालियां उनके प्रति वापस जांय। (वाचा स्तेनं शरवः मर्मन् ऋच्छन्तु) वाणीके चोरको शस्त्र मर्मोंमें काटें। (यातुधानः विश्वस्य प्रसितिं एतु) यातना देनेवाला दुष्ट सबके बन्धनमें जाय ॥ १४ ॥

भावार्थ- जो दुष्ट परस्परको शाप देते हैं और आक्रोश करके कठोर भाषण बोलते हैं, उनके मनके दुष्ट भावोंसे जो घातक परिणाम होता है, उससे दुष्टोंके हृदय जल जावें ॥ १२ ॥

जो दुष्ट लोगोंको कष्ट देते हैं उनको अपने तप, बल और तेजसे दूर कर और उनका नाश कर। मूढोंकी उपासना करनेवालोंको भी दूर कर। जो दूसरेके प्राण लेकर तृप्त होते हैं उनको रुलाते हुए हटा दो ॥ १३ ॥

पापी मनुष्यको और पापको दूर किया जाय। गालियां दीं हुई देने-

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥ १५ ॥
विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः ।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥ १६ ॥
संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यंचमर्चिषा विध्य मर्माणि ॥ १७ ॥

अर्थ-(यः पौरुषेयेण क्रविषा समंक्ते)जो मनुष्यके मांससे अपने आपको पुष्ट करता है और (यः यातुधानः अश्व्येन पशुना) जो दुष्ट अश्व आदि पशुके मांससे अपने आपको पुष्ट करता है, हे अग्ने! (यः अघ्न्यायाः क्षीरं भरति) जो गायका दूध चुराकर ले जाता है (तेषां शीर्षाणि हरसा अपि वृश्च) उनके सिरोंको अपने बलसे तोड डाल ॥ १५ ॥

(यातुधानाः गवां विषं भरन्तां) जो दुष्ट गौओंको विष देते हैं, और (दुरेवाः अदितये आवृश्चन्तां) जो दुष्ट गौको काटते हैं, (सविता देवः एनान् परा ददातु) सविता देव इनको दूर हटावे । (ओषधीनां भागं पराजयन्तां) इनको औषधियोंका भाग भी न दिया जावे ॥ १६ ॥

हे (नृ-चक्षः) मनुष्योंके निरीक्षक! (उस्रियायाः संवत्सरीणं पयः) गायका वर्षभर प्राप्त होनेवाला जो दूध है (तस्य यातुधानः मा आशीत्) उसका पान यातना देनेवाला दुष्ट न करे। हे अग्ने! (यतमः पीयूषं तितृप्सात्) उनमेंसे जो दुष्ट दूधरूपी अमृतको पीयेगा, (तं प्रत्यञ्चं अर्चिषा मर्माणि विध्य) उसको सबके संमुख अपने तेजसे मर्मस्थानमें वेध डाल ॥ १७

वालेके पास वापस जांय । वाणीसे चोरी करनेवालेके मर्मस्थान शस्त्रोंसे काटे जांय । जनताको यातना देनेवालेको प्रतिबंधमें रखो ॥ १४ ॥

मनुष्यका घोडे आदि पशुका मांस खा कर जो दुष्ट अपना शरीर पुष्ट करता है और गायका दूध चोरी करके पीता है उसका सिर काट ॥ १५ ॥

जो दुष्ट मनुष्य गौको विष देते हैं और गौ काटते हैं, उनको समाजसे हटाया जावे और उनको धान्यादिका भाग भी न दिया जावे ॥ १६ ॥

हे मनुष्योंका हित करनेवाले! गायका दूध दुष्ट मनुष्य न पीवे। जो दुष्ट चुराकर पीयेगा उसको शारीरिक दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ १
त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥ १
पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः ॥

अर्थ-हे अग्ने ! तू (यातुधानान् सनात् मृणासि) यातन
का सदा नाश करता है । (रक्षांसि त्वा पृतनासु न जि
युद्धोंमें नहीं जीत सकते । (सहमूरान् क्रव्यादः
मांसभक्षकोंको जला दे । (ते दैव्यायाः हेत्याः) वे ते
(मा मुक्षत) न छूट जांय ॥ १८ ॥

हे अग्ने ! (त्व नः अधरात् उदक्तः पश्चात् उत
नीचेसे उपरसे पीछेसे और आगेसे रक्षा कर । (ते
रासः तपिष्ठा) वे सब तेजस्वी, अक्षीण होकर तपा
दहन्तु) पापीको जला देवें ॥ १९ ॥

हे अग्ने ! तू (कविः काव्येन) कवि है अतः
पुरस्तात् अधरात् उत उत्तरात् परिपाहि) पीछेसे
उत्तरसे सब ओरसे रक्षा कर । (त्वं सखा सखायं
जैसे मित्रको, (अजरः जरिम्णे) तू जरारहित है
और (अमरः मर्त्यान् नः परिपाहि) तू अमर है
रक्षा कर ॥ २० ॥

भावार्थ-तू सदा दुष्टोंका नाश करता है, तुझे
सकते । तू मांसभक्षक क्रूरोंको जला, तेरे पाशसे वे
तू सब ओरसे हमारी रक्षा कर । तेजस्वी लो
देवें । १९ ॥

तू कवि, मित्र, जरारहित और अमर है अतः
हम तेरे मित्र बनना चाहते हैं । हम जराग्रस्त होने
वाले हैं अतः तू हमारी सहायता कर ॥ २० ॥

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान्।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥ २१ ॥
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥ २२ ॥
विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः ॥ २३ ॥

अर्थ- अग्ने! (येन शफा-रुजः यातुधानान् पश्यसि) जिससे तू लाथोंद्वारा ठोकरें लगानेवाले दुष्टोंका निरीक्षण करता है, (तत् चक्षुः रेभे प्रतिधेहि) वह आंख शोर मचानेवालेपर रख। (अथर्व-वत् दैव्येन ज्योतिषा) अहिंसक दिव्य तेजसे (सत्यं अचितं धूर्वन्तं) सत्य अचेत नाश करनेवालेको (नि ओष) जला दो ॥ २१ ॥

हे अग्ने! हे (सहस्य) बलवान्! (वयं) हम सब (विप्रं पुरं) ज्ञानी और पूर्णता करनेवाले, (धृषद्वर्णं) घर्षण करनेवाले और (भंगुरावतः हन्तारं) विनाशकोंका नाश करनेवाले, (त्वा दिवे दिवे परिधीमहि) तेरा प्रतिदिन ध्यान करते हैं ॥ २२ ॥

हे अग्ने! (तिग्मेन शोचिषा) तीक्ष्ण तेजसे युक्त (तपुः अग्राभिः अर्चिभिः) तपानेवाले तेजकी दीप्तियोंसे (विषेण भंगुरावतः रक्षसः प्रति जहि स्म) विषसे नाश करनेवाले राक्षसोंका नाश कर ॥ २३ ॥

भावार्थ- जो दुष्ट लाथें मारकर हमारे शरीर तोडते हैं तथा जो विरुद्ध कोलाहल मचाते हैं उनको तू देख। तू अपने तेजसे हमारा नाश करनेवालेका नाश कर ॥ २१ ॥

ज्ञानी, मनकामना पूर्ण करनेवाले, शत्रुका घर्षण करनेवाले, दुष्टोंका नाश करनेवाले तुझ बलवान् देव का हम सब प्रतिदिन ध्यान करते हैं ॥ २२ ॥

विष देकर जगतसे नाश करनेवाले दुष्टोंका नाश तू अपने तीक्ष्ण और उग्र तेजसे कर ॥ २३ ॥

१२ दुरेवाः अदितये आवृश्चन्तां- जो दुष्ट गायको काटता है अथवा कटवाता है। अ-दिति अर्थात् हिंसनीय गौका भी जो वध करता है। (१६)

१३ गवां विषं भरन्तां— गौवोंको जो विष देते हैं और विषसे गौका वध करते है। (१६)

१४ किमीदिन्- (किं-इदानीं) अब आज क्या खायें, कल उसका वध किया और पेट पाला, आज किसका वध करके पेटपूर्ती करें इसका जो सदा विचार करते हैं। जो कभी दूसरोंका घात किये विना नहीं रहते। (२५)

१५ यातुधानः (यातु+धानाः) = यातना देनेवाले, दूसरोंको सतानेवाले, दूसरोंको पीडा देनेवाले। (२)

१६ दुरेवः - (दुः+एव)- दुष्ट मार्गपर चलनेवाला, बुरे कार्यमें प्रवृत्त होकर दूसरोंको कष्ट देकर अपना सुख बढानेका प्रयत्न करनेवाला। (२४)

१७ अदेवीः मायाः - (अ-दिव्य मायाः) जो बुराई और कपट करते हैं, जो धोखा देकर दूसरोंको लूटते हैं, धोखेबाजीसे अपना ऐश्वर्य बढाते हैं। (२४)

१८ वृजिनः = जो पाप करता है, पाप कर्ममें प्रवृत्त होता है। (१४)

१९ वाचास्तेनः (वाचा+स्तेनः) - जो वाणीका चोर है, जिसका भाषण सत्य नहीं होता। जो एक बोलता है और दूसराही करता है, जो विश्वास रखने अयोग्य है। (१४)

२० मूरदेवः, (२) सहमूरः (१८)= घात पात करनेवाला मूढ, डाकुओंके साथ रहनेवाला, महामूर्ख, महाघातकी, महाहिंसक। (२)

२१ मिथुना शपानः - एक दूसरेको गालियां देते हैं, परस्पर बुरे शब्दोंके प्रयोग करते हैं। अपशब्द बोलते हैं। (१२)

ये सब दुष्ट हैं। ये दुष्टोंके लक्षण हैं। पाठक इन वचनोंका विचार करके अपने समाजमें अथवा इस संसारमें इन लक्षणोंसे युक्त कौन कौन हैं, इसका निश्चय करें और उन दुष्टोंको दूर करनेका प्रयत्न करें। इन लक्षणोंका विचार करके पाठक श्रेष्ठ सज्जनोंके भी जान सकते हैं। जैसा " जो दूसरोंका घात पात नहीं करते, जो किसीकी हिंसा नहीं करते, जो अहिंसा भावसे वर्तते हैं, जो सदा सत्य बोलते हैं, कभी कपट नहीं करते, हृदयमें शुद्ध भाव धारण करते हैं, कभी किसीका नाश करके अपना पेट भरना नहीं चाहते, परंतु अपने प्रयत्नसे दूसरोंका सुख बढाना चाहते हैं, दुष्ट मनुष्योंके साथ कभी नहीं रहते, मुखसे कभी बुरे शब्द नहीं उच्चारते, जो पाप कर्ममें प्रवृत्त नहीं

होते, जो मांस भोजन नहीं करते, जो दूसरोंको मारपीट नहीं करते, जो दूसरोंको दासभावसे छुडानेके लिये प्रयत्न करते हैं, जो दूसरोंकी रक्षा करते है।" जो ऐसा शुद्ध सदाचार रखते हैं वे सज्जन कहे जाते हैं। इन सज्जनोंको पूर्वोक्त दुष्ट दुर्जन सदा कष्ट देते हैं, अतः दुष्टोंको दूर करना धर्म होता है। सज्जनोंका परित्राण करना, दुष्ट दुर्जनोंका नाश करना और धर्मकी व्यवस्था स्थापित करना यह सब श्रेष्ठ पुरुषोंका कर्तव्य है। जो यह कर्तव्य करेंगे वेही आदरके योग्य पुरुष हैं। यही मनुष्यका धर्म है, अतः इस सूक्त द्वारा कहा है कि इन दुष्टोंका नाश करना चाहिये। नाश करनेका भाव यह है-कि उनका दुष्ट भाव दूर करना, उनके स्वभाव का सुधार करना, उनको दुष्ट व्यवहारसे निवृत्त करना, उनको समाज या राष्ट्रसे बहिष्कृत करना और इतनेसे भी कार्य न हुआ, तो उनका नाश करना। इस सूक्तका यह कार्य है। अब इन दुष्टोंका नाश करनेवाला कैसा हो, इस विषयमें देखिये—

दुष्टोंका नाश करनेवाला कैसा हो ?

पूर्वोक्त विवरणमें दुष्टोंके लक्षण कहे है, इन लक्षणोंसे दुष्टोंकी पहचान हो सकती है। इन लक्षणोंसे दुष्टोंका ज्ञान होनेके पश्चात् उनका नाश करनेका कार्य कौन करे, इसका विचार करना चाहिये। हरएक मनुष्य दुष्टोंका नाश करनेका कार्य करनेका अधिकारी नहीं है, यह कार्य विशेष जिम्मेवारी का कार्य है, अतः यह कार्य विशेष सावधानतासे होना चाहिये और विशेष योग्यतावाले मनुष्यके आधीन यह कार्य रहना चाहिये। इस विषयके निर्देश इस सूक्तमें है, उनका अब यहां विचार करते है—

१ मित्रः (मं०१), सखा (मं०२०)=जो मनुष्य सब मनुष्योंकी ओर मित्रताका बर्ताव करता है, जो सबका सखा अर्थात् हित चाहनेवाला है। जनताका हित करनेमें जो तत्पर रहता है,

२ विप्रः (मं० २२), कविः (मं० २०)=जो विशेष प्राज्ञ अर्थात् ज्ञानी है, जो कवि है अर्थात् क्रान्तदर्शी है, जो दूरदृष्टि है, जो गहराईसे हरएक बातका विचार कर सकता है, जो पवित्र दृष्टिके साथ सब बातोंका आगेपीछेका विचार करनेमें चतुर है,

३ जातवेदः (ज्ञातवेदः)= जो ज्ञानी है, जिसने अध्ययन उत्तम प्रकारसे पूर्ण किया है, जो बहुश्रुत और वेदशास्त्रज्ञ है. जिसके अंदर ज्ञानकी दृष्टि उत्पन्न हुई है, (मं० ३)

४ अथर्ववत् दिव्यज्योतिः (मं० २१)= जो (अ-थर्व) अचञ्चल स्थितप्रज्ञ योगीके समान दिव्य तेजसे युक्त है, जिसने योगसाधनादि द्वारा अपना मन स्थिर

किया है, जो चञ्चल वृत्तिवाला नहीं है, जो शान्ति और गंभीरतासे सब बातोंका विचार कर सकता है और शीघ्रता करके जो कार्यका बिगाड नहीं करता है।

५ शुक्रशोचिः, शुचिः, पावकः (मं० २६) = जो पवित्र तेजसे युक्त, स्वयं आचारसे शुद्ध, और पवित्रता करनेवाला है, जो स्वयं पवित्र विचार, पवित्र उच्चार और पवित्र आचारसे युक्त है, जिसका मन, बुद्धि, चित्त आदि अन्तरिन्द्रिय तथा जिसके बाह्य इंद्रिय पवित्र हैं और शुद्ध व्यवहारही करते हैं,

६ ईड्यः (मं० २६), प्रथिष्ठः (मं० १) पूर्वोक्त कारणसे जो प्रशंसनीय है, स्तुति करने योग्य है, सब लोग जिसके पवित्र आचारकी प्रशंसा करते हैं,

७ वाजी (मं० १), सहस्यः (मं० २२)-जो बलवान है, कर्तव्य करनेका निश्चय होनेके पश्चात् जो निश्चयपूर्वक अपने बलसे उसको निभाता है, जो प्रतिपक्षीको परास्त कर सकता है, जो अपने बलसे अपने कर्तव्य कर सकता है,

८ ब्रह्मसंशितः (मं० २५) – ज्ञानसे तीक्ष्ण, ज्ञानसे तेजस्वी, ज्ञानसे सुसंस्कृत, ज्ञानसे प्रशंसायुक्त बना हुआ,

९ अजरः, अमर्त्यः (मं० २०) – जरारहित और मृत्युरहित बना हुआ, क्षीण न होनेवाला और मृत्युसे न डरनेवाला, देवोंके समान जरामृत्युको दूर रखनेवाला, दिव्यजीवन युक्त,

१० क्रतुभिः समिद्धः (मं०१) – विविध सत्कर्मोंसे प्रदीप्त हुआ, श्रेष्ठ प्रशस्ततम कर्मोंसे प्रकाशित, सत्यमय प्रशंसनीय उत्तम कर्म करनेवाला, जिससे उत्तम कर्मही होते हैं,

११ शिशानः (मं० १) – तीक्ष्ण, तेजस्वी,

१२ शर्वा (मं० ५) – शत्रुओंका नाश करनेवाला,

१३ प्रतीचः (मं० ६) – दुष्टोंका सामना करनेवाला, शत्रुओंके सन्मुख खडा होकर उनका प्रतिकार करनेवाला,

१४ भंगुरावतः हन्ता (मं० २२) – घातकोंका नाश करनेवाला,

१५ रक्षोहा (मं० १) – राक्षसों, क्रूरकर्म करनेवालोंका नाश करनेवाला,

१६ क्रव्यादः अपिनृत्स्व (मं० २) = मांसभक्षकों, दूसरोंके जीवनोंपर अपनी पुष्टी करनेवालोंको दबाओ,

१७ अर्चिषा यातुधानान् उपस्पृश (मं २) – अपने तेजसे दूसरोंको यातना देनेवालोंका नाश कर,

१८ दिवा नक्तं रिषः पातु (मं० १) = दिन रात्र घातकों से सज्जनोंकी रक्षा कर,

१९ जम्भैः यातुधानान् संधेहि (मं० ३) = हथियारों से दुष्टोंको दण्ड दे।

इस ढंगसे इस सूक्तमें दुष्टोंका नाश कौन करे इस विषयमें कहा है। दुष्टोंका नाश करनेवाला ज्ञानी, शान्त, सम बुद्धि रखनेवाला, गंभीर, विचारवान्, जनताका हित करनेवाला, पवित्र विचारवाला ऐसा सुयोग्य पुरुष होना चाहिये। हरएक मनुष्य यह पवित्र कार्य कर नहीं सकता। जिससे कभी अन्याय होनेकी संभावना नहीं होती, ऐसे सज्जन के आधीन यह अधिकार होना चाहिये। पाठक स्मरण रखें कि जब कभी न्यायाधीश अथवा दण्डविधान करनेके कार्य के लिये किसी मनुष्य को नियुक्त करना हो, तो उस स्थान के लिये इन गुणोंसे युक्त पुरुष नियुक्त किया जावे। और इन गुणोंसे युक्त मनुष्य ही उस स्थान पर जाकर कार्य करे। इस दृष्टीसे इस सूक्त के मंत्र बडे उपयोगी हैं। ऐसे सात्विक पुरुषसे कभी अन्याय नहीं होगा, जो योग्य होगा, वही कार्य वह करेगा, और सब मनुष्योंको इसके कार्य से संतोष होगा।

इन दुष्टोंको जो दण्ड देना योग्य है वह दण्डोंके विविध प्रकार भी इस सूक्तमें लिखे हैं, जो इन मंत्रोंमें स्पष्ट लिखे हैं, तथापि सुबोधता के लिये वर्णन यहां करते हैं—

दण्डका विधान।

इस समयतक जो विवरण किया उससे दुष्टोंके लक्षण और दुष्टोंको दण्ड देनेवालों के लक्षण ज्ञात हुए। दुष्टोंको दण्ड देनेवालोंके लक्षणोंमें भी अन्तिम कुछ लक्षण ऐसे हैं कि जिनसे दण्डविधान का भी पता चल सकता है। अब इसी दण्डविधान का अधिक विचार करते हैं—

१ रक्षो-हा = इस शब्दसे राक्षसोंको 'वध' दण्ड योग्य है यह सिद्ध होता है। 'हन्' धातुका दूसरा अर्थ 'गति' है। यह अर्थ लिया जाय तो राक्षसों को अपने स्थान से भगादेना अर्थात् 'देशसे निकाल देना' यह अर्थ होगा। 'रक्षस्' (रक्षन्ति यस्मात् इति रक्षः) शब्दका अर्थ जिससे सुरक्षित रहनेकी आवश्यकता होती है, जिससे जनता का बचाव किया जाता है। ऐसे दुष्टोंको ऐसे स्थानमें रखना और उनपर ऐसा पहारा रखना कि ये दुष्ट दूसरोंको यातना न दे सकें, आदि बोध इससे प्राप्त होता है। (मं० १)

२ अयोदंष्ट्रः = लोहेकी दाढें। इस पक्षमें दुष्टको रख कर उसका नाश करना। ऊपरसे और नीचेसे कील आकर दुष्टके शरीर को काटते हैं। (मं० २)

३ क्रव्यादः अपिधत्तन = दूसरोंके मांस पर अपने शरीर की पुष्टी करनेवालों को बंद करके रख, पेटमें रख. (रव आनह्) जैसा कुछ पदार्थ अपने मुखमें बंद रखा जाता है, इस प्रकार इन दुष्टोंको रख। (मं० २)

२२ यातुधानः उस्रियायाः संवत्सरीणं पयः माशीत् = दुष्टको गायका दूध एक वर्षतक पीनेको न दिया जावे। एक वर्ष गायका दूध पीनेको न देना यह एक दण्ड है। आजकल तो जो भैंसकाही दूध पीते हैं, उनको तो यही दण्ड स्वभावतः हो रहा है, क्योंकि गायका दूध बहुतोंको प्राप्तही नहीं होता है। आजकल कैदियोंको भैंसकाही दूध दिया जायगा तो उनको कुछ भी बुरा नहीं प्रतीत होगा। परंतु वैदिक कालमें गायका दूध पीनेके लिये न मिलनाभी एक दण्ड माना जाता था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कारागृहवासी कैदियोंको भी गायका दूध पीनेको प्रतिदिन मिलता होगा और जो विशेष प्रकारके दुष्ट लोग होंगे, उनकोही वर्षभरतक गायका दूध न देनेका दण्ड होता होगा। इसी लिये आगे इसी मंत्रमें कहा है कि— (यतमः पीयूषं तितृप्सात् तं मर्मणि विध्य)–इन दुष्टोंको गायका दूध न पीनेका दण्ड होनेपर भी जो दुष्ट चोरी करके या अन्य युक्तिसे गायका दूध पीनेकी चेष्टा करेगा, उसके मर्म स्थानको वेध डाल। इससे स्पष्ट होता है कि विशेष प्रकारके घोर अत्याचारी कैदियोंको ही गायका दूध न पीनेका दण्ड होता था, और ऐसे जेली यदि गायका दूध नियम तोडकर पीयेंगे, तो उनको कठोर दण्ड किया जाता था। (मं० १७) इस दण्डकी दृष्टीसे इस मंत्रका विचार पाठक अवश्य करें।

२३ अघशंसं दहन्तु = पापीको जलाया जावे। यह वधदण्ड है। यहां जलाकर वध करना है। (मं० १९) यही भाव (धूर्वन्तं न्योष) विनाश करनेवालेका वध कर, नाश कर अथवा जलाकर नाश कर, इस आदेशमें है।

२४ रक्षसः प्रतिजहि=दुष्ट राक्षसोंका नाश कर। (मं० २३)

२५ दुर्हार्दं अभिदासन्तं विनिक्ष्व = दुष्ट हृदयवाले और दूसरोंको दास बनानेवाले दुष्ट का नाश कर। (मं० २५)

इस प्रकार विविध प्रकारके दण्डोंका विधान इस सूक्तमें है। विविध प्रकारके अपराधोंके प्रमाणसे ये विविध दंड देना योग्य ही है। जो ज्ञानी और समयज्ञ विद्वान न्यायाधीश होगा वही अपराधोंकी न्यूनाधिकताके अनुसार न्यूनाधिक दण्ड दे सकता है। किस अपराध को कौनसा दण्ड देना योग्य है, इसका विचार करनेवाला शान्त और गंभीर स्वभाववाला न्यायाधीश होना योग्य है, यह विचार इसी विवरणमें इसके पूर्व हो चुका है, उसका हेतु इससे पाठकोंके मनमें अब आगया होगा।

इस दृष्टीसे पाठक इस सूक्तका विचार करें और न्यायसभाका कार्य करनेकी रीति जानें।

शत्रुदमन।

[४]

(ऋषिः— चातनः । देवता—इन्द्रासोमौ)

इन्द्रा॑सोमा॒ तप॑तं॒ रक्ष॑ उ॒ब्जतं॒ न्य॑र्पयतं वृषणा तमो॒वृधः॑ ।
परा॑ शृणीतम॒चितो॒ न्यो॑षतं ह॒तं नु॒देथां॒ नि शि॑शीतम॒त्त्रिणः॑ ॥ १ ॥
इन्द्रा॑सोमा॒ सम॒घशं॑सम॒भ्य१॒॑घं तपु॑र्ययस्तु च॒रुर॑ग्नि॒माँ इ॑व ।
ब्र॒ह्म॒द्विषे॑ क्र॒व्यादे॑ घो॒रच॑क्षसे॒ द्वेषो॑ धत्तमनवा॒यं कि॑मी॒दिने॑ ॥ २ ॥

अर्थ- हे (वृषणा) बलवान् इन्द्र और सोम ! (रक्षः तपतं) राक्षसों को ताप दो, (उब्जतं) उनको मारो। (तमो-वृधः निअर्पयतं) अन्धकार बढानेवालोंको नीचे हटादो। (अ-चितः परा शृणीतं) अन्तःकरण रहित दुष्टोंको नाश करो, (वि ओषतं, हतं,) उनका नाश करो, उनका वध करो। उनको (नुदेथां) हकाल दो, (अत्त्रिणः निशिशीतं) दूसरोंको खानेवालोंको निर्बल करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र और सोम ! (अग्निमान् चरुः इव) आगपर चले हुए हाण्डीके समान (अघशंसं अघं अभि) पाप करनेवाले पापीके सन्मुख (तपुः सं ययस्तु) ताप-दुःख-देता रहे। (ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे) ज्ञानके शत्रु, मांसभक्षक, (घोरचक्षसे किमीदिने) क्रूरदृष्टिवाले दुष्टके साथ (अनवायं द्वेषः धत्तं) निरन्तर द्वेषका धारण कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ-दुष्टोंको दण्ड दो, उनको ताडन करो, अज्ञान फैलानेवालोंको दूर हटा दो, दुष्ट हृदयवालों को समाज से बाहर करो, उनका वध भी करो, अथवा उनको बाहर हकाल दो। जो दूसरोंको खाते हैं उनको निर्बल बनाओ ॥ १ ॥

जो सदा पाप करता है उसको कठिन दण्ड दे। ज्ञान का नाश करनेवाले, मांसभक्षक, क्रूर और हिंसकों का द्वेष करो ॥ २ ॥

इन्द्रा॑सोमा दु॒ष्कृतो॑ व॒व्रे अ॒न्तर॑नारम्भ॒णे तम॑सि॒ प्र वि॑ध्यतम् ।
यतो॒ नैषां॒ पुन॒रेक॑श्च॒नोदय॑त् तद् वा॑मस्तु॒ सह॑से मन्यु॒मच्छव॑: ॥ ३ ॥
इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वो व॒धं सं पृ॑थि॒व्या अ॒घशं॑साय॒ तर्ह॑णम् ।
उत् त॑क्षतं स्व॒र्यं॑१ पर्व॑तेभ्यो॒ येन॒ रक्षो॑ वावृधा॒नं नि॒जूर्व॑थ: ॥ ४ ॥
इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वस्पर्य॑ग्नित॒प्तेभि॑र्यु॒वमश्म॑हन्मभिः ।
तपु॑र्वधेभिर॒जरे॑भिर॒त्त्रिणो॒ नि पर्शा॑ने विध्यतं॒ यन्तु॑ निस्व॒रम् ॥ ५ ॥

अर्थ—हे इन्द्र और सोम! (अनारम्भणे वव्रे तमसि अन्तः) अगाध आवरक अन्धकारके बीचमें (दुष्कृतः प्रविध्यतं) दुष्कर्म करनेवालोंको वेध डालो, (यतः एषां एकः चन) जिससे इनमेंसे एकभी (न उत् अयत्) न उठ करे। इस प्रकारका (वां मन्युमत् तत् शवः) आपका उत्साहयुक्त वह बल (सहसे अस्तु) शत्रुदमनके लिये होवे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और सोम! आप दोनों (अघ-शंसाय) पाप करनेवाले दुष्ट मनुष्य के लिये (दिवः पृथिव्याः) द्युलोक और पृथ्वी लोकके बीचमें (तर्हणं वधं संवर्त्तयतं) विनाशक वध करनेवाले शस्त्रको प्रवृत्त करो। (पर्वतेभ्यः स्वर्यं उत् तक्षतं) पर्वतनिवासी शत्रुओंके लिये अति-तीक्ष्ण शस्त्र सिद्ध रखो। (येन वावृधानं रक्षः निजूर्वथः) जिससे बढने-वाले राक्षसोंका तुम नाश करोगे ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और सोम! (युवं) तुम दोनों (अग्नितप्तेभिः अश्महन्मभिः) अग्निमें तपे और फौलादसे बने हुए (अजरेभिः तपुर्वधेभिः) क्षीण न होने वाले और संताप देकर वध करनेवाले शस्त्रोंसे (दिवः अत्त्रिणः परिवर्त-यतं) द्युलोकसे भोगी लोगोंको हटा दो और (पर्शाने नि विध्यतं) कठिण स्थानमें उनको वेध करो, जिससे वे (निस्वरं यन्तु) शब्द न करते हुए भाग जांय ॥ ५ ॥

भावार्थ- गाढ अन्धकारमें रहनेवाले, दुष्कर्मियोंको वेध डालो। ऐसी व्यवस्था करो कि इनमेंसे एक भी फिर कष्ट देनेके लिये न बचजावे। तुम्हारा उत्साहयुक्त बल अपने विजय के लिये ही लग जावे ॥ ३ ॥

पाप करनेवाले दुष्टकी निन्दा करो और वध करो। उनको दूर करनेके लिये अपने शस्त्र सिद्ध रखो जिससे तुम उनका नाश कर सकोगे ॥ ४ ॥

इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वतं इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिनां।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपती इव जिन्वतम् ॥ ६ ॥
प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः ॥ ७ ॥
यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ८ ॥

अर्थ- हे इन्द्र और सोम! (कक्ष्या वाजिना अश्वा इव) जैसे चर्मपट्टी बलवान घोडोंसे संबंधित होती है वैसेही (इयं मतिः) यह हमारी बुद्धि (वां परि भूतु) तुमको सब प्रकार प्राप्त होवे। (यां होत्रां वां मेधया परिहिनोमि) इस आह्वान करनेवाली वाणीको अपनी बुद्धिके साथ तुम्हारे प्रति प्रेरित करता हूं, अतः तुम दोनों (नृपती इव) राजाओंके समान (ब्रह्माणि आ जिन्वतं) इन स्तुति वाक्योंको प्रेमसे स्वीकार करो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र और सोम! (तुजयद्भिः एवैः प्रतिस्मरेथां) वेगवान वाहनोंसे दुष्टोंके गतिका पीछा करो। (भंगुरावतः द्रुहः रक्षसः हतं) विनाशक और द्रोहशील राक्षसोंका नाश करो। (दुष्कृते सुगं मा भूत्) उस दुष्कर्म करनेवालेको सुखसे घूमनेका अवकाश न हो। (यः द्रुहुः कदाचित् मा अभिदासति) जो दुष्ट कभी मुझे कष्ट पहुंचायेगा ॥ ७ ॥

हे इन्द्र! (पाकेन मनसा चरन्तं मा) परिपक्व शुद्ध मनसे आचरण करनेवाले मुझको (यः अनृतैः वचोभिः अभिचष्टे) जो असत्य वचनोंसे झिडकता है, (काशिना संगृभीताः आपः इव) मुट्ठीद्वारा पकडे जलके समान वह (असतः वक्ता) असत्य वचन बोलनेवाला (अ-सन् अस्तु) [नाश] होनेके समान होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ-अग्निमें तपा कर फौलादसे बनाये अतितीक्ष्ण और शत्रु का [ना]श करनेमें समर्थ शस्त्रोंसे अपने दुष्ट शत्रुओंको वेध डालो, जिससे वे न [...]लाते हुए नाश को प्राप्त हों ॥५॥ तुम्हारे अन्दर यह विचार-शत्रुनाश [कर]नेका विचार स्थिर रहे, जिससे तुम प्रशंसा को प्राप्त होंगे जैसे बन्दिज[नों]से राजा लोक प्रशंसित होते हैं ॥ ६ ॥ वेगवान् वाहनोंमें बैठकर शत्रु[ओं]का पीछा करो। सब दुष्टोंको प्राप्त करके उनका नाश करो। दुष्ट कर्म [कर]नेवाले तुम्हारे समाजमें सुखसे न भ्रमण कर सकें। और किसीको कष्ट

ये पा॑कशं॒सं वि॒हर॑न्त॒ एवै॒र्ये वा॑ भ॒द्रं दू॒षय॑न्ति स्व॒धाभि॑: ।
अह॑ये वा॒ तान् प्र॒ददा॑तु॒ सोम॒ आ वा॑ दधातु॒ निर्ऋ॑तेरु॒पस्थे॑ ॥ ९ ॥
यो नो॒ रसं॒ दिप्स॑ति पि॒त्वो अ॑ग्ने॒ अश्वा॑नां॒ गवां॒ यस्त॒नूना॑म् ।
रि॒पु स्ते॒न स्ते॑य॒कृद् द॒भ्रमे॑तु॒ नि ष ही॑यतां त॒न्वा॒३॒ तना॑ च ॥ १० ॥ (९)
प॒रः सो अ॑स्तु त॒न्वा॒३॒ तना॑ च ति॒स्रः पृ॑थि॒वीर॒धो अ॑स्तु॒ विश्वा॑: ।
प्रति॑ शुष्यतु॒ यशो॑ अस्य देवा॒ यो मा॒ दिवा॒ दिप्स॑ति॒ यश्च॒ नक्त॑म् ॥ ११ ॥

अर्थ-(ये एवैः पाकशंसं विहरन्ते) जो विशेष गति साधनोंसे परिपक्व बुद्धिवालेको विशेष प्रकारसे हराते हैं, (ये वा भद्रं स्वधाभिः दूषयन्ति) जो अच्छे मनुष्यको अन्नोंसे दूषित करते हैं, (सोमः वा तान् अहये प्रददातु) सोम उन दुष्टोंको सांपके लिये सौंप देवे अथवा (निर्ऋतेः उपस्थे वा आदधातु) विनाशके समीप उनको पहुंचावे ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! (यः नः पित्वः रसं दिप्सति) जो हमारे अन्नके रसको बिगाडता है, (यः अश्वानां गवां तनूनां) जो घोडों गौओं और अन्य शरीरोंका नाश करता है, वह (स्तेयकृत् रिपुः स्तेनः) चोरी करनेवाला शत्रुरूपी चोर (दभ्रं एतु) नाशको प्राप्त होवे। (सः तन्वा तना च नि हीयतां) वह शरीरसे और पुत्रादिसे हीन बने ॥ १० ॥

हे देवो ! (यः मा दिवा) जो मुझे दिनके समय (यः च नक्तं दिप्सति) और जो रात्रीके समय पीडा देता है, (सः तन्वा तना च परः अस्तु) वह अपने शरीरके साथ और पुत्रके साथ दूर रहे, (विश्वाः तिस्रः पृथिवीः अधः अस्तु) सब तीनों भूविभागोंसे नीचे रहे और (अस्य यशः प्रति शुष्यतु) इसका यश सूख जाय ॥ ११ ॥

न पहुंचावें॥७॥ शुद्ध मनसे कार्य करनेवालेको जो विना कारण झूठ मूठ गालियां देता है, वह असत्यवादी जीवित न रहनेवाले के समान बन जावे ॥८॥

जो दुष्ट अपने अनेक साधनोंसे सज्जनों को लूटते हैं, और अच्छे आदमियों के अन्नोंका बिगाड करते हैं, वे वध के लिये योग्य हैं ॥ ९ ॥

जो अन्नरसोंको बिगाडता है, मनुष्यों और पशुओं का घात करता है, चोरी करता है वह अपने बालबच्चोंके साथ नाश को प्राप्त होवे ॥ १० ॥

जो दुष्ट दिन रात्र दूसरोंको पीडा देता है वह अपने बाल बच्चों के साथ नाशको प्राप्त होवे और उसका यश कम होवे ॥ ११ ॥

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासंच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतुरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥ १२ ॥
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥ १३ ॥
यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं संचन्ताम् ॥ १४ ॥

अर्थ-(चिकितुषे जनाय सुविज्ञानं) ज्ञान प्राप्त करनेवाले मनुष्यके लिये यह उत्तम ज्ञान कहा जाता है कि, (सत च असत् च) सत्य और असत्य (वचसी पस्पृधाते) भाषणोंमें स्पर्धा रहती है। (तयोः यत् सत्यं) उनमें जो सत्य है और (यतरत् ऋजीयः) जो सरल है, (तत् इत् सोमः अवति) उसकी सोम रक्षा करता है और (असत् हन्ति) असत्य का विनाश करता है ॥ १२ ॥ (सोमः वृजिनं न वा उ हिनोति) सोम पापको कभी नहीं सहाय करता, (मिथुया धारयन्तं क्षत्रियं न) मिथ्या व्यवहार करनेवाले क्षत्रियको कभी नहीं सहाय करता। (रक्षः हन्ति) वह राक्षसोंको मारता है, (असत् वदन्तं हन्ति) असत्य बोलनेवालेको मारता है, ये दोनों (इन्द्रस्य प्रसितौ शयाते) इन्द्रके बंधनमें रहते हैं ॥ १३ ॥

(यदि वा अहं अनृतदेवः अस्मि) यदि मैं असत्यका उपासक बनूं, (अपि वा देवान् मोघं ऊहे) अथवा देवोंकी व्यर्थ उपासना करूं, तोही ((जातवेदः अग्ने) जातवेद अग्ने! (अस्मभ्यं हृणीषे किं) हमारे ऊपर क्रोध करोगे क्या? (द्रोघवाचः ते निर्ऋथं सचन्तां) द्रोहका भाषण करने वाले तो विनाशको प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥

भावार्थ-सब लोगोंको यह सत्य ज्ञान कहा जाता है कि सत्य और असत्यकी स्पर्धा इस जगत में चलरही है। जो सत्य और जो सीधा है उसकी रक्षा परमेश्वर करता है और जो असत्य है उसका नाश करता है ॥ १२ ॥

जो पाप करता है, मिथ्या व्यवहार करता है, असत्य भाषण करता है और घातपात करता है उनको बंधनमें डालना चाहिये अथवा उनका वध करना चाहिये ॥ १३ ॥

यदि हमने असत्य कहा अथवा देवोंकी पूजा कपटसे की, तो हमारी अधोगति होगी। सब द्रोहका भाषण करनेवाले नाशको प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥ १५ ॥
यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥ १६ ॥
प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं१ गूहमाना।
वव्रमनन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥ १७ ॥

अर्थ-(यदि यातुधानः अस्मि) यदि मैं पीडा देनेवाला हूं (यदि वा पूरुषस्य आयुः ततप) और यदि मैं किसी मनुष्यकी आयुको ताप देऊं तो (अद्य मुरीय) आजही मर जाऊं। (अधा) और (यः मा मोघं यातुधान इति आह) जो मुझे व्यर्थ दुष्ट करके कहता है, (सः दशभिः वीरैः वि यूयाः) वह दसों वीरोंसे वियुक्त हो जाय ॥ १५ ॥

(यः मां अ-यातुं यातुधान इति आह) जो मुझ यातना न देनेवालेको दुष्ट करके कहता है, (यः वा) और जो (रक्षाः) स्वयं राक्षस होते हुए भी (शुचिः अस्मि इति आह) मैं शुद्ध हूं ऐसा कहता है। (इन्द्रः तं महता वधेन हन्तु) इन्द्र उसको बडे वधदण्डसे मारे। और वह (विश्वस्य जन्तोः अधमः पदीष्ट) सब प्राणियोंसे नीचे गिर जावे ॥ १६ ॥

(या नक्तं खर्गला इव) जो रात्रीके समय उल्लुनीके समान (तन्वं गूहमाना) अपने शरीरको छिपाती हुई (प्रजिगाति) जाती है और (द्रुहुः अपजिगाति) द्रोह करके भटकती है, (सा अनन्तं वव्रं पदीष्ट) वह अगाध गढेमें गिरपडे और (ग्रावाणः रक्षसः उपब्दैः घ्नन्तु) पत्थर राक्षसोंको शब्दोंके साथ मारें ॥ १७ ॥

भावार्थ-यदि मैंने किसीको पीडा दी हो अथवा किसी के स्वास्थ्यमें बिगाड किया हो, तो मेरी मृत्यु हो जावे। परंतु मैंने ऐसा कभी नहीं किया है तथापि जो मुझे दुष्ट करके कहता है उसके दशों प्राण दूर हों ॥ १५ ॥

मैं शुद्धाचार होते हुए मुझे दुष्ट करके कहे और जो दुराचारी स्वयं दुष्ट होते हुए अपने आपको पवित्र कहता रहे, उसका वध होवे और वह सबसे अधोगतिको प्राप्त होवे ॥ १६ ॥

जो उल्लूके समान रात्रीके समय छिपाछिपकर दुष्टभावसे संचार करती है वह गढे में पडे और पत्थरोंसे उसका वध किया जावे ॥ १७ ॥

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वी३च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥ १८ ॥
प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तोऽभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥ १९ ॥
एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २० ॥ (१०)

अर्थ–हे (मरुतः) मरुतो ! (विक्षु वि तिष्ठध्वं) प्रजाओंमें विशेष प्रकारसे ठहरो। (इच्छत) अपना कार्य करनेकी इच्छा करो, (रक्षसः गृभायत) राक्षसोंको पकडो और उनको (संपिनष्टन) पीस डालो। (ये वयः भूत्वा) जो पक्षियोंके समान होकर (नक्तभिः पतयन्ति) रात्रियोंमें घूमते हैं, (ये वा) अथवा जो (देवे अध्वरे रिपः दधिरे) यज्ञ देवके विषयमें विनाशक भाव धारण करते हैं ॥ १८ ॥

हे (मघवन् इन्द्र) धनवान् इन्द्र ! (दिवः अश्मानं प्रवर्तय) द्युलोकसे अश्मास्त्रको चला और (सोमशितं सं शिशाधि) सोमद्वारा तीक्ष्ण किये हुए शस्त्रको नियमसे प्रेरित कर। (पर्वतेन) पर्वतास्त्रसे (प्राक्तः अपाक्तः अधरात् उदक्तः रक्षसः) सामनेसे, पीछेसे, नीचेसे और ऊपरसे राक्षसोंको (अभिजहि) विनाश कर ॥ १९ ॥

(एते उ त्ये श्व-यातवः) ये वे कुत्तोंके समान वर्ताव करनेवाले दुष्ट (पतयन्ति) हमला चढाते हैं, (दिप्सवः अदाभ्यं इन्द्रं दिप्सन्ति) हिंसक शत्रु न दबनेवाले इन्द्रको सताते हैं। (शक्रः पिशुनेभ्यः वधं शिशीते) इन्द्र इन हीन दुष्टोंको वधदण्ड देता है। (यातुमद्भ्यः अशनिं नूनं सृजत्) यातना देनेवालोंके लिये विद्युत्को भेजता है ॥ २० ॥

भावार्थ–प्रजाजनोंमें दक्षतासे पहारा करो, दुष्टको ढूंढकर निकालनेकी इच्छा करो, दुष्टोंको पकडो, उनको पीस डालो, जो दुष्ट रात्रीके समय संचार करते हैं और ईश्वर तथा यज्ञ के विषय में बुरा भाव धारण करते हैं, उनका नाश किया जावे ॥ १८ ॥

अपने तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंसे दुष्टोंको सब ओर से नाश करो ॥ १९ ॥

जो कुत्तोंके समान दुष्ट हैं, जो दूसरों की हिंसा करते हैं, उनका वध और नाश शस्त्रास्त्रोंसे किया जावे ॥ २० ॥

इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्या३विवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः ॥ २१ ॥
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ २२ ॥
मा नो रक्षो अभि नड् यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥ २३ ॥

अर्थ-(इन्द्रः) इन्द्र (हविर्मथीनां) हवियोंके विनाशक (अभि आविवासतां) समीप स्थित (यातूनां) यातना देनेवाले दुष्टोंको (परा-शरः अभवत्) दूर हटाकर नाश करनेवाला होता है। (यथा वनं परशुः) जैसे वनको कुल्हाडा काटता है, तथा जैसे (पात्रा इव) मिट्टीके बर्तनोंको तोडा जाता है उस प्रकार (शक्रः) समर्थ इन्द्र (सतः रक्षसः भिन्दन्) उपस्थित राक्षसोंको तोडता हुआ (इत् उ अभि एतु) आगे बढे ॥ २१ ॥

हे इन्द्र! (कोकयातुं) चिडियोंके समान व्यवहार करनेवाले अर्थात् कामी, (शुशुलूकयातुं) भेडियेके समान वर्ताव करनेवाले अर्थात् क्रोधी, (गृध्रयातुं) गीधके समान वर्ताव करनेवाले अर्थात् लोभी, (उलूकयातुं) उल्लूके समान वर्ताव करनेवाले अर्थात् मोहित, (सुपर्णयातुं) गरुडके समान वर्ताव करनेवाले अर्थात् घमंडी, (उत श्वयातुं) और कुत्तेके समान आपसमें झगडा करनेवाले अर्थात् मत्सरी लोगोंको (जहि) मार और (दृषदा इव) जैसे पत्थरोंसे पक्षीको मारते हैं वैसे (रक्षः प्रमृण) राक्षसोंका नाश कर ॥ २२ ॥

(यातुमावत् रक्षः नः मा अभिनट्) यातना देनेवाला राक्षस हमतक न आवे। (ये किमीदिनः) जो भूखे हैं और जो (मिथुनाः अप उच्छन्तु) घातक हैं वे दूर भाग जावें। (पार्थिवात् अंहसः) पृथिवी संबंधी पापसे (पृथिवी नः पातु) पृथिवी हमारी रक्षा करे। तथा (दिव्यात् अंहसः) द्युलोक संबंधी पापसे (अन्तरिक्षं अस्मान् पातु) अन्तरिक्ष हमें बचावे ॥ २३ ॥

भावार्थ-यज्ञोंका नाश करनेवाले, हवनसामग्री बिगाडनेवाले, दूसरोंको सतानेवाले दुष्टोंको हटाओ और जैसे परशुसे वन का नाश किया जाता है वैसा उनका नाश किया जावे ॥ २१ ॥

इन्द्रं जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥ २४ ॥
प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २५ ॥ (११)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ- हे इन्द्र! (यातुधानं पुमांसं) यातना देनेवाले पुरुषको तथा (मायया शाशदानां स्त्रियं) कपटसे व्यवहार करनेवाली स्त्रीको (जहि) नाश कर। (मूरदेवाः विग्रीवासः ऋदन्तु) मूर्खोंके उपासक गर्दन रहित होकर नाश को प्राप्त हों। (ते उच्चरन्तं सूर्यं मा दृशन्) वे ऊपर उदयको प्राप्त होने वाले सूर्यको न देख सकें ॥ २४ ॥

हे सोम! (इन्द्रः प्रतिचक्ष्व) इन्द्र निरीक्षण करे, (विचक्ष्व) विशेष प्रकारसे देखे। आप दोनों (जागृतं) जाग्रत रहो। (रक्षोभ्यः यातुमद्भ्यः) राक्षस और पीडक इन लोगोंको (वधं अशनिं) मृत्युदण्ड और वज्रदण्ड (अस्यतं) अर्पण करो ॥ २५ ॥

भावार्थ- क्रोधी, लोभी, अज्ञानी, घमंडी और मत्सरी ये छः प्रकार के दुष्ट हैं, इनका नाश कर ॥ २२ ॥

[illegible] देनेवाले हमसे दूर हों, सदा भूखे रहनेके समान व्यवहार करनेवाले दुष्ट दूर भाग जावें। पृथ्वी और स्वर्ग संबंध से होनेवाले सब [illegible] ॥ २३ ॥

[illegible] देनेवाला पुरुष और कपटी स्त्री हो, उसका नाश हो। मूर्खोंके अनुयायी [illegible] वे दुष्ट सूर्योदय होने तक भी जीवित न [illegible] ॥ २४ ॥

[illegible] उनका अवलोकन करो, जागते रहो। जो राक्षस [illegible] करनेवाले और दूसरोंको सतानेवाले हों, उनको वध का दण्ड दिया जावे ॥ २५ ॥

दुष्टोंका दमन.

दुष्ट मनुष्योंका दमन करनेका विषय इस सूक्तमें है। यही विषय पूर्वसूक्तमें भी था। 'चातन' ऋषिके सूक्तोंमें प्रायः ऐसे ही शत्रुदमनके विषय हुआ करते हैं। 'चातन' शब्दका ही अर्थ 'हटाना, हटा देना, निकाल देना, दूर करना, नाश करना' है। यह ऋषिके नाम का अर्थ ही इनके नामपर मिलनेवाले सूक्तोंके तात्पर्यमें दिखाई देता है, यह बात विशेष रीतिसे विचार करने योग्य है। शत्रुको हटानेका उपदेश करनेवाले सूक्तोंके ऋषिके नाम का भी 'शत्रुको हटाना' ही अर्थ है, ऐसे अर्थवाला यही एक सूक्त और यही ऋषि है ऐसा नहीं है। कई अन्य सूक्तोंमें यह बात ऐसीही दिखाई देती है! ऋग्वेदमें (ऋ० १० सू० १८६ का) 'उलो वातायनः' ऋषि है और इसमें शुद्ध वायु जीवन देनेवाला है ऐसा विषय आया है। वातायन का अर्थ खिडकी है और खिडकी का संबंध शुद्ध हवा घरमें आनेके साथ है। इस प्रकार कई ऋषियोंके नाम और उनके सूक्तोंके आशय परस्पर संबंधित है यह बात विशेष मनन करने योग्य है। अस्तु। इस सूक्तमें दुष्टोंका दमन करनेका उपदेश है। अतः प्रथम दुष्टोंके कुछ लक्षण यहां देखते हैं। पूर्व सूक्त के विवरण के प्रसंगमें जिन लक्षणोंका विचार किया है. उनको यहां नहीं दुहरायेंगे। इस सूक्तमें जो नये लक्षण आगये हैं वेही यहां देखेंगे—

दुष्टोंके लक्षण।

पूर्वके सूक्तमें ' रक्षः, राक्षसः, भंगुरावत्, क्रव्याद्, किमीदिन्, यातुधान, मूरदेव ' ये शब्द दुष्ट वाचक आगये हैं, इसलिये पाठक इनके अर्थ वहां देखें। जो लक्षण पूर्व सूक्तमें नहीं दिये और इस सूक्तमें विशेष रूपसे कहे हैं, उनका ही विचार यहां अब करते हैं—

१ तमोवृध्-अज्ञानको बढानेवाले, अज्ञान फैलानेवाले, ज्ञानप्रसारका प्रतिबंध करने वाले, ज्ञान देनेवालोंको कष्ट देनेवाले अथवा उनको रुकावट करनेवाले, (मं० १)

२ अचित्-जिनको चित्त नहीं है, अर्थात् जिसका अन्तःकरण उत्तम नहीं है, श्रेष्ठ मनुष्यके चित्तके समान जिसका चित्त नहीं, किंवा जिसके मनमें दुष्टताके विचार हैं। (Heartless) (मं० १) पूर्व सूक्तमें इसीका भाव बतानेवाला 'दुर्हार्द्' शब्द है।

३ अत्रिन्-(अत्ति इति) जो दुसरोंकी जान लेकर अपनी पुष्टी करता है, अपने स्वार्थके लिये जो दूसरोंके गलोंपर छुरी चलाता है। (मं० १)

४ अघ अघशंसः-पाप कर्मके लिये जिसका नाम विख्यात हुआ है, जिसके पाप कर्मके कारण ही जिसको सब लोग जानते है। (मं० २)

५ ब्रह्मद्विष्-ज्ञानका द्वेष करनेवाला, ज्ञानका प्रतिबंध करनेवाला, ज्ञान प्रसारमें रुकावटें उत्पन्न करनेवाला। (मं० २) तमोवृध् (मं०१) यह शब्द इसी अर्थका सूचक है।

६ दुष्कृत्-दुष्कर्म करनेवाला, पापी। (मं० ३)

७ द्रुह्— द्रोह करनेवाले, जो विश्वासघात करते हैं, जो कपटसे लूटमार करते हैं, जो अत्याचारी हैं। (मं०७)

८ अनृतेभिः वचोभिः अभिचष्टे- असत्य भाषण करता है, असत्य गवाही देकर दूसरोंको कष्ट पहुंचाता है। (मं०८)

९ असतः वक्ता (मं० ८); असत् वदन् (मं० १३)— असत्य वचन बोलनेवाला।

१० ये एवैः वि-हरन्ते— जो विविध साधनोंसे दूसरोंके धनादिकोंका विशेष रीतिसे हरण करते हैं। (मं० ९)

११ स्वधाभिः भद्रं दूषयन्ति— जो अपनी शक्तियोंसे दूसरोंको दूषण देते हैं। जो अन्नोंकेद्वारा भले मनुष्योंको दूषित करते हैं, बुरे अन्न प्रयोगसे सज्जनोंको कष्ट पंहुचाते हैं। (मं० ९)

१२ स्तेनः, स्तेनकृत्- चोर और चोरी करनेवाला, अथवा चोरोंका संगठन बनानेवाला बडा डाकू। (मं०१०)

१३ रिपुः— जो शत्रुता करता है, छल कपट करनेवाला है। (मं० १०)

१४ मिथुया धारयन्— मिथ्या व्यवहार करनेवाला, मिथ्या भावको धारण करनेवाला। (मं० १३)

१५ अनृतदेवः— असत्य का उपासक, सदा असत्यविचार, असत्य भाषण और असत्य आचार करनेवाला। (मं० १४)

१६ देवान् मोघं ऊहे (वहति)— जो देवोंको व्यर्थ उठाकर घूमता है, जो कपटसे देवताओंके उत्सव करता है, जो स्वयं भक्तिहीन होता हुआ अपने स्वार्थ साधन के लिये देवताके महोत्सव रचता है। (मं० १४)

१७ द्रोहवाक्-द्रोहयुक्त भाषण करनेवाला, कठोर भाषण करनेवाला, दूसरोंको दुःख देनेके लिये कठोर भाषण करनेवाला। (मं० १४)

१८ रक्षः शुचिः अस्मि इति आह-जो स्वयं राक्षस होता हुआ अपने आपको शुद्ध और पवित्र बताता है। (मं० १६)

१९ अयातुं यातुधान इत्याह-जो भलेको बुरा कहके पुकारता है। (मं० १६)

२० तन्वं गूहमाना नक्तं प्रजिगाति-छिपकर रात्रीके समय हमला करती है। (मं० १७)

२१ दिप्सुः-हिंसक, घातक, (मं० २०)

२२ पिशुनः-चुगली करनेवाला (मं० २०)

२३ हविर्मथिन्-हविका नाश करनेवाला (मं० २१)

२४ कोकयातुः-चिडियाके समान काम व्यवहार करनेवाला अर्थात् अत्यंत काम व्यवहारमें आसक्त, (मं० २२)

२५ शुशुलूकयातुः-भेडियेके समान क्रूरता करनेवाला, क्रूरतासे दूसरोंका नाश करनेवाला, महाक्रूर,

२६ गृध्रयातुः=गीधके समान दूसरोंके जीवन लेकर तृप्त होनेवाला, लोभी, इसीको पूर्व सूक्तमें ' असु-तृप्' कहा है,

२७ सुपर्णयातुः= गरुडके समान ऊपरही ऊपर घमंडसे व्यवहार करनेवाला, गर्विष्ठ, घमंडी,

२८ उलूकयातुः— उल्लूके समान दिवाभीत जैसे व्यवहार करनेवाला अर्थात् महामूढ,

२९ श्वयातुः—कुत्तोंके समान आपसमें लडनेवाला, स्वजातीयोंसे लडना और दूसरोंके सामने लांगूल चालन करना, ऐसे नीच स्वभाववाला, (मं० २२)

३० मायया शाशदानः—कपटसे सब व्यवहार करनेवाला, कपटी छली। (मं २४)

इतने लक्षण दुष्टोंके हैं ऐसा इस सूक्तमें कहा है। पूर्व सूक्तमें २१ और इस सूक्तमें २९ लक्षण दुष्टोंके कहे हैं, दोनों सूक्तोंके मिलकर पचास लक्षण हुए हैं। इन पचास लक्षणोंसे दुष्टोंकी पहचान हो सकती है। ये दुष्टों और राक्षसोंके लक्षण हैं। इन लक्षणोंकी तुलना श्रीमद्भगवद्गीताके (अ० १६ में कहे) आसुर संपत्तिके लक्षणोंके साथ करनेसे दुष्टोंका निश्चय करनेमें बडी सहायता हो सकती है। ये राक्षस कोई भिन्न योनीके प्राणी नहीं हैं, ये मानवजातीमें ही दुष्टस्वभावके ही पुरुष हैं, यह बात कभी भूलना नहीं चाहिये। अतः इन राक्षसोंसे अपनी रक्षा करनेका तात्पर्य अपने समाज के

अथवा मानव जातीके दुष्ट जनोंसे रक्षा करना है। इसीलिये इस सूक्तमें कहा है—

प्रतिचक्ष्व, विचक्ष्व, जागृतम्। (मं० २५)

"प्रत्येक स्थानपर देख, विशेष रीतिसे देख और जाग्रत रह।" ये तीनों संदेश आत्मरक्षाकी दृष्टिसे अत्यंत महत्व के हैं, जो इस जनताकी रक्षा करनेके कार्यमें नियुक्त होते हैं, जो स्वयं सेवक होकर जनताकी रक्षा करना चाहते हैं वे पहिले जाग्रत रहें, न सोयें। अपनी रक्षा जाग्रत रहनेसे ही हो सकती है। जो सोते हैं या जो सुस्त हैं वे अपनी रक्षा नहीं कर सकते। जाग्रत रहनेके पश्चात् (प्रतिचक्ष्व) प्रत्येक मनुष्यका व्यवहार देखना चाहिये, अपने और पराये सब मनुष्योंके व्यवहारकी अच्छी प्रकार परीक्षा करनी चाहिये। और देखना चाहिये कि कौन मनुष्य सहायक है और कौन घातक है। यह निरीक्षण (विचक्ष्व) विशेष रीतिसे करना चाहिये, गहराईके साथ निरीक्षण करना चाहिये, क्यों कि कई शत्रु ऐसे होते हैं कि जो मित्रता करनेके मिषसे पास आते हैं और किस समय कपटसे गला काट देते हैं, इसका पताही नहीं चलता। अतः हरएक बातका विशेष दक्षतासे निरीक्षण करना योग्य है। अपनी रक्षा करनेके इच्छुक पाठक इन तीन आज्ञाओंका अच्छी प्रकार स्मरण रखें। इसी भाव का अधिक स्पष्टीकरण करनेवाली आज्ञाएं १८ वे मंत्रमें निम्नलिखित प्रकार आगई हैं-

विक्षु वितिष्ठध्वं, विक्षु इच्छत, रक्षसः गृभायत,
रक्षसः संपिनष्टन। (मं० १८)

"प्रजाजनोंमें विशेष प्रकारसे उपस्थित रहो, प्रजाजनोंमें शान्ति सुख स्थापन करनेकी इच्छा करो, और इस कार्यके लिये राक्षसोंको ढूंढ निकालो, उनको पकडे रखो और उनको पीस डालो।" यहां प्रजाजनोंमें विशेष रीतिसे उपस्थित होनेकी आज्ञा है, साधारण मनुष्य जैसे होते हैं वैसा रहनेकी आज्ञा यहां नहीं है, यहां वेद कहता है कि असाधारण रीतिसे प्रजाजनोंमें सर्वत्र संचार करो, विविध रूपोंको धारण करके सब जनोंका विशेष ख्यालके साथ निरीक्षण करो, और पता लगा दो कि कौन मनुष्य राक्षस हैं और कौन देव हैं। सज्जनोंकी रक्षा और दुर्जनोंका नाश करनेके लिये पहिले ये सज्जन हैं और ये दुर्जन हैं इस का निश्चय करना चाहिये। यह निश्चय विशेष निरीक्षण के बिना नहीं हो सकता, अतः यह आज्ञा कही है।

(विक्षु इच्छत) प्रजाजनोंमें शांति और सुख स्थापन करनेकी इच्छा धारण करो, इसी उद्देश्यसे प्रजाजनोंमें विविध प्रकारसे उपस्थित हो जाओ और राक्षस कौन हैं इस बातका पता लगा दो। जो राक्षस हैं ऐसा निश्चित ज्ञान हो जायगा, उन राक्षसोंको

(गृभायत) पकड रखो, उनको जनसमाजमें घूमनेसे रोक दो, उनकी हलचल पर बंधन डालो और उनको (संपिनष्टन) पीस डालो। यहां पीसनेका अर्थ चूर्ण करना अभीष्ट नहीं है। उनके संगठन तोड दो, उनके संगठन बढने न दो, उनको अलग अलग करके उनका नाश करो। उनको असफल बनाओ। इसी विषयमें देखिये—

रक्षसः प्राक्तो अपाक्तो अधरात् उदक्तः जहि। (मं० १९)

"इन दुष्टोंको सामनेसे, पीछेसे, नीचेसे, और ऊपरसे अर्थात् सब ओरसे प्रतिबंधमें रखकर नष्ट करो।" यहां उनके देहोंको काटनेका तात्पर्य नहीं है। शरीर उनके बेशक जीवित रहें, परंतु उनकी गति (प्राक्तः) सामनेसे रुक जाय, (अपाक्तः) वे पीछे न जा सकें, (अधरात्) वे नीचे न जासकें, और (उदक्तः) ऊपरभी न होसकें, अर्थात् चारों ओरसे उनकी हलचल बंद हो जावे और वे ऐसे प्रतिबंधमें रहें कि वे किसी प्रकार दुष्टता न कर सकें। इस प्रकार वे अपनी दुष्टतामें असफल हुए तो उनका मानो पूर्ण नाश ही हुआ। अर्थात् यहां उनको दुष्ट कर्म करनेसे रोकना अथवा उनकी दुष्टताका नाश करना अभीष्ट है, इसीलिये कहा है—

उभौ प्रसितौ शयाते। (मं० १३)

"दोनों प्रकारके दुष्ट बंधनमें सोते रहें।" अर्थात् कारागारमें पडें, जिससे वे आगे पीछे नीचे और ऊपर हिल न सकें। ये दुष्ट पुरुष हों या स्त्रियां हों, दोनोंको समान रीतिसे प्रतिबंध करना चाहिये, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखने योग्य है—

पुमांसं यातुधानं जहि। मायया शाशदानां स्त्रियं जहि। (मं० २४)

"पुरुष दुष्ट हो, या कपटाचारिणी स्त्री हो, दोनोंको उसी प्रकार असफल करना चाहिये।" स्त्री है इसलिये उसको क्षमा करना योग्य नहीं, क्योंकि एक दुष्ट अनेकोंको कष्ट पहुंचाता है, अतः किसी दुष्टकोभी क्षमा नहीं होनी चाहिये। सबही दुष्ट लोग अपनी दुष्टता छोडें और सज्जन बनें, ऐसा प्रबंध होना आवश्यक है। राष्ट्रमें ऐसी व्यवस्था करना चाहिये कि—

दुष्कृते सुगं मा भूत्। (मं० ७)

"दुष्कर्म करनेवाले दुष्ट मनुष्य इधर उधर सुखसे न घूमें।" उनके भ्रमण के लिये प्रतिबंध हो। जब वे अपनी दुष्टता छोड देंगे तब, उनको सब प्रदेशमें भ्रमण करना सुगम होवे। इस उपदेशसे पता लगता है कि वेद चाहता है कि राष्ट्रका प्रबंध करनेवाले अपने राष्ट्रमें अथवा ग्रामके प्रबंधकर्ता ग्रामके दुष्ट मनुष्योंकी एक पूर्ण सूची बनावें, और उनके ऊपर निगरानी रखें, वे कहां रहते हैं क्या करते हैं यह देखें, और

उनको ऐसे दबावमें रखें कि वे बुराई न कर सकें। सज्जनोंकी रक्षा करनेके लिये दुष्टोंपर इस रीतिसे दबाव रखना अत्यंत आवश्यक है, इसलिये ही कहा है कि—

इयं मतिः विश्वतः परिभूतु। (मं० ६)

"यह आत्मरक्षा और सज्जनरक्षा करनेकी बुद्धि मनुष्योंमें सर्वत्र, अर्थात् सब नगरोंके नागरिकोंमें स्थिर रहे।" कोई मनुष्य इसको न भूलें और—

वां मन्युमत् शवः सहसे अस्तु। (मं० ३)

"तुम्हारा उत्साह युक्त बल अपने विजय और शत्रुकी पराजयके लिये समर्पित हो।" शत्रु तो वेही लोग हैं कि जिनके लक्षण इस सूक्तमें और पूर्व सूक्तमें दुष्ट संज्ञाके साथ कहे हैं। इन दुष्टोंको दूर करने और सज्जनोंकी रक्षा करनेके कार्यके लिये सबका बल लगाना चाहिये। इसके करनेका उद्देश्य क्या है, इसका ज्ञान पाठकोंको इस सूक्तके मननसे ही हो सकता है। दुष्टोंके संचारके मार्ग बंद हों और सज्जनोंके मार्ग अधिक खुले हों। यह बात अनेक प्रयत्नोंसे साध्य करना चाहिये। हरएक मनुष्य अपने अपने कार्यक्षेत्रमें इस बातकी सिद्धताके लिये परम प्रयत्न करे। इस प्रयत्न का स्वरूप यह है—

असतः वक्ता अ-सन् अस्तु। (मं० ८)

"असत्य भाषण करनेवाला अर्थात् दुष्ट मनुष्य (अ-सन्) न होनेके समान होवे।" न होनेके समान होनेका अर्थ यही है कि वह दुष्ट मनुष्य या तो प्रतिबन्धमें रहे, कारागृहमें रखा जावे, निग्राणीमें रहे, उसके दुष्टताके मार्ग उसके लिये खुले न रहें, किंवा उसकी ऐसी व्यवस्था की जावे कि वह अपनी दुष्टताके कर्म किसी प्रकार भी कर न सके। यहां तक जो मनन किया है उसका संबन्ध इस मन्त्रभागसे पाठक देखें और संगति लगाकर इस दुष्टोंके प्रबंध विषयक बोध प्राप्त कर सकें।

सत्यका रक्षक ईश्वर।

इस सूक्तमें एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह 'सत्यका रक्षक परमेश्वर है' ऐसा कहा है। सत्यमार्गपर जानेवालेके सन्मुख अनन्त आपत्तियां आखडीं हुई तो भी वह अब नहीं डरेगा, क्योंकि वह इस आदेशके अनुसार जान जायगा कि उसका रक्षक परमेश्वर है। जब सत्यका रक्षक परमेश्वर है तब उसको डरानेवाला कौन हो सकता है? इसविषयमें देखिये—

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।

तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥

(मं० १२)

" यह उत्तम ज्ञान ज्ञानी बननेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके हितके लिये कहा जाता है कि सत्य और असत्य भाषण की इस जगतमें स्पर्धा चल रही है। उनमेंसे जो सत्य और जो सीधा होता है, उसकी परमेश्वर रक्षा करता है और जो असत्य और कुटिल होता है उसका नाश करता है। " अर्थात् सत्यका पालन करनेवाले और सरल आचरण करनेवाले मनुष्यकी रक्षा परमेश्वर स्वयं करता है और असत्य भाषणी तथा कुटिल व्यवहार करनेवाले का नाश करता है। हरएक मनुष्य इस ईश्वर के नियमका स्मरण रखें और अपना आचरण सीधा और सत्यके अनुसार रखें। जो अपना आचरण ऐसा रखेंगे वे कभी दोषी नहीं हो सकते और उनको ईश्वर की ओरसे कभी दण्ड नहीं मिल सकता। परमेश्वरकी रक्षा प्राप्त करनेका यह एक उत्तम उपाय है। आशा है कि पाठक वृंद इस वेदके संदेशसे लाभ उठावेंगे और परमेश्वरकी रक्षामें सुरक्षित रहते हुए सत्य और सरलताके मार्गसे जाकर अपने आपको कृतकृत्य करेंगे।

जो ऐसा आचरण करेंगे और सत्य पालनमें दत्तचित्त होंगे वे कभी दुष्ट नहीं होंगे। परंतु दुष्ट वे बनेंगे जो असत्य और कुटिल व्यवहार करेंगे। इन दुष्टोंको दण्ड देना परमेश्वरकाही कार्य है। इनको विविध दण्ड दिये जाते हैं, वे इस प्रकार हैं—

वधदण्ड।

इन दुष्टोंको वध दण्ड देनेके विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग प्रमाण हैं—

अत्त्रिणः हतं, न्योषतं,
अघशंसं तर्हणं वधं वर्तयतम्। (मं० ४)
द्रुहः भंगुरावतः रक्षसः हतम्। (मं० ७)
रक्षः हन्ति। असत् वदन्तं हन्ति। (मं० १३)
तं मरुता वधेन हन्तु। (मं० १६)
पिशुनेभ्यो वधं शिशीते। (मं० २०)
रक्षोभ्यो वधं। (मं० २५)

" भोगी, पापी, द्रोही, नाश करनेवाले, असत्य भाषण करनेवाले, चुगली करनेवाले, जो राक्षसवृत्तीवाले लोग होंगे वे वधदण्डके लिये योग्य है। इसी प्रकार—

दुष्कृतः अनारंभणे तमसि वव्रे प्रविध्यतम्। (मं० ३)

सा अनन्तं वव्रं अव पदीष्ट। (मं० १७)

अग्नितप्तेभिः अश्महन्मभिः तपुर्वधेभिः अत्रिणः विध्यतम्। (मं०५)

" दुष्ट कर्म करनेवालोंको अन्धकारके स्थानमें रखो और उनपर शस्त्रका वेध करो। अग्निमें तपे, फौलादसे बने, घातक शस्त्रसे भोगी लोगोंका वेध करो।" वेध करनेका अर्थ यह है कि उनपर शस्त्र फेंककर उनके शरीरको घायल करना। बाणोंसे अथवा बंदूककी गोलीसे वेध करना आदि वेध दूरसे ही किया जाता है। इसी प्रकार—

यातुमद्भ्यः अशनिं सृजत। (मं० २०)

यातुमद्भ्यः अशनिं अस्यतम्। (मं० २५)

मूरदेवा विग्रीवासः ऋदन्तु (मं० २४)

तान् निर्ऋतेः उपस्थे आदधातु। (मं० ९)

द्रोघवाचः निर्ऋथं सचन्ताम्। (मं० १४)

" यातना देनेवालोंपर बिजली छोडी जावे, मूढोंके उपासकोंका गला काटा जावे, वे नाशके द्वारपर पहुंचें, द्रोहका भाषण करनेवाले नाशको प्राप्त हों।" इस प्रकार यह कठोर वध दण्ड ही है। तथापि इसमें अन्य प्रकारका नाशभी संभवनीय है। पत्थरोंसे दुष्टका वध करनेका भी उल्लेख है—

ग्रावाणः रक्षसः उपब्दैः घ्नन्तु। (मं० १७)

दृषदा इव रक्षः प्रमृण। (मं० २२)

" पत्थरोंसे राक्षसोंका वध किया जावे।" जो राक्षस है ऐसा निश्चय हो जाय, उसको किसी स्थानपर खडा करके अथवा वृक्षके साथ रस्सीसे बांधकर दूरसे उसपर पत्थर मारनेसे उसका वध हो जायगा। इस प्रकारका वधदण्ड इस समय अफगाणिस्थानमें है। पाठकोंको विचार करना चाहिये कि यह रीति और इस मंत्रमें कही रीति एकही है या भिन्न है।

देशसे निकाल देना।

यातूनां पराशरः अभवत्। रक्षसः भिन्दन् एतु। (मं० २१)

"यातना देनेवालोंको दूर करनेवाला वीर राक्षसोंको तोडता हुआ चले।" यह वीरका लक्षण है. यह वीर यातना देनेवालोंके कर्तूतोंको सह नहीं सकता। यहां पाठक 'पराशर' शब्द देखिये कैसे विलक्षण अर्थमें पडा है। (परा) दूर ले जाकर (शर) नाश करनेवाला जो वीर है उसको पराशर कहते हैं। राक्षसोंको समाजसे और ग्रामसे

दूर करना चाहिये, ये कभी ग्रामवासियोंको कष्ट देनेके लिये न आवें, इस विषयमें वेदकी आज्ञा देखिये—

अचितः परा शृणीतं, नुदेथाम्। (मं० १)
यतः एषां पुनः एकश्चन न उदयत्। (मं० ३)
यातुमावत् रक्षः नः मा अभिनड्। (मं० २३)
किमीदिनः मिथुना अपोच्छन्तु (मं० २३)

"जिनको सदय अन्तःकरण नहीं है वे दूर हटाये जांय, इनमेंसे एक भी फिर न लौट सके, मिथ्याचारी सब दूर भाग जावें।" ये सब आज्ञाएं दुष्टोंको राज्यसे बाहर करनेका ही भाव बताती हैं। इस प्रकार देशसे निकाला हुआ कोई दुष्ट फिर देशमें या ग्राममें न आसके। ऐसा करनेसे ही प्रजा सुखी रह सकती है।

दुष्टोंको तपाना।

दुष्ट दुर्जनोंको संताप देनेका भी एक दण्ड इस सूक्तमें कहा है, विचार करना चाहिये कि इस तपानेका अर्थ क्या है। इस विषयके मंत्र ये हैं-

रक्षः तपतं, उब्जतं। (मं० १)
अघशंसं अघं तपुः ययस्तु। (मं० २)

"राक्षसों दुष्टों, पापवृत्तिवालोंको ताप दो।" उनको संताप उत्पन्न कर। किन साधनोंसे संताप उत्पन्न करना है, इसका यहां उल्लेख नहीं। तथापि सूक्तका विचार करनेसे हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जब दुष्ट अपनी दुष्टताके कार्यसे हटाये जांयगे और चारों ओरसे उनको रोका जायगा, तब उनको संताप होगा और इस प्रकारका संताप ही यहां अभीष्ट होगा।

दुष्टोंका द्वेष।

वस्तुतः देखा जाय तो कोई मनुष्य किसीका कभी द्वेष न करे। परस्पर मित्रदृष्टीसे देखें। यह निःसंदेह धर्म है। परंतु दुष्ट मनुष्य और दुष्टता का द्वेष करनेकी आज्ञा वेद देता है। यदि द्वेष करना हो तो दुष्ट मनुष्योंका और उनकी दुष्टता का द्वेष करना योग्य है देखिये—

ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे किमीदिने अनवायं
द्वेषो धत्तम्। (मं० २)

"ज्ञानका द्वेष करनेवाले, मांसभोजी, क्रूरदृष्टी, सदा भोगविचार करनेवाले दुष्टके

साथ निरंतर द्वेष करो।" यदि द्वेष करना है, तो इससे द्वेष करो, अन्यथा (मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। यजु०) मित्रकी दृष्टीसे सबकी ओर देखो और किसीका कभी द्वेष न करो। द्वेष करना हो तो केवल दुष्टोंके साथ ही द्वेष करना चाहिये। स्वयं शुद्धाचारी होकर दुष्टोंसे द्वेष करना योग्य है। मनुष्य स्वयं पापसे बचनेके लिये इस प्रकार प्रार्थना करे—

पार्थिवात् दिव्यात् च अंहसः नः पातु। (मं० २३)

" भूमिके संबंधसे तथा स्वर्गके प्रयत्नमें जो पाप होगा, उससे हमें बचाओ।" इस प्रकार मनुष्य ईश्वरकी प्रार्थना करे। अपने आपको पापसे बचावे। ऐसे मनुष्यको ही अर्थात् स्वयं पापसे बचनेवालेको ही दुष्टका द्वेष करनेका अधिकार है। जो स्वयं पाप करता है उसको दूसरेका द्वेष करनेका अधिकार नहीं है।

पापीकी अधोगति।

पापी दुष्ट मनुष्यकी अधोगति होती है, उसकी अकीर्ति होती है, वह बदनाम होता है इस विषयमें इस सूक्तमें निम्नलिखित मंत्रभाग मिलते हैं—

अस्य यशः प्रतिशुष्यतु।
यः दिवानक्तं दिप्सति स अधः अस्तु। (मं० ११)
स्तेनकृत् स्तेनः रिपुः दभ्रं एतु। स तन्वा तना च
निहीयताम्। (मं० १०)
स दशभिः वीरैः वि यूयाः। (मं० १५)
विश्वस्य जन्तोः अधमः पस्पदीष्ट। (मं० १९)

" इस दुष्टका यश नष्ट हो जावे, जो दिनरात दुष्टता करता है वह नीचे गिरे, चोर लुटेरा दुष्ट शत्रु तन धनसे हीन होवे, वह बालबच्चोंसे हीन होवे। उसके दसोंप्राण दूर हों। ऐसा दुष्ट सब प्राणियोंसे भी सबसे नीचे गिर जावे " अर्थात् जो इस प्रकारका दुष्ट है वह परमेश्वरीय नियमसे अधोगतिको प्राप्त होता है, जब तक वह अपनी दुष्टता नहीं छोडता तब तक उसकी उन्नतिकी कोई आशा नहीं है। उन्नतिकी इच्छा है तो दुष्टता छोडनेकी आवश्यकता है, यह बात यहां सिद्ध होती है। सब दुष्टोंको उन्नति का यह मार्ग खुला है, अर्थात् उन्नतिका साधन करना उनके आधीन है। वे यदि पूर्वोक्त प्रकार ' पापसे बचनेके लिये ' ईश्वरकी प्रार्थना करेंगे तो उनमें दुष्टता छोडने का बल आ जायगा। इसके नियम ये हैं—

आत्मदण्ड।

य: अ-यातुं यातुधान इत्याह।
य: रक्ष: शुचि: अस्मि इत्याह। (मं० १६)

"भलेको बुरा कहना और अपवित्रको पवित्र समझना" यह दुष्टका लक्षण है। जो उन्नत होना चाहते हैं वे ऐसा न करें, वे तो भलेको भला, बुरेको बुरा, राक्षसको राक्षस, पवित्रको पवित्र, अपवित्रको अपवित्र कहनेका अभ्यास करें। न डरते हुए ऐसा माननेसे और माननेके अनुकूल कहनेसे आत्मिक बल बढता है। इसी रीतिसे हरएक मनुष्य कहे कि—

यदि यातुधानोऽस्मि, यदि वा पुरुषस्य आयु: ततप,
अद्या मुरीय। (मं० १५)

"यदि मैं किसीको यातना देनेवाला बनूं अथवा किसी मनुष्यको ताप दूं तो मैं आजही मर जाऊं।" ऐसा उन्नत होनेवाला मनुष्य कहे अर्थात् यदि अपने हाथसे कुछ पाप या दोष हुआ होगा, तो उसका प्रायश्चित लेनेको मनुष्य तैयार रहना चाहिये। अपने द्वारा विशेष दोष होनेपर मरनेतक तैयार होना चाहिये। जिसकी जिस प्रमाणसे इस प्रकारकी तैयारी होगी, वह उस प्रमाणसे उन्नत होगा। पाठक यह उन्नत होनेका मार्ग अपने मनमें धारण करें, इसका बहुत विचार करें और इसको अपने जीवनमें जहांतक हो सके ढालनेका यत्न करें। इस आत्मदण्डके मार्गसे मनुष्य शीघ्र उन्नत हो सकता है।

प्रतिसर मणि।

[५]

(ऋषिः-शुक्रः । देवता—कृत्यादूषणं, मन्त्रोक्तदेवताः)

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ १ ॥
अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
प्रत्यक्कृत्या दूषयन्नेति वीरः ॥ २ ॥

अर्थ—(अयं प्रतिसरः) यह शत्रुके ऊपर आक्रमण करनेवाला, (वीर्यवान् वीरः) वीर्ययुक्त वीर (सपत्नहा परिपाणः) शत्रुका नाश करनेवाला और सब प्रकारकी रक्षा करनेवाला, (सुमङ्गलः शूरवीरः) मङ्गल करनेवाला शूरवीरका चिन्हरूप (मणिः वीराय बध्यते) मणि वीर पुरुषके ऊपर बांधा जाता है ॥ १ ॥

(अयं मणिः) यह मणि (सपत्नहा सुवीरः) शत्रुका नाश करनेवाला उत्तम वीर (सहस्वान् वाजी) शत्रुवेगको सहन करनेवाला बलवान् (सहमानः उग्रः वीरः) शत्रुपराजय करनेवाला उग्र वीर (कृत्याः दूषयन् एति) घातक प्रयोगोंको विफल करता हुआ आता है ॥ २ ॥

भावार्थ—यह मणि [या पदक] शूरवीर पराक्रमी शत्रुनाशक मंगलकारी है, अतः यह वीरके शरीर पर बांधा जाता है ॥ १ ॥

यह मणि बलवान् शत्रुनाशक, उग्र वीर है जो सब शत्रुके घातक प्रयोगोंको दूर करता है ॥ २ ॥

अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन्मनीषी ।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ॥ ३ ॥

अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥ ४ ॥

तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥ ५ ॥

अर्थ-(अनेन मणिना इन्द्रः वृत्रं अहन्) इस मणिसे इन्द्रने वृत्रका नाश किया, (अनेन मनीषी असुरान् पराभावयत्) इसीसे संयमी वीरने असुरोंका पराभव किया । (अनेन उभे इमे द्यावापृथिवी अजयत्) इसीसे ये दोनों द्युलोक और पृथिवी लोक जीत लिये, (अनेन चतस्रः प्रदिशः अजयत्) इसीसे चारों दिशाओंको जीत लिया ॥ ३ ॥

(अयं स्राक्त्यः मणिः) यह प्रगति करनेवाला मणि (प्रतिवर्तः प्रतिसरः) शत्रुओंपर हमला करनेवाला और उनपर धावा करनेवाला (ओजस्वान् विमृधः वशी) बलशाली युद्धमें गमन करनेवाला और वशी है, यह (अस्मान् सर्वतः पातु) हम सबकी सब प्रकारसे रक्षा करे ॥ ४ ॥

(अग्निः तत् आह) अग्निने वह कह दिया, (सोमः तत् उ आह) सोमने भी वह कहा, (बृहस्पतिः सविता इन्द्रः तत्) बृहस्पति सविता और इन्द्रने भी वही कहा है । (ते पुरोहिताः देवाः) वे अग्रेसर देव (प्रतिसरैः मे कृत्याः प्रतीचीः अजन्तु) हमलोंसे मेरे ऊपर आनेवाले घातक प्रयोग विरुद्धदिशासे हटा देवें ॥ ५ ॥

भावार्थ-इस मणिसे इन्द्रने वृत्रको मारा, राक्षसोंका पराभव किया, द्यावापृथिवीको जीत लिया, और सब दिशाओंमें विजय किया ॥ ३ ॥

यह शत्रुपर धावा करनेवाला, बलवान् शत्रुको वश करनेवाला मणि हमारी रक्षा करे ॥ ४ ॥

सब देव इस मणिके द्वारा मेरे ऊपर किये घातक प्रयोग हटा देवें ॥ ५ ॥

अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥ ६ ॥

ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते। सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी॥७॥

स्राक्त्येन मणिना ऋषिणेव मनीषिणा । अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ८

याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभि-
राभृताः । उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या अति ॥ ९ ॥

अर्थ-(द्यावापृथिवी अन्तः दधे) द्युलोक और पृथ्वी लोकको मैं अपने अन्दर धारण करता हूं (उत अहः उत सूर्यम्) दिनको और सूर्यको भी अन्दर रखता हूं । ये अग्रेसर देव हमलोंसे मेरे ऊपर होनेवाले घातक प्रयोग विरुद्ध दिशासे हटा देवें ॥ ६ ॥

(ये जनाः स्राक्त्यं मणिं) जो लोग प्रगतिशील इस मणिको (वर्माणि कृण्वते) कवचोंके स्थानपर करते हैं, वे (सूर्यः इव दिवं आरुह्य) सूर्यके समान द्युलोक पर चढ कर (वशी) सबको वशमें करता हुआ (कृत्याः वि बाधते) घातक प्रयोगोंका नाश करते हैं ॥ ७ ॥

(मनीषिणा ऋषिणा इव) ज्ञानी ऋषिके समान इस (स्राक्त्येन मणिना) प्रगतिशील मणिके द्वारा (सर्वाः पृतनाः अजैषं) सब शत्रुसेनाओंको पराभूत करता हूं और (रक्षसः मृधः वि हन्मि) राक्षसोंको युद्धोंमें मारता हूं ॥ ८ ॥

(याः आङ्गिरसीः कृत्याः) जो आंगिरस घातक प्रयोग हैं,(याः आसुरीः कृत्याः) जो असुरोंके घातक प्रयोग हैं, (याः स्वयंकृताः कृत्याः) जो स्वयं किये हुए घातक प्रयोग हैं, (याः उ अन्येभिः आभृताः) जो दूसरोंके द्वारा भर दिये गये हैं,(उभयीः ताः नवतिं नाव्याः अति) दोनों वे सब नव्वे नदियोंके परे (परावतः परा यन्तु) दूर स्थानको जावें ॥ ९ ॥

भावार्थ-द्युलोक, पृथ्वी, सूर्य और दिन की शक्तियां मैं अपने अन्दर धारण करता हूं । ये सब मेरे उपर किये विनाशक प्रयोग हटा देवें ॥६॥ जो लोग कवचरूप इस मणिका धारण करते हैं वे सूर्यके समान तेजस्वी होकर अपने ऊपर किये हुए घातक प्रयोगोंको हटा देते हैं॥७॥इस मणिके द्वारा सब शत्रुसेनाको जीत लिया है । और दुष्टोंको मार दिया है ॥८॥

अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥ १० ॥ (१२)

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥ ११ ॥

स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा ।
अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥ १२ ॥

अर्थ-इन्द्र, विष्णु, सविता, रुद्र, अग्नि, प्रजापति, परमेष्ठी, विराट्, और वैश्वानर, ये सब (देवाः) देव तथा (सर्वे च ऋषयः) सब ऋषि (अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु) इस वीरके शरीरपर मणिरूप कवच को बांधें ॥ १० ॥

(ओषधीनां उत्तमः असि) औषधियोंमें तू उत्तम है, (जगतां अनड्वान् इव) जैसे गतिशीलोंमें बैल और (श्वपदां व्याघ्रः इव) श्वापदोंमें बाघ होता है। (यं ऐच्छाम) जिसकी हम इच्छा करें (तं प्रतिस्पाशनं) उस प्रतिस्पर्धीको (अन्तितं अविदाम) मरा हुआ पावें ॥ ११ ॥

(यः इमं मणिं बिभर्ति) जो इस मणीका धारण करता है, (सः इत् व्याघ्रः भवति) वह निःसन्देह बाघ के समान (अथो सिंहः अथो वृषा) सिंहके समान अथवा बैलके समान (अथो सपत्नकर्शनः) शत्रुका दमन करनेवाला होता है ॥ १२ ॥

भावार्थ-सब प्रकारके घातक प्रयोग इसके द्वारा दूर होते हैं ॥ ९ ॥

सब देव और ऋषि अपनी शक्तियोंसे इस मणिको मेरे शरीरपर बांधें ॥ १० ॥

यह मणि सबसे उत्तम है। इसके धारण करनेपर जिसको चाहे जीत सकते हैं ॥ ११ ॥

जो इस मणिको धारण करता है वह बलवान होकर अपने सब शत्रुओंको जीतता है ॥ १२ ॥

नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥ १३ ॥
कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।
अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत्
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥ १४ ॥
यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥ १५ ॥

अर्थ— (यः इमं मणिं बिभर्ति) जो इस मणिका धारण करता है वह (सर्वाः दिशः विराजति) सब दिशाओंमें शोभता है । (एनं अप्सरसः न घ्नन्ति इसको अप्सराएं नहीं मारतीं और (न गन्धर्वाः न मर्त्याः) न गन्धर्व और नाहि मनुष्य मार सकते हैं ॥ १३ ॥

(कश्यपः त्वां असृजत) कश्यपने तुझे बनाया है, (कश्यपः त्वा समैरयत्) कश्यपने तुझे प्रेरित किया । (इन्द्रः त्वा मानुषे संश्रेषिणे बिभ्रत्) इन्द्रने तुझे मानवी संग्राममें धारण किया और (अजयत्) विजय किया। ऐसे (सहस्रवीर्यं मणिं) सहस्र सामर्थ्यवान् मणिको (देवाः वर्म अकृण्वत) देवोंने कवच रूप बनाया है ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! (यः त्वा कृत्याभिः) जो तुझे मारक प्रयोगोंसे, (यः त्वा दीक्षाभिः) जो तुझे दीक्षाओंसे, अथवा (यः त्वा यज्ञैः जिघांसति) जो तुझे यज्ञोंसे मारना चाहता है, (तं) उसको (त्वं) तू (शतपर्वणा वज्रेण प्रत्यक् जहि) सैंकडों पर्वोंवाले वज्रसे प्रत्येक स्थानमें मार ॥ १५ ॥

भावार्थ— इस मणिका धारण करनेवाला सब दिशाओंमें विराजता है और इसका वध कोई कर नहीं सकते ॥ १३ ॥

कश्यप के द्वारा इस मणि निर्माण करनेकी कलाका प्रारंभ हुआ। इसको इन्द्रने सबसे पहिले धारण किया था और जगतमें विजय भी किया था ॥ १४ ॥

इस मणिधारणसे सब मारक प्रयोग दूर होते हैं। हर एक प्रकारके मारक प्रयोग इससे हटते हैं ॥ १५ ॥

अयमिद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥ १६ ॥
असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् ।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ॥ १७ ॥
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥ १८ ॥

अर्थ-(अयं इत् वै) यह निश्चयसे (प्रतिवर्तः) शत्रुपर हमला करनेवाला (परिपाणः संजयः) रक्षक और विजयी, (सुमंगलः मणिः) उत्तम मंगल करनेवाला मणि है, (प्रजां धनं च रक्षतु) वह हमारी संतान और संपत्तिकी रक्षा करे ॥ १६ ॥

हे शूर इन्द्र ! (नः अधरात् असपत्नं) हमारे नीचेसे अविरोध, (नः उत्तरात् असपत्नं) हमारे ऊपरसे अविरोध, (नः पश्चात् असपत्नं) हमारे पीछेसे अविरोध दर्शक (ज्योतिः पुरः कृधि) हमारे सन्मुख कर ॥ १७ ॥

(द्यावापृथिवी मे वर्म) द्यावापृथिवी मेरे लिये कवच धारण करावें, (अहः वर्म, सूर्यः वर्म) दिन और सूर्य मेरे लिये कवच पहनावें। (इन्द्रः च अग्निः च धाता च) इन्द्र, अग्नि और धाता ये तीनों देव प्रत्येकमें (मे वर्म दधातु) मेरे लिये कवच पहनावें ॥ १८ ॥

भावार्थ-शत्रुको दूर करके रक्षा करनेवाला यह मणि है। इसका धारण करनेवालेका कल्याण होता है, प्रजा और धनकी रक्षा इससे होती है ॥ १६ ॥

हमारी रक्षा चारों ओरसे होती रहे और हमारे सन्मुख प्रकाशका मार्ग स्थिर रहे ॥ १७ ॥

सब देव इस कवच धारण करनेमें मुझे सहायक हों। यह दैवी शक्तिसे युक्त हो ॥ १८ ॥

ऐन्द्राग्नं वर्मं बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नातिविध्यन्ति सर्वे।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्मां जरदष्टिर्यथासानि ॥ १९ ॥

आ मारुक्षद् देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥ २० ॥

अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम्।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासत् ॥ २१ ॥

अर्थ- (सर्वे विश्वे देवाः) सब देव (यत् न अतिविध्यन्ति) जिस का अतिक्रमण कर नहीं सकते (तत् उग्रं बहुलं ऐन्द्राग्नं बृहत् वर्म) वह उग्र, बडा इन्द्र और अग्निका बडा कवच (मे तन्वं सर्वतः त्रायतां) मेरे शरीर की रक्षा सब ओरसे करे। (यथा) जिससे मैं (जरदष्टिः) वृद्धावस्थातक कार्य व्याप्ति करनेवाला (आयुष्मान् असानि) दीर्घायु होऊं ॥ १९ ॥

यह (देवमणिः) दिव्य मणि (मा मह्यै अ-रिष्ट-तातये) मुझपर बडी सुख समृद्धिके लिये (आरुक्षत्) आरूढ होवे। (इमं मेथिं) इस शत्रु नाशक (तनूपानं त्रिवरूथं) शरीर रक्षक और तीनों बलोंके रक्षकको (ओजसे अभि संविशध्वं) बलके लिये आश्रित होवे ॥ २० ॥

(अस्मिन् इन्द्रः नृम्णं निदधातु) इसमें इन्द्र बल धारण करे, (देवासः इमं अभि सं विशध्वम्) देव इसमें प्रविष्ट हों (यथा) जिससे (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय) सौवर्षकी दीर्घायुके लिये (आयुष्मान् जरदष्टिः असत्) दीर्घजीवी और वृद्धावस्थातक सुदृढ रहे ॥ २१ ॥

भावार्थ—सब दैवी शक्तिसे युक्त इस मणिरूप कवचसे मेरी उत्तम रक्षा होवे और मेरी आयु दीर्घ होवे ॥ १९ ॥

इस दिव्य मणिके शरीरपर धारण करनेसे मेरी रक्षा होवे और मेरे बलकी वृद्धि होवे ॥ २० ॥

इसमें सब देव अपने बलकी स्थापना करें जिससे मुझे शतायुवाला दीर्घजीवन प्राप्त हो ॥ २१ ॥

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।
इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयङ्करो वृषा।
स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥ २२ ॥

अर्थ-(स्वस्तिदा विशांपतिः वृत्रहा) कल्याण करनेवाला, प्रजापालक शत्रुनाशक, (विमृधः वशी) शत्रुओंको वशमें करनेवाला,(जिगीवां अपराजितः सोमपा अभयंकरः) विजयी, अपराजित, सोमरस पीनेवाला, सौम्य (वृषा इन्द्रः) बलवान् इन्द्र (ते मणिं बध्नातु) तेरे शरीरपर मणिको बांधे। (सः सर्वतः दिवा नक्तं) वह सब ओरसे दिनरात (त्वा विश्वतः पातु) तेरी सब ओरसे रक्षा करे ॥ २२ ॥

भावार्थ-शूर वीर शत्रुनाशक बलवान विजयी जेता पुरुष इस मणिको शरीरपर बांधे जिससे उसकी दिनरात रक्षा होवे ॥ २२ ॥

मणिधारण।

इस सूक्तमें मणिधारण का विषय है। कईयोंका कथन है कि यहां 'मणि' शब्दसे वीर पुरुषका ग्रहण किया जावे। परन्तु यह बात सत्य नहीं है। इस प्रकार अर्थका अनर्थ करना किसीको भी योग्य नहीं है। इस सूक्तमें कहा मणि किसी वनस्पति का बनाया जाता है और उस का धारण शरीर पर किया जाता है। प्रायः गलेमें बान्धा जाता होगा। जिस प्रकार आजकलके सैनिकोंको विशेष शौर्यवीर्य धैर्यके कार्य करनेपर 'पदक' दिया जाता है और वह पदक छातीपर लटकाया जाता है, उसी प्रकारका यह मणि गलेमें या हाथपर किंवा बाहुपर बांधा जाता है। यह एक शौर्यका अथवा जनहितके कार्य करनेका चिन्ह है। इसके धारण करनेसे वीरकी प्रतिष्ठा बढती है, उसका उत्साह बढता है, और उत्साह बढनेसे वह मनुष्य अधिक पराक्रम करनेके लिये समर्थ होता है।

पहिले किये हुए शौर्यके कार्यके लिये अधिकारी पुरुषोंसे ईनाम मिलजानेपर अधिक पराक्रम करनेका साहस मनुष्य करता है, अर्थात् वह ईनाम, या पदक, अथवा अन्य प्रकार का सन्मान वीरता बढानेवाला, रक्षाका कार्य करनेवाला, उत्तम वीरता करनेवाला, उग्रता बढानेवाला, इत्यादि गुणविशिष्ट है ऐसा मानना अयोग्य नहीं है। इसी

उद्देश्यसे इस सूक्तमें इस मणिके गुण " सुवीरः, वाजी, उग्र " आदि कहे हैं। अन्य वर्णन भी इसी दृष्टीसे विचार करके जानने योग्य है।

एक शंका।

कई लोग कहते हैं कि वृक्षकी लकडीसे बना हुआ वह 'मणि' वीरता बढानेवाला, मंगल करनेवाला और बल बढानेवाला कैसा हो सकता है, चूंकी लकडीके मणिमें यह सामर्थ्य नहीं होता, अतः यहांके मणिशब्दसे 'वीर सेनापति' अर्थ लेना योग्य है। यह युक्ति अथवा यह विचारपद्धति विवेकयुक्त नहीं है। सरकारका सिपाही हाथमें एक विशेष प्रकार का काष्ठ लेकर, और विशेष प्रकार का पोशाख धारण करके हजारों लोगोंमें जाता है और निडर होकर उनको धमकाता है और विशेष कार्य करता है। यह सामर्थ्य उसके अन्दर उस सरकारी पोशाख और सरकारी चिन्हके काष्ठधारणसे ही आता है। वस्तुतः देखा जाय तो उसकी शारीरिक शक्ति अन्य लोगोंके समान ही होती है। परंतु सरकारी चिन्ह धारण करनेसे उसकी शक्ति कई गुणा बढ जाती है। इसी प्रकार यह विशेष सन्मानका मणि जब महाराजाके द्वारा किसी वीर पुरुषको दिया जाता,या शरीरपर बांधा जाता है, तो यह राजचिन्ह होनेसे इसके धारणसे उस पुरुषका बल और वीर्य बहुत बढ जाना स्वाभाविक है।

इस दृष्टिसे इस सूक्तका विचार पाठक करें और इसका आशय समझें। यह सूक्त इस दृष्टीसे देखनेसे बहुत सरल है अतः प्रत्येक मंत्रका अधिक स्पष्टीकरण करनेकी आवश्यकता नहीं है।

गर्भदोषनिवारण ।

[६]

(ऋषिः— मातृनामा । देवता—मन्त्रोक्ता)

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ ।
दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः ॥ १ ॥

पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम् ।
आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् ॥ २ ॥

अर्थ—(जातायाः ते) उत्पन्न होतेही तेरे (यौ पतिवेदनौ) जो पतिको प्राप्त होनेवाले दोनों भाग तेरी (माता उन्ममार्ज) माताने स्वच्छ किये थे (तत्र) उनमें (दुर्णामा, अलिंशः उत वत्सपः) दुर्णामा, अलिंश तथा वत्सप ये रोगकृमि (मा गृधत्) न पंहुचें ॥ १ ॥

(पलालानुपलालौ) मांस और मांससंबंधी, (शर्कुं) हिंसक, (कोकं) कामसंबंधी अथवा वीर्यसंबंधी, (मलिम्लुचं पलीजकं) मलिन, पलित रोग, (आश्रेषं) चिपकनेवाले, (वव्रिवाससं) रूपहीनता करनेवाले, (ऋक्षग्रीवं) रीछके समान गर्दन बनानेवाले, (प्रमीलिनं) आंख मूंदनेवाले रोगोंको मैं दूर करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—बच्चा उत्पन्न होते ही स्तनमें तथा अन्यत्र रोग उत्पन्न करनेवाले कृमि न पहुंचें ॥ १ ॥

मांसमें उत्पन्न होनेवाले, हिंसक, वीर्यदोष उत्पन्न करनेवाले, बाल सफेद करनेवाले, कुरूपता बढानेवाले, गर्दनमें रोग बनानेवाले, आंखोंमें सुस्ती लानेवाले रोगोंको मैं दूर करता हूं ॥ २ ॥

मा सं वृ॑तो मोप॑ सृप ऊ॒रू माव॑ सृ॒पोन्त॒रा ।
कृ॒णोम्य॑स्यै भेष॒जं ब॒जं दु॑र्णाम॒चात॑नम् ॥ ३ ॥
दु॒र्णामा॑ च सु॒नामा॑ चो॒भा सं॒वृत॑मिच्छतः ।
अ॒रा॒यानप॑ हन्मः सु॒नामा॒ स्त्रैण॑मिच्छताम् ॥ ४ ॥
यः कृ॒ष्णः के॒श्यसु॑र स्तम्ब॒ज उ॒त तुण्डि॑कः ।
अ॒रायां॑नस्या मु॒ष्काभ्यां॑ भंस॒सोप॑ हन्मसि ॥ ५ ॥

अर्थ-(मा सं वृतः) मत रह,(मा उप सृप) न पास जा,(ऊरू अन्तरा मा अव सृप) जंघाओंके बीच न रह । (अस्यै भेषजं कृणोमि) इसके लिये औषध बनाता हूं, यह औषध (बजं दुर्णामचातनं) बज नामक है इससे दुर्नाम कृमि दूर होते हैं ॥ ३ ॥

(दुर्णामा च सुनामा च उभौ) दुष्ट नामवाला और उत्तम नामवाला ये दोनों (सं वृतं इच्छतः) संगति करना चाहते हैं, उनमेंसे (अ-रायान् अप हन्मः) निकृष्टोंका हम नाश करते हैं और जो (सुनामा) उत्तम नामवाला है वह (स्त्रैणं इच्छतां) स्त्रीजातिकी इच्छा करे ॥ ४ ॥

(यः कृष्णः) जो काला (केशी असुरः) बालोंवाला असुर है, (स्तंबजः उत तुण्डिकः) जो शरीर स्तंभमें रहता है अथवा मुखमें रहता है, इन (अरायान्) दुष्टोंको (अस्याः मुष्काभ्यां) इस स्त्रीके दोनों प्रदेशोंसे तथा (भंससः) कटिप्रदेशसे (अप हन्मि) हटा देता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ-रोगजन्तु पास न रहे, प्रसवस्थानमें जंघाओंके मध्यमें न जावे, इसको दूर करनेके लिये यह औषध बनाता हूं, यह बज नामक औषध इस दुष्ट क्रिमिको दूर करता है ॥ ३ ॥

दो प्रकारके क्रिमि होते हैं, एक दुष्ट और दूसरा हितकारी। दोनों पास आते हैं, उनमें दुष्टको हटाते हैं और उत्तम को स्त्री जातीके पास रखते हैं ॥ ४ ॥

काला, बालोंवाला, प्राणघातक, मुखवाला, शरीरके स्तंभमें रहनेवाला, घातकी, शोभाका घटानेवाला कृमि है, उसको स्त्रीके अवयवोंसे हटा देते हैं। ५ ॥

अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम् ।
अरायांछ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ॥ ६ ॥

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीवरूपांस्तिरीटिनः ॥ ७ ॥

यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् ।
छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ॥ ८ ॥

अर्थ-(अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं) गन्ध लेनेसे नाश करनेवाले, स्पर्श करनेवालेका नाश करनेवाले, (क्रव्यादं उत रेरिहं) मांस खानेवाले और हिंसक (श्वकिष्किणः अरायान्) कुत्तेके समान कष्ट देनेवाले निःसत्त्व करनेवाले रोगबीजोंको (पिंगः बजः अनीनशत्) पीला बज औषध नाश करता है ॥ ६ ॥

(भ्राता भूत्वा) भाई बनकर (पिता इव च) अथवा पिता बनकर, (त्वा यः स्वप्ने निपद्यते) तेरे पास जो स्वप्नमें आता है, (क्लीबरूपान् तान् तिरीटिनः) क्लीबरूप उन गुप्त रहनेवाले रोजबीजोंको (इतः बजः सहतां) यहांसे बज औषध हटा देवे ॥ ७ ॥

(स्वपन्तीं त्वा यः त्सरति) सोती हुई तेरे पास जो आता है, (यः जाग्रतीं त्वा दिप्सति) जो जागती हुई तेरे पास आकर कष्ट पंहुचाता है, (सूर्यः छायां इव) सूर्य जैसा अन्धकारका नाश करता है, उस प्रकार (परिक्रामन् प्र अनीनशत्) भ्रमण करता हुआ उनका नाश करे ॥ ८ ॥

भावार्थ-कई क्रिमी सूंघनेसे प्राणघात करते है,कई स्पर्शसे नाश करते हैं, कई मांसको क्षीण करते हैं, कई अन्य रीतिसे घात करते हैं, कई कष्ट देते हैं; उन सब रोगबीजोंको पीली बज औषधि हटादेती है ॥ ६ ॥

भाई अथवा पिताके रूपसे स्वप्नमें जो आते हैं, वे निर्बल हैं, परंतु घातक होते हैं, उनको इस बज औषधिसे हटाया जा सकता है ॥ ७ ॥

सोनेकी अवस्थामें अथवा जागनेकी अवस्थामें जो रोगबीज पास आते हैं, उनको सूर्य अन्धकार का नाश करने के समान नाश करता है ॥ ८ ॥

यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम् ।
तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ॥ ९ ॥

ये शालाः परि नृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः ।
कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः ।
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय ॥ १० ॥ (१४)

अर्थ-(यः इमां स्त्रियं) जो इस स्त्रीको (मृतवत्सां अवतोकां कृणोति) मरे बच्चोंवाली अथवा गर्भपात होनेवाली करता है, हे औषधे ! (त्वं अस्याः तं नाशय) तू इसके उस रोगका नाश कर तथा (कमलं अंजिवं) गर्भद्वाररूपी कमल को रोगरहित कर ॥ ९ ॥

(ये गर्दभनादिनः) जो गधेके समान शब्द करनेवाले (सायं शालाः परिनृत्यन्ति) सायं कालके समय घरोंके चारों ओर नाचते हैं, (कुसूलाः कुक्षिलाः) सूईके समान अग्र भागवाले, बडे पेट वाले, (ककुभाः करुमाः स्रिमाः) तेढे मेढे, बुरा शब्द करनेवाले, छोटे रोगक्रिमि हैं; हे औषधे ! (त्वं तान् गंधेन) तू उनको अपने गंधसे (विषूचीनान् विनाशय) फैला-कर नाश कर ॥ १०

भावार्थ—जो रोगबीज स्त्रीको मृतवत्सा अथवा गर्भपात करनेवाली बनाते हैं, उन रोगबीजोंका नाश कर और उस स्त्रीका गर्भस्थान नीरोग बना ॥ ९ ॥

गधेके समान बुरा शब्द करनेवाले मच्छर आदि जो सायंकालके समय घरके पास नाचते और गाते रहते हैं, जिनके मुखमें सुईके समान चुभने-वाला शस्त्र रहता है, जिनका पेट बडा, और तेढामेढा होता है और जिनके शब्दसे दुःख होता है, उन रोगक्रिमी मच्छर आदिकोंको उग्र गंधवाली औषधिसे चारों ओर फैलाकर नाश करो ॥ १० ॥

ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ॥ ११ ॥
ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।
अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मकर्कान् नाशयामसि ॥ १२ ॥
य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति ।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥ १३ ॥

अर्थ-(ये कुकुन्धाः कुकूरभाः) जो बुरा शब्द करते हैं और थोडेसे चमकते हैं और जो (कृत्तीः दूर्शानि बिभ्रति) काटनेवाले दंशकरनेके साधनोंको धारण करते हैं, (ये घोषं कुर्वते) जो शब्द करते हुए (क्लीबा इव वने प्रनृत्यन्तः) क्लीबोंके समान वनमें नाचते हैं, (तान् इतः नाशयामसि) उनको यहांसे नाश करते हैं ॥ ११ ॥

(ये दिवः आपतन्तं अमुं सूर्यं न तितिक्षन्ते) जो द्युलोकसे आनेवाले इस सूर्यको नहीं सहन कर सकते, उन (अरायान् बस्तवासिनः) सत्त्वहीन करनेवाले चर्ममें रहनेवाले (दुर्गन्धीन् लोहितास्यान्) दुर्गंधवाले रक्त युक्त मुंहवाले, (मककान् नाशयामसि) मच्छरोंको यहांसे नाश करो ॥ १२ ॥

(यः आत्मानं अतिमात्रं अंसे आधाय) जो अपने आपको अत्यंत रूपसे कन्धेपर चढाकर (बिभ्रति) धारण करता है,हे इन्द्र ! उन (स्त्रीणां प्रतोदिनः रक्षांसि नाशय) स्त्रियोंके गर्भभागको पीडा करनेवाले रोग कृमियोंका नाश कर ॥ १३ ॥

भावार्थ-बुरा शब्द करनेवाले, सब मिलकर बडा आवाज करनेवाले, मुखमें काटने और दंश करनेके साधन रखनेवाले, वनमें नाचनेवाले रोगोत्पादक मच्छर आदि क्रिमियोंको यहांसे हटा दो ॥ ११ ॥

द्युलोकसे प्रकाशनेवाले सूर्यके प्रकाश को जो सह नहीं सकते, दुर्गंधि-युक्त चर्म आदि पदार्थोंमें जो रहते हैं. उन रक्त पीनेवाले मच्छरोंको हम नाश करते हैं ॥ १२ ॥

जो अपने आपको कन्धेके सहारे ऊपर ही ऊपर धारण करता है, वह रोगकृमि स्त्रीके गर्भाशयका रोग बनानेवाला है. उसका नाश कर ॥ १३ ॥

ये पूर्वे वध्वोई यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः ।
आपाकेष्ठाः प्रहासिनं स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि ॥ १४ ॥
येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा ।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः ।
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥ १५ ॥
पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः ।
अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम् ॥ १६ ॥

अर्थ (ये पूर्वे हस्ते शृंगाणि बिभ्रतः) जो पहिले अपने हाथमें सींगोंको लेकर (वध्वः यन्ति) स्त्रीके पास पंहुचते हैं, (ये आपाकेष्ठाः प्रहासिनः) जो पाक स्थानमें रहते हैं और जो हंसाते हैं, (ये स्तंबे ज्योतिः कुर्वते) जो स्तंभमें प्रकाश करते हैं, (इतः तान् नाशयामसि) यहांसे उनको नाश करते हैं ॥ १४ ॥

(येषां प्रपदानि पश्चात्) जिनके पांव पीछे और (पार्ष्णीः पुरः) एडियां आगे हैं और (मुखा पुरः) मुख भी आगे हैं, (खलजाः शकधूमजाः) खलमें उत्पन्न, गोबरके धूमसे उत्पन्न, (उरुण्डा ये च मट्मटाः) जो बडे मुखवाले और कष्ट बढानेवाले (कुम्भमुष्काः अयाशवः) बडे अण्डवाले गतिमान होते हैं उनको हे ब्रह्मणस्पते ! (अस्याः तान) इस स्त्रीके उन रोगबीजोंको (प्रतीबोधन नाशय) ज्ञानसे नाश कर ॥ १५ ॥

(पर्यस्त-अक्षाः) जिनकी आंखें बिगडी हैं, (अ-प्र-चंकशाः) विशेष क्षीण, (पण्डगाः) निर्बुद्ध मनुष्य (अ-स्त्रैणाः सन्तु) स्त्रीसुखसे रहित हों। (इमां स्वपतिं स्त्रियं) इस अपने पतिके साथ रहनेवाली स्त्रीको जो (अ-पतिः संविवृत्सति) स्वयं किसीका पति न होता हुआ प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, हे (भेषज) औषध! उसको (अवपादय) नीचे गिरा॥१६॥

भावार्थ-जो अपने पास सींग रखते हैं, पाकगृहमें रहते हैं,जो चमकते हैं और स्त्रियोंके पास जाकर रोग उत्पन्न करते हैं,उन रोगकृमियोंको यहांसे नाश करो॥ १४ ॥ इनके पांव पीछेकी ओर और एडि आगेकी ओर होती है, मुखभी आगे की ओर होता है, जो गोबर आदिमें उत्पन्न होते हैं ये बडा कष्ट देनेवाले रोगबीज यहांसे हटा दो ॥ १५ ॥

उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् ।
उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम् ॥
पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना ॥ १७ ॥
यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते ।
पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥ १८ ॥
ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते ।
स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु ॥ १९ ॥

अर्थ-(स्पन्दना गौः स्थालीं इव) कूदनेवाली गाय जिस प्रकार दुग्धपात्रको लातसे ढकेलती है उस प्रकार (पार्ष्ण्या पदा च) एडि और पदसे (उद्धर्षिणं मुनिकेशं) झूटमूठ करनेवाले, मुनियोंके समान केशधारी कपटी, (जम्भयन्तं मरीमृशं) हिंसक और बुरा स्पर्श करनेवाले (उपेषन्तं उदुम्बलं) पास जानेवाले, मारनेवाले,(तुण्डेलं उत शालुडं) भयानक मुखवाले और दुष्टको (प्रविध्य) विशेष रीतिसे वेध डाल ॥ १७ ॥

(यः ते गर्भं प्रतिमृशात्) जो तेरे गर्भका नाश करे, और (ते जातं वा मारयाति) तेरे जन्मे हुए बालक को जो मारता है, (तं) उसको (उग्रधन्वा पिंगः) उग्रधनुर्धारी पीतवर्णवाला (हृदयाविधं कृणोतु) हृदयमें प्रहार करे ॥ १८ ॥

(ये अम्नः जातान् मारयन्ति) जो आभ्रे उत्पन्न गर्भोको मारते हैं, जो (सूतिकाः अनुशेरते) प्रसूती गृहमें रहते हैं. उन (गंधर्वान् स्त्रीभागान्) गंधर्वान् स्त्रीयोंके भागमें रहेवाले रोगकृमियोंको (पिंगः) पीली पज औषधि (वातः अभ्रं इव) वायु मेघको हटना है वैसे (अजतु) हटा देवे ॥१९॥

भावार्थ- जिनकी आखें खराब होती हैं. जो विशेष क्षीण हैं, वे स्त्रीसे सम्बन्ध न रखें। जो पुरुष अपनी स्त्रीको छोड कर अन्यकी स्त्रीसे कुकर्म करता है, उसको औषधसे गिरा दो ॥ १६ ॥

जैसी गौ मट्टीका वर्तन तोडती है, उस प्रकार एडी और पांव से झूठे, मुनिवेषधारी, हिंसक दम्भी आदि सब प्रकारके दुष्ट मनुष्यको वेध डाल ॥ १७ ॥ जो गर्भका नाश करेगा, अथवा उत्पन्न हुए बालकको खावेगा, उसके हृदयपर प्रहार कर ॥ १८ ॥

परिंसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत् ।
गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥ २० ॥ (१५)
पवीनसात् तंङ्गल्वा३च्छायंकादुत नग्नंकात् ।
प्रजायै पत्यें त्वा पिङ्गः परिं पातु किमीदिनः ॥ २१ ॥
द्व्यास्याच्चतुरक्षात् पञ्चंपादादनङ्गुरेः ।
वृन्तांदभि प्रसर्पतः परिं पाहि वरीवृतात् ॥ २२ ॥

अर्थ-(परिसृष्टं धारयतु) सब प्रकारसे उत्पन्न हुए गर्भका धारण करें। (यत् हितं तत् मा अव पादि) जो गर्भ रखा है वह न गिरे। (नीविभार्यौ उग्रौ भेषजौ) कपडेमें धारण करने योग्य दोनों उग्र औषध (ते गर्भं रक्षतां) तेरे गर्भकी रक्षा करें ॥ २० ॥

(पवीनसात् तंगल्वात्) वज्रसमान नाकवाले, बडे गालवाले, (छायकात् उत नग्नकात्) काले और नंगे (किमीदिनः) भूखे रोगक्रिमीसे (प्रजायै पत्ये) प्रजा और पतिके सुखके कारण (पिंगः त्वा परिपातु) पीला औषध तेरी रक्षा करे ॥ २१ ॥

(द्व्यास्यात् चतुरक्षात्) दो मुखवाले, चार आखोंवाले, (पञ्चपादात् अनंगुरेः) पांच पांववाले और विना अंगुलियोंवाले (अभिप्रसर्पतः वरीवृतात् वृन्तात्) आगे बढनेवाले घेरे हुए जडोंसे युक्तसे (परिपाहि) रक्षा कर ॥ २२ ॥

भावार्थ—जो जन्मे बालकोंको मारता है, जो सूतिकागृहमें रहते हैं,जो स्त्रियोंके पास रहते हैं उन रोगक्रमियोंको यह पीली औषधि दूर करे॥१९॥

गर्भाशयमें गर्भकी उत्तम धारणा हो, गर्भ न गिरे, दोनों उग्र औषधियां गर्भकी रक्षा करें ॥ २० ॥

प्रजाकी सुरक्षितता के लिये वज्रनासिकावाले, बडे गालवाले, काले नंगे भूखे रोगकृमिसे पीली औषधिके द्वारा तेरी रक्षा करते हैं ॥ २१ ॥

दो मुखवाले, चार आंखवाले, पांच पांववाले, अंगुलीरहित, रोगकृमि जो पास आते हैं, उनसे रक्षा हो ॥ २२ ॥

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥ २३ ॥
ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि ।
बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् ॥ २४ ॥
पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् ।
आण्डादो गर्भान्मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः ॥ २५ ॥
अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद् रोदमघमावयम् ।
वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥ २६ ॥ (१६)
॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ-(ये आमं मांसं अदन्ति) जो कच्चा मांस खाते है, (ये च पौरुषेयं क्रविः) और जो पुरुषका मांस खाते हैं. (केशवाः गर्भान् खादन्ति) बालोंवाले जो गर्भोंको खाते हैं (तान् इतः नाशयामसि) उनको यहांसे हम हटा देते हैं ॥ २३ ॥

(ये सूर्यात् परिसर्पन्ति) जो सूर्यसे पीछे हटते हैं (श्वशुरात् स्नुषा इव अधि) जैसे श्वशुरसे बहु दूर जाती है। (बजः च पिंगः च) बज और पिंग (तेषां हृदये अधि निविध्यतां) उनके हृदयके ऊपर वेध करें ॥२४॥

हे (पिंग) पीले औषध ! (जायमानं रक्ष) उत्पन्न होनेवाले बालककी रक्षा कर(पुमांसं स्त्रियं मा क्रन्) पुरुष और स्त्रीको न मारें। (आण्डादः गर्भान् मा दभन्) अण्ड खानेवाले गर्भोंका न नाश करें।(इतः किमीदिनः बाधस्व) यहांसे भूखे क्रिमियोंको दूर कर ॥ २५ ॥

(अ-प्रजास्त्वं) वंध्यापन, (मार्त-वत्सं) बच्चोंका मरना, (आत रोदं) रोना पीटना, (अघं आवयं) पापका भोग (तत्) यह सब दुःख (वृक्षात् स्रजं इव) वृक्षसे फूल गिरनेके समान (अप्रिये प्रतिमुञ्च) अप्रिय स्थान. में छोड दो ॥ २६ ॥

भावार्थ-जो कच्चा मांस खाते हैं, गर्भोंको खाते हैं, उनको यहां से नाश कर ॥ २३ ॥

जो कृमि सूर्यसे छिपते हैं. सूर्यकिरणोंके सामने ठहर नहीं सकते. उनका नाश बज औषधिसे कर ॥ २४ ।

उत्पन्न होनेवाले बच्चेकी रक्षा कर। स्त्री पुरुषको दुःख न दो। अण्ड खानेवाले गर्भका नाश न करें। दुष्टोंको यहांसे दूर कर ॥ २५ ॥

वंध्यापन, बच्चे मरना, रोनेकी ओर प्रवृत्ती, पाप प्रवृत्ति, ये सब दोष हट जांय। वृक्षसे फूल गिरनेके समान ये सब दोष मनुष्यसे दूर हों ॥ २६ ॥

प्रसूतिके दोष।

प्रसूतिके समय स्त्रियोंको विविध रोग होते हैं, उसका कारण मलिनता है, अतः इस स्थानकी पवित्रता करके और कुछ औषधियोंका उपयोग करके स्त्रियोंके प्रसूतिके कष्ट दूर करने चाहिये, इस महत्त्वपूर्ण विषयका वर्णन इस सूक्तमें कहा है। इसका ऋषि 'मातृ-नामा' है अर्थात् यह माता हि है। माताओंके अनुभव सूक्ष्मरीतिसे देखकर उनका संग्रह करके जो अनुभवज्ञान प्राप्त हो सकता है, वह इस सूक्तमें है। इस सूक्त का विषय इसी सूक्तके ९ वे मन्त्रमें कहा है—

यः स्त्रियं मृतवत्सां अवतोकां करोति।
अस्याः तं नाशय, कमलं अञ्जिवं (कुरु) ॥ (मं० ९)

" जिस रोगके कारण स्त्रीके बच्चे मरते हैं, अथवा जिस दोषसे स्त्रीका गर्भ पतनको प्राप्त होता है, उस स्त्रीका वह दोष दूर करना चाहिये और उसके गर्भाशयको निर्दोष बनाना चाहिये। यह इस सूक्तका साध्य है। स्त्रीका गर्भपात न होवे और बाल बच्चे भी दीर्घायु हों। यह उपाय करना इस सूक्तका वांच्छित विषय है। यह विषय सब स्त्रीजातिका हित करनेवाला होनेके कारण बडा उपयोगी है। सब कुटुम्बी इससे लाभ उठा सकते हैं। इस सूक्तमें कहा है कि सूतिकागृहमें कुछ रोगबीज होते हैं अथवा बाहरसे घुमते हैं, उनका नाश करनेके लिये 'बज पिंग' नामक औषधि है, देखिये-

ये अम्नः जातान् मारयन्ति, सूतिकाः अनुशेरते।
स्त्रीभागान् पिङ्गः अजतु ॥ (मं० १९)

"जो रोगबीज जन्मे हुए बच्चोंको मारते हैं, वे सूतिका गृहमें रहते हैं, वेही स्त्रियोंके भागोंमें पहुंचते हैं। उनको दूर करनेके लिये पिंग नामक औषधि है।" इस पिंग औषधिका विचार हम आगे करेंगे, यहां इतनाही देखना है कि ये रोगबीज सूतिका-गृहके मलोंके कारण उत्पन्न होते हैं। और इसके कारण गर्भस्राव होता है, गर्भपात

होता है और बच्चेभी मरजाते हैं। प्रायः सूतिकागृहमें अज्ञानी लोग अन्धेरा रखते हैं, सूर्यप्रकाश वहां नहीं पहुंचता, अतः अन्धेरेके दोषसे ये रोगबीज वहां होते और बढते हैं, ये सूर्यप्रकाशमें नहीं रहते, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखिये-

ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि।
बजः तेषां हृदये अधि निविध्यताम्। (मं० २४)

"ये रोगबीज सूर्यप्रकाशसे दूर भागते हैं जिस प्रकार बहु श्वशुरसे दूर भागती है। उन रोगक्रिमियोंके हृदयोंपर बज औषधि बडा धक्का लगाती है।" यहां उपमा उत्तम रीतिसे विचार करनेयोग्य है। बहु अर्थात् स्नुषा श्वशुरके पास नहीं ठहरती, वह उसके सन्मुखभी खडी नहीं होती, श्वशुर आते ही पीछे हटकर भागती है। उसी प्रकार ये रोगबीज सूर्यप्रकाश के सन्मुख खडे नहीं रह सकते, सूर्यप्रकाशमें जीवित भी नहीं रह सकते, जहां सूर्यप्रकाश पहुंचता है वहां ये नहीं रहते। अतः जहां नीरोगता करनेकी इच्छा हो वहां सूर्यप्रकाश विपुल रखना चाहिये। यदि प्रसूतिगृहके रोगबीज नष्ट करनेकी इच्छा हो तो वहां सूर्यप्रकाश पहुंचानेकी व्यवस्था करना चाहिये।

बज औषधि इनके हृदयोंपर प्रहार करती है ऐसा यहां कहा है, इससे इनको हृदय है यह बात सिद्ध होती है। अर्थात् ये रोगबीज हृदयवाले होनेसे कृमिरूप हैं, ये निर्जीव नहीं हैं, ये कृमि चूंकि अन्धेरेमें बढते हैं और सूर्यप्रकाशमें नाशको प्राप्त होते हैं, अतः इनसे बचनेका उपाय सूर्यप्रकाश हि है यह बात निश्चित होगयी है। परमेश्वर ने सूर्यप्रकाश एक ऐसी औषधि दी है कि जिससे अनेक रोग दूर होते हैं और मनुष्य नीरोग और दीर्घायु हो सकता है। इसलिये कहा है-

अप्रजास्त्वं मार्तवत्सं रोदं अघं आवयं प्रतिमुञ्च। (मं० २६)

"संतान न होना, बच्चे पैदा होनेके बाद मरने, उसकारण रोने पीटनेका संभव होना, पापाचरणमें प्रवृत्ति होना, इत्यादि बातोंसे मनुष्यको मुक्त होना चाहिये।" अर्थात् मनुष्यको ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि घरमें संतति पैदा होवे, उत्पन्न हुए बच्चे न मरें दीर्घकाल जीवित रहें, मनुष्यको कुटुंबियोंकी मृत्युके कारण रोने पीटनेका समय न आवे, सब कुटुंबि आनंदसे कालक्रमण करते रहें और किसीकी प्रवृत्ति पापकी ओर न होवे। यह साध्य करनेके लिये विपुल सूर्यप्रकाशमें रहनेकी अत्यंत आवश्यकता है। इसका कार्यकारणभाव यह है कि सूर्यप्रकाशसे नीरोगता होती है,

रोगबीज दूर होते हैं, नीरोग होनेसे शरीर पुष्ट और वीर्यवान होता है। स्त्रीपुरुषोंके शरीर वीर्यवान और हृष्टपुष्ट होनेसे ऐसे दोनों पतिपत्नियोंसे होनेवाला गर्भाधान उत्तम होता है, वह स्थिर होता है, संतान नीरोग, बलवान और सुन्दर होता है, दीर्घजीवी होता है, अर्थात् ऐसे संतान होनेसे आगन्तुक कारण होनेवाली रोगपीडनेकी संभावना नहीं होती, इत्यादि लाभ पाठक विचार करके जान सकते हैं। प्रसूतिगृहका आरोग्य रखनेसे ऐसे अनेक लाभ होते हैं। और प्रसूतिगृहका आरोग्य सूर्यप्रकाशसे स्थिर हो सकता है, अतः कहा है—

यः स्वपन्तीं जाग्रतीं दिप्सति (तं) सूर्यः अनीनशत् ॥ (मं० ८)

"जो रोगबीज सोती हुई या जागती हुई स्त्रीके शरीरमें जाकर उनको कष्ट देता है, उस रोगबीजका नाश सूर्य करता है।" सूर्यप्रकाशसे ये सब रोगबीज दूर होते हैं, रोगजन्तु भी सूर्यप्रकाशसे दूर हटते हैं, यह बात आजका नवीन शास्त्र भी कहता है। अब पाठक देखें कि यदि हमारे प्रसूतिगृह इस वेदाज्ञाके अनुसार बनाये जांय, तो कितना कल्याण होगा। परंतु इसका विचार बहुत थोडे लोग करते हैं, इसी सूर्य-प्रकाशका महत्त्व निम्नलिखित मंत्रमें विशेष रीतिसे कहा है—

ये सूर्यं न तितिक्षन्ते तान् नाशयामसि। (मं० १२)

"जो सूर्यको नहीं सह सकते उन रोगक्रिमियोंका नाश हम करते हैं।" यहां कहा है कि ये रोगजन्तु सूर्यप्रकाशको सह नहीं सकते। अन्धकारमें हि ये होते, बढते और रोगोत्पत्ति करते हैं। जो सूर्यप्रकाशको सह नहीं सकते, वे सूर्यप्रकाशसे हि नष्ट होते हैं। सूतिकागृहका आरोग्य इस प्रकार सूर्य प्रकाशसे सहजहीमें प्राप्त हो सकता है अतः कहा है—

यः गर्भं प्रतिमृशात् जातं वा मारयाति।
तं पिंगः हृदयाविधं कृणोतु। (मं० १८)

"जो रोगक्रिमि गर्भका नाश करता है, जन्मे हुए बच्चेका नाश करता है, उसको पिंगलवर्णका सूर्य (अथवा पीली औषधि) हृदयमें वेध करके नाश करे।" यहां 'पिंग' शब्दके दोनों अर्थ होना संभव है। सूर्य भी (पिंगल) पीत वर्ण होता है और वह वनस्पति भी वैसीहि पीली होती है। जो रोगक्रिमि पूर्वोक्त प्रकार प्रसूतिगृहमें अंधेरेमें और मलिनतामें उत्पन्न होते हैं, वे इस प्रकार नाश करते हैं—

ये आमं मांसं खादन्ति, ये पौरुषेयं च क्रविः।
केशवाः गर्भान् खादन्ति तान् इतः नाशयामसि। (मं० २३)

" ये रोगजन्तु शरीरका कच्चाहि मांस खाते हैं, मानवी शरीर के पृष्ठ वहांके वहांही खाते हैं, येही गर्भोंको खाते हैं, अतः उन का नाश करना उचित है । " उनका नाश करना सूर्यप्रकाशसेहि हो सकता है । जब ये रोगक्रिमी शरीरमें घुमते हैं तब जहां वे जाते हैं वहां रक्त और मांस खाकर मनुष्यको क्षीण करते हैं, और यदि ये गर्भमें पहुंचे तब गर्भको भी सुखा देते हैं, इसलिये सूर्यप्रकाश की शरण जाना अत्यन्त योग्य है । अतः कहा है-

पिंग जायमानं रक्ष, पुमांसं स्त्रियं मा क्रन् ।
आण्डादः गर्भान् मा दभन्, इतः किमीदिनः बाधस्व ॥ (मं०२६)

पिंगलवर्ण सूर्य (अथवा औषध) जन्मे हुए बालककी रक्षा करता है, स्त्री या पुरुष को रोनेका अवसर नहीं देता. गर्भोंको रोगक्रमि दबा नहीं सकते, और ये जो भूखे क्रिमी है उनको सूर्यप्रकाश ही दूर हटादेता है । " ये सूर्यप्रकाशसे लाभ होते हैं । इस मन्त्रमें इन रोगक्रिमियोंका नाम 'किमीदिन्' और 'आण्डाद' कहा है । किमीदिन्का अर्थ (किं-इदानीं) अब क्या खायें, अब क्या खायें, ऐसा कहनेवाले ये कृमी होते है अर्थात् ये सदा भूखे होते हैं । कभी इनकी भूख शान्त नहीं होती, क्योंकि इनको अनुकूल पदार्थ खानेको मिला, तो वे बहुत संख्यामें बढते हैं और अधिक खानेकी इच्छा करते हैं । इसी प्रकार ये (आण्डाद) अण्डमें स्थित वीर्यको खाजाते हैं और मनुष्यको निर्वीर्य बनादेते हैं, इसलिये इनका हमला होनेसे मनुष्य अकालमें मरता है, परन्तु यदि यह मनुष्य सूर्यप्रकाशसे नीरोग बननेका यत्न करेगा, तो इसकी अकालमृत्यु हटती है ।

ये रोगबीज प्रसूतिगृहमें स्त्रीके शरीरपर हमला करते हैं और उसके शरीरमें रोग उत्पन्न होता है । रोग उत्पन्न होनेके पश्चात् उसके निवारणका उपाय करनेकी अपेक्षा रोग न होनेका यत्न करना अधिक लाभकारी है, इसलिये कहा है—

जातायाः दुर्णामा अलिंशः वत्सपः मा गृधत् । (मं० १)

"बालक जन्मतेही दुर्णामा, अलिंश और वत्सप ये रोगबीज स्त्रीपर हमला करनेकी इच्छा न करें । " प्रसूतिगृहमें ये रोगक्रिमी होते है और स्त्रीपर हमला करते हैं । अतः ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि, ये कृमि प्रसूतिगृहमें न उत्पन्न हों, उत्पन्न हुए तो स्त्रीके शरीरपर हमला न करें, हमला किया तो रोग उत्पन्न करनेमें समर्थ न हों । प्रसूतिगृहमें बज नामक औषधि रखनेसे अथवा सूर्यकिरण वहां पहुंचानेसे यह बात सिद्ध हो सकती है. अतः कहा है—

बजं दुर्णामचातनं । (मं० २)

" यह औषधी इस दुर्नाम नामक रोगजन्तुको दूर करनेवाली होती है।" यह वनस्पति प्रसूतिगृहमें रखनेसे वहां का आरोग्य स्थिर रह सकता है। सब कृमि रोग उत्पन्न करते हैं ऐसी बात नहीं है, इन कृमियोंमें दो प्रकारके कृमि हैं, उनमेंसे एक अच्छा है और दूसरा बुरा, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखने योग्य है—

दुर्णामा च सुनामा च उभौ संवृतं इच्छतः।
अरायान् अप हन्मः। सुनामा स्त्रैणं इच्छताम्॥ (मं० ४)

" दो प्रकारके ये कृमी हैं, एक (सुनामा) उत्तम नामवाला अर्थात् जो शरीरमें हितकारी है और दूसरा (दुः-नामा) दुष्ट नामवाला, जिससे शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं। ये दोनों शरीरपर आक्रमण करना चाहते हैं। इनमें जो (अ-रायान्) कृपण, अनुदार अथवा दुष्ट होते हैं उनका नाश हम करते हैं; और जो उत्तम हैं वे स्त्रीके पास पहुंचें। " अर्थात् उत्तम कृमि मनुष्यके लिये हितकारक हैं, परन्तु जो रोगजन्तु हैं वे ही घातक हैं, अतः ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये कि ये घातक रोगजन्तु यहां स्त्रियोंको कष्ट न पहुंचा सकें। ये कृमि किस रूपके होते हैं, इस का वर्णन निम्नलिखित मन्त्रमें कहा है—

द्व्यास्यात् चतुरक्षात् पञ्चपदात् अनंगुरेः।
अभिसर्पतः परिवृतात् वृन्तात्परिपाहि। (मं० २२)

" इन कृमियोंको दो मुख, चार आंख और पांच पांव होते हैं। इनको अंगुलियां नहीं होती। ये हमला चढाते हैं, और संघशक्ति से रहते हैं, इनसे बचना चाहिये।" यह इन कृमियोंका वर्णन है, इसके साथ निम्नलिखित वर्णन और देखिये—

येषां प्रपदानि पश्चात्, पार्ष्णी मुखानि च पुरः।
खलजाः शकधूमजाः उरुण्डाः मट्मटाः कुम्भमुष्काः
अयाशवः। अस्याः तान् प्रतिबोधेन नाशय। (मं०१५)

"इनके पांव पीछेकी ओर तथा एडी और मुख आगेकी ओर होता है।" इन कृमियोंका वर्णन करनेवाले शब्द इस मंत्रमें 'खलजाः, शकधूमजाः, उरुण्डाः, मट्मटाः, कुम्भमुष्काः, अयाशवः' ये हैं, इनमें 'शकधूमज' शब्दका अर्थ ' गोबरके धूवेंसे उत्पन्न' है, अन्य शब्दोंके अर्थ अभीतक विशेष विचार करने योग्य स्पष्ट नहीं हुए हैं। पाठक इनकी खोज करें और अधिक यत्नके द्वारा इनके अर्थको जानें। इस सूक्तमें ऐसे और भी बहुतसे शब्द हैं कि जिनका अर्थ स्पष्ट खुलता नहीं है। ये कृमि स्त्रियोंके शरीरोंमें रोग उत्पन्न करते हैं, इस विषयमें कहा है-

ये हस्ते शृंगाणि बिभ्रतः वध्वः यन्ति ।
ये स्तम्बे ज्योतिः कुर्वते ।
ये आ-पाके-स्थाः प्रहासिनः नाशयामसि ।

(मं० १४)

"जो हाथोंमें अपने सींगोंको धारण करते हैं और स्त्रिके पास पंहुंचते हैं, जो चमकते है और पाकशालामें निवास करते है, उन का नाश करते हैं।" ऐसे कृमि स्त्रियोंके शरीरमें घुसते हैं और वहां विविध रोग उत्पन्न करते हैं,अतः इनका नाश करना योग्य है। इस वर्णन का 'स्तंबमें ज्योति करनेका' क्या अर्थ है इसका ज्ञान नहीं होता। इसकी भी खोज होनी चाहिये। इस सूक्तमें रोगजंतुओंके दो भेद कहे हैं एक सूक्ष्म और एक बडे। यहांतक सूक्ष्मकृमियोंका वर्णन हुआ अब बडे मच्छर जैसे कृमियोंका वर्णन देखिये—

मच्छरोंका गायन।

गर्दभनादिनः कुसूलाः कुक्षिलाः करुमाः सिमाः ।
सायं शालाः परिनृत्यन्ति, तान् गन्धेन नाशय ॥ (मं० १०)

" गधे जैसा शब्द करनेवाले, जिनके पास चुभानेके लिये सूई जैसे हथियार होते हैं जिनका पेट बडा होता है, जो सायंकालके समय घरके पास नाचते हैं, इनका गन्ध से नाश कर।" यह वर्णन प्रायः मच्छरों अथवा मच्छर जैसे कीडोंका वर्णन है। वे शब्द करते हैं, सायंकाल इनका शब्द सुनाई देता है, इनके काटनेकी सुईयां बडी तीक्ष्ण होती हैं। इनका नाश करनेके लिये उग्रगन्धवाले अथवा सुगन्धवाले पदार्थ जलाना चाहिये। ऊद या धूप जलानेसे और घरमें इसका धूंवां करनेसे मच्छर हटते हैं, यह आजका भी अनुभव है। इसी प्रकार उग्रगन्धवाले पदार्थ भी जलानेसे इन कीटों-को हटाया जा सकता है। इन्हींका वर्णन निम्नलिखित मन्त्रमें है—

मच्छरोंके शस्त्र।

कुकुन्धाः कुकूरमाः कृतीः दूर्शानि बिभ्रति ।
ये घोषं कुर्वतः वने प्रनृत्यतः; तान् नाशयामसि। (मं० ११)

"(कृतीः) काटनेवाले (दूर्शानि) दंश करनेके साधन अपनेपास धारण करते हैं। ये शब्द करते हैं और जङ्गलमें नाच करते हैं, इनका नाश करते हैं।" यह वर्णन भी

पूर्वके समानही मच्छरोंका वर्णन है । मच्छरोंके मुखोंमें जो काटनेके साधन होते हैं, उनका नाम यहां ' दूर्श ' दिया है । और काटनेके कारणही इनको 'कृवी' अर्थात् काट-नेवाला कहा है । ये ज्वरादिको बढाते हैं इसलिये इनको उत्पन्न करनेवाले पदार्थ जलाकर नाश करना उचित है । इस मन्त्रमें और पूर्व मन्त्रमें कई ऐसे शब्द हैं कि जिनका अर्थ स्पष्ट नहीं ज्ञात होता । ये शब्द खोजके योग्य हैं । तथा और देखिये-

मच्छरोंके स्थान ।

अरायान् वस्तवासिनः दुर्गन्धीन् लोहितास्यान्
मककान् नाशयामसि ॥ (मं० १२)

" ये कृमि वस्त अर्थात् चर्म आदिपर रहते हैं, इनको दुर्गन्ध आती है, इनके मुख लाल होते हैं, इन मशकोंका अर्थात् मच्छरोंका नाश करते हैं । " इस मंत्र में ' मकक ' शब्द बहुत करके मच्छरोंका वाचक है। 'वस्त ' शब्दके निश्चित अर्थ की भी खोज करना आवश्यक है। इन कृमियोंको यहां ' अराय ' कहा है। इस शब्दका अर्थ ' न देनेवाला ' है । ये कृमि आरोग्यको नहीं देते, खूनको नहीं देते, आयुष्यको नहीं देते तथा शरीरकी शोभाको और बलकोभी नहीं देते हैं। क्योंकि इनसे अनेक रोग होते हैं और उस कारण उक्त बातोंका क्षय होता है । इन रोगकृमियोंके कुछ लक्षण निम्नलिखित शब्दोंद्वारा प्रकट होते हैं, अतः ये शब्द अब देखिये, द्वितीय-मन्त्रमें निम्नलिखित रोगजन्तुओंके नाम हैं—

रोगक्रिमियोंके नाम ।

१ पलाल-अनुपलालौ— मांस जिनको अनुकूल है, मांस रससे जो बढते हैं, मांस खाकर जिनकी वृद्धि होती है ।
२ शर्कुः- हिंसक, जो नाश करते हैं,
३ कोकः— कामको बढाकर वीर्यनाश करनेवाले,
४ मलिम्लुच्— मलीनतासे बढनेवाले, मलीनतामें उत्पन्न होनेवाले,
५ पलीजकः- पलित रोगको करनेवाले,
६ आश्रेषः- किसीके साथ रहनेवाले,
७ प्रमीलिन— सुस्ती लानेवाले,

इस मंत्रके अन्यशब्द "वव्रिवासस्, ऋक्षग्रीव" ये खोज करने योग्य हैं, क्यों कि इनका अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ है । पंचम मंत्रमें निम्नलिखित शब्द हैं—

८ कृष्णाः=काले रंगवाले, किंवा खींचनेवाले,

९ केशी=बालोंवाले अथवा, तन्तुवाले,

१० अ-सुरः=प्राण घात करनेवाले,

११ तुण्डिकः=छोटे मुखवाले,

१२ अ-रायः=आरोग्यादि न देनेवाले,

इस पञ्चम मंत्रमें ' स्तंबज ' शब्द है, इसका अर्थ समझमें नहीं आता है। अतः वह खोज की अपेक्षा करता है। षष्ठमंत्रमें निम्नलिखित शब्द हैं—

१३ अनुजिघ्रः=सूंघनेसे शरीरमें प्रवेश करनेवाले, नासिका द्वारा शरीरमें प्रवेश करनेवाले, फेफडोंमें जो जाते हैं,

१४ प्रमृशन्=स्पर्श करनेवाले, स्पर्शसे प्राप्त होनेवाले, स्पर्शजन्य रोगके बीज,

१५ क्रव्यादः=मांस खानेवाले, शरीरका रक्त और मांस खानेवाले,

१६ रेरिह्=हिंसक, घातक, नाशक,

१७ श्वकिष्की=कुत्तेके समान पीडा करनेवाले,

इसी प्रकार अन्य मंत्रोंमें जो शब्द हैं, उनका भी यहां विचार करेंगे तो उनसे इन रोगक्रमियोंका ज्ञान हो सकता है

इन सब रोगबीजोंको 'पिंग बज' दूर करता है। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र-भाग देखने योग्य है—

पिंग बज।

परिसृष्टं धारयतु, हितं मा अवपादि।
उग्रौ भेषजौ गर्भं रक्षताम् ॥ (मं० २०)
पवीनसात् तंगल्वात छायकात् नग्नकात् किमीदिनः।
प्रजायै पत्ये पिंगः परिपातु ॥ (मं० २१)

"गर्भाशयमें आधान किया हुआ गर्भ उत्तम रीतिसे धारण किया जावे, गर्भाशयमें स्थित गर्भ पतनको न प्राप्त हो,यह दोनों तीव्र औषधियां उसकी रक्षा करें। इन रोग-बीजोंसे उत्तम संतान होनेके लिये पिंग वनस्पतिसे गर्भाशयकी रक्षा होवे।"

इक्कीसवे मंत्रके रोगबीजवाचक शब्द बडे दुर्बोध हैं तथा इस सूक्तमें कहे "पिंग बज" वनस्पतिका भी कुछ पता नहीं चलता कि यह यह वनस्पति कौनसी है। वैद्यक

ग्रंथोंमें इसका नाम नहीं है। अतः इसकी खोज होना कठिन है। श्री० सायनाचार्यजीने अपने अथर्वभाष्यमें इस सूक्तपर भाष्य करते हुए इसका अर्थ 'श्वेतसर्षप' किया है, अर्थात् "सफेद सरीसा, सर्षा, राई।" संभव है यही 'पिंग वज' का अर्थ होगा। इसके गुण वैद्यकग्रंथोंमें निम्नलिखित प्रकार दिये हैं—

पिंगवज के गुण।

तिक्तः तीक्ष्णोष्णः वातकफघ्नः, उष्णः कृमिकुष्ठघ्नः।
सितासित भेदेन द्विधा। (राज०)
कटूष्णो वातशूलनुत्। गुल्मकण्डूकुष्ठव्रणापहः।
वातरक्तग्रहापहः। त्वग्दोषशमनो विषभूतव्रणापहः।
सर्षपतैलगुणाः-वातकफविकारघ्नं कृमिकुष्ठघ्नं चक्षुष्यम्।

"सरीसा तिक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, वात और कफको हटानेवाला, कृमि और कुष्ठरोगको दूर करनेवाला है। श्वेत और काला ऐसे इसके दो भेद हैं। यह कटु, उष्ण, वातशूलका नाश करनेवाला, गुल्म, कण्डु, कुष्ठ, व्रण का नाश करनेवाला है। वात रक्तदोषको दूर करनेवाला, त्वचाके दोषको दूर करनेवाला, विषसे उत्पन्न व्रणको हटानेवाला है। सरीसके तैलके गुण ये हैं-वात कफ विकारको दूर करता है, कृमि और कुष्ठका नाश करता है और आंखके लिये हितकर है।"

इसवर्णनमें सर्षोंका गुण कृमिनाशक, कुष्टनाशक दिया है जो पूर्वोक्त सूक्तके उपदेशके साथ संगत है, अतः बहुत संभव है कि यही अर्थ 'पिंग वज' का होगा। इसकी विशेष खोज होना अत्यंत आवश्यक है। वस्तुतः यह सब सूक्त हि विशेष खोज करने योग्य है क्यों कि इसके कई शब्द और कई वाक्य दुर्बोध हैं और आधुनिक कोशोंसे इनका अर्थ करनेके लिये कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है। जिनके पास खोज करनेके विशेष साधन हैं वे इस दिशासे यत्न करें।

औषधि ।

[७]

(ऋषिः— अथर्वा । देवता–ओषधयः ।)

या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि ॥ १ ॥
त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद् देवेषितादधि ।
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥ २ ॥

अर्थ-(याः) जो औषधियां (बभ्रवः) पोषण करनेवाली,(याः च शुक्राः) जो वीर्य बढानेवाली (उत रोहिणी) और जो बढानेवाली तथा (पृश्नयः) जो विविध रंगवाली (असिक्नीः कृष्णाः ओषधीः) श्याम, काली औष-धियां हैं उन (सर्वाः अच्छा आवदामसि) सबको सुस्पष्टतया पुकारते हैं ॥ १ ॥

(इमं पुरुषं) इस मनुष्यको (देव-इषितात् यक्ष्मात्) देवसे प्रेरित रोगसे (अभि त्रायन्तां) बचावे । (यासां वीरुधां) जिन औषधियोंका (द्यौः पिता) द्युलोक पिता, पृथिवी माता और समुद्र मूल (बभूव) हुआ है ॥ २ ॥

भावार्थ— कई औषधियां पोषण करनेवाली, कई वीर्य बढानेवाली और कई मांसको भरनेवाली हैं । ये विविध रंगरूपवाली, श्याम और काली हैं इनका औषधिप्रयोगमें उपयोग होता है ॥ १ ॥

औषधियां भूमिपर उगती हैं और इनकी [illegible] [illegible] से होती है । ये औषधियां [illegible] वायु आदि देवोंके [illegible] [illegible] रोगोंसे बचाती हैं ॥ २ ॥

आपो अग्रं दिव्या ओषधयः ।
तास्ते यक्ष्ममेनस्यमङ्गादङ्गादनीनशन् ॥ ३ ॥
प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि ।
अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ॥४॥
यद् वः सहः सहमाना वीर्यं१ यच्च वो बलम् ।
तेनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥ ५ ॥

अर्थ- (आपः अग्रं) जल मुख्य है और (ओषधयः दिव्याः) औषधियाँ भी दिव्य हैं। (ताः ते एनस्यं यक्ष्मं) ये तेरे पापसे उत्पन्न रोगको (अंगात् अंगात् अनीनशन्) अंगप्रत्यंगसे नाश करते हैं ॥ ३ ॥

(प्रस्तृणतीः) विशेष विस्तारवाली, (स्तम्बिनीः) गुच्छोंवाली, (एक शुङ्गाः) एक कोपलवाली, (प्रतन्वतीः) बहुत फैलनेवाली, (ओषधीः आवदामि) औषधियोंको मैं पुकारता हूं। (अंशुमतीः) प्रकाशवाली (काण्डिनीः) पर्वोंवाली (याः विशाखाः) जो शाखारहित हैं (ते आह्वयामि) मैं तेरे लिये उनको पुकारता हूं। ये (वीरुधः वैश्वदेवीः) औषधियां विशेष दैवी शक्तिसे युक्त (उग्राः पुरुषजीवनीः) प्रभावयुक्त और मनुष्यका जीवन बढानेवाली हैं ॥ ४ ॥

हे (सहमानाः ओषधीः) रोगनाशक औषधियो! (यत् वः सहः) जो तुम्हारी सामर्थ्य है,(यत् च वः वीर्यं बलं) और जो वीर्य और बल हैं(तेन इमं पुरुषं) उससे इस पुरुषको (अस्मात् यक्ष्मात् मुञ्चत) इस रोगसे बचाओ। (अथो भेषजं कृणोमि) और मैं औषध बनाता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ— मुख्य औषध जल है, औषधियां भी दिव्य वीर्यवाली हैं। ये वनस्पतियां पापसे उत्पन्न होनेवाले हर एक रोगसे बचाती हैं ॥ ३ ॥

कई औषधियां बहुत फैलती हैं, कई गुच्छोंवाली होती हैं, कई कोपलों वाली रहती हैं, कईयोंका विस्तार बहुत होता है। इन सबकी प्रशंसा आयुर्वेद प्रयोगमें होती है। ये वनस्पतियां अनेक दिव्यशक्तियोंसे युक्त होती है और मनुष्यका दीर्घजीवन करती हैं ॥ ४ ॥

औषधियोंमें जो सामर्थ्य, वीर्य और बल है, उससे इस मनुष्यका यह रोग दूर होवे। इसीके लिये यह औषध बनाया जाता है ॥ ५ ॥

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेस्मा अरिष्टतातये ॥ ६ ॥
इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ ७ ॥
अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः ।
ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः ॥ ८ ॥

अर्थ-(जीवलां जीवन्तीं) आयु देनेवाली(नघारिषां) हानि न करनेवाली (अरुंधतीं) जीवनमें रुकावट न करनेवाली (उन्नयन्तीं मधुमतीं) उठानेवाली मीठी (पुष्पां ओषधीं) फूलोंवाली औषधीको (इह अस्मै अरिष्टतातये अहं हुवे) यहां इसकी नीरोगता प्राप्तिके लिये मैं बुलाता हूं ॥ ६ ॥

(प्रचेतसः मम वचसः) ज्ञानी मुझ वैद्यके वचनोंसे (मेदिनीः इह आयन्तु) पुष्टिकारक औषधियां यहां आजावें । (यथा) जिससे (इमं पुरुषं) इस पुरुषको (दुरितात् अधि पारयामसि) पापके दुःखरूप भोगसे पार करते हैं ॥ ७ ॥

(याः भेषजीः) जो औषधियां, (अग्नेः घासः) अग्निका अन्न और (अपां गर्भः) जलोंका गर्भरूप (पुनः-नवाः रोहन्ति) पुनः नवीन जैसी बढती हैं वे (सहस्रनाम्नीः) हजार नामवाली (आभृताः ध्रुवाः सन्तु) लायी हुई औषधियां स्थिर होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ— जीवनशक्ति बढानेवाली, दीर्घजीवन देनेवाली, न्यूनता न करनेवाली, शरीरव्यापार में रुकावट न करनेवाली, शरीरकी सुस्थिति बढानेवाली, मधुरपरिपाकवाली फूलोंवाली औषधि इस प्रकारके औषधियोंको इस मनुष्यके आरोग्य लिये मैं लाता हूं ॥ ६ ॥

मेरे वचनके अनुसार ये सब औषधियां मिलकर इस मनुष्यको नीरोग बनावें । इसका यह रोग पापाचरणसे हुआ है ॥ ७ ॥

ये औषधियां अग्निका भोजनरूप हैं और वे जलका धारण करती हैं, ये वारंवार बढती हैं । इनके नाम हजारों हैं । ये गुणधर्मसे स्थिर हों ॥ ८ ॥

अवकोल्वा उदकात्मान ओषधयः ।
व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ॥ ९ ॥

उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः ।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः ॥१०॥ (१७)

अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः ।
त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ॥ ११ ॥

अर्थ-(अवका-उल्वाः उदकात्मानः) शैवालमें उत्पन्न होनेवाली, जल जिनका आत्मा है (तीक्ष्णशृङ्ग्यः ओषधयः) तीखे सींगवालीं औषधियां (दुरितं विऋषन्तु) पापरूपी रोगको दूर करें ॥ ९ ॥

(उन्मुञ्चन्तीः विवरुणाः) रोगसे मुक्त करनेवाली, विशेष रंगरूपवाली (उग्राः विषदूषणीः) तीव्र, विषनाशक (अथो बलासनाशनीः) और कफको दूर करनेवाली, (कृत्यादूषणीः या ओषधीः) घातक प्रयोगोंका नाश करनेवाली जो औषधियां हैं, (ताः इह आयन्तु) वे यहां प्राप्त हों ॥ १० ॥

(अभिष्टुताः अपक्रीताः) प्रशंसित और मोलसे प्राप्त की हुई (याः सहीयसीः वीरुधः) जो बलवाली औषधियां हैं वे (अस्मिन् ग्रामे) इस नगरमें (गां अश्वं पुरुषं पशुं) गौ, घोडा, मनुष्य और अन्य पशुकी (त्रायन्तां) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थ-शैवालसे उत्क्रान्त होकर औषधियां बनी, ये सब पापरूपी दोषसे मनुष्योंको बचावें ॥ ९ ॥

रोगको दूर करनेवाली, तीव्र गुणवाली, शरीरसे विषको दूर करनेवाली कफका दोष दूर करनेवाली, घातपात दूर करनेवाली औषधियां इस स्थानपर उपयोगी हों ॥ १० ॥

वीर्यवती औषधियां इस ग्रामके गौ, घोडे और मनुष्य आदिकोंकी रक्षा करें ॥ ११ ॥

मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव ।
मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षो
घृतमन्नं दुहतां गोपुरोगवम् ॥ १२ ॥
यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः ।
ता मां सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १३ ॥
वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोभिशस्तिपाः ।
अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत् ॥ १४ ॥

अर्थ-(आसां वीरुधां) इन औषधियोंका(मूलं मधुमत्) मूल मीठा है, (अग्रं मधुमत्) अग्रभाग मीठा है, (मध्यं मधुमत् बभूव) मध्यभागभी मीठा है। (आसां पर्णं मधुमत) इनका पत्ता मधु और (पुष्पं मधुमत) फूल भी मीठा है। यह औषधियां (मधोः संभक्ता) मधुसे भरपूर सींची हैं। ये (अमृतस्य भक्षः) अमृतका अन्नहि है। ये औषधियां (गो-पुरो-गवं) गाय जिसके अग्रभागमें रखी होती है ऐसा (घृतं अन्नं दुहतां) घी और अन्न देवें ॥ १२ ॥

(पृथिव्यां यावतीः कियतीः इमाः ओषधीः) पृथ्वीपर जितनी कितनी ये औषधियां हैं (ताः सहस्रपर्ण्यः) वे हजार पत्तोंवाली औषधियां (मा अंहसः मृत्योः मुञ्चन्तु) मुझे पापरूपी मृत्युसे बचावें ॥ १३ ॥

(वीरुधां वैयाघ्रः मणिः) औषधियोंसे बना व्याघ्र जैसा प्रतापी मणि (अभिशस्ति-पाः त्रायमाणः) विनाशसे बचानेवाला संरक्षक है। वह (सर्वाः अमीवाः) सब रोगोंको और (रक्षांसि) रोगकृमियोंको (अस्मत् दूरं अप अधि हन्तु) हमसे दूर ले जाकर मारे ॥ १४ ॥

भावार्थ- इन औषधियोंका मूल, मध्य और अग्रभाग, तथा उनके पत्ते और फूल मीठे हैं। यह अमृतका ही भोजन है, इससे गौ आदि प्राणियोंके लिये विपुल घृतादिकी प्राप्ति हो ॥ १२ ॥

पृथ्वीपर जो भी औषधियां हैं उन अनन्त पत्तोंवाली औषधियां हम सबको मृत्युसे बचावें ॥ १३ ॥

औषधियोंसे बना मणि विनाशसे बचानेवाला होता है; वह सब रोगों, और रोगबीजोंको हम सबसे दूर करे ॥ १४ ॥

सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः ।
गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः ॥ १५ ॥
मुमुचाना ओषधयोग्नेर्वैश्वानरादधि ।
भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः ॥ १६ ॥
या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च ।
ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे ॥ १७ ॥

अर्थ-(आभृताभ्यः) लाई हुई औषधियोंसे रोग (सं विजन्ते) भयभीत होते हैं (स्तनथोः सिंहस्य इव) जैसे गर्जनेवाले सिंहसे और (अग्नेः इव विजन्ते) जैसे अग्निसे घबराते हैं। (वीरुद्भिः अतिनुत्तः) औषधियोंसे भगाया हुआ (गवां पुरुषाणां यक्ष्मः) गौओं और पुरुषोंका रोग (नाव्याः स्रोत्याः एतु) नौकाओंसे जाने योग्य नदियोंसे दूर चला जावे ॥ १५ ॥

(यासां राजा वनस्पतिः) जिनका राजा वनस्पति है, वे (ओषधयः) औषधियां (मुमुचानाः) रोगोंसे छुडाती हुई (वैश्वानरात् अग्नेः अधि) वैश्वानर अग्निके ऊपर स्थित (भूमिं संतन्वतीः इतः) भूमीपर फैलती हुई जांय ॥ १६ ॥

(याः आंगिरसीः) जो अंगोंमें रस बढानेवाली औषधियां (पर्वतेषु समेषु च रोहन्ति) पहाडों और समभूमिपर फैलती हैं (ताः शिवाः पयस्वतीः ओषधीः) वे शुभ, रसवाली औषधियां (नः हृदे शं सन्तु) हमारे हृदयोंमें शान्ति देनेवाली होवें ॥ १७ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार शेरसे सब प्राणी डरते हैं, उस प्रकार औषधियोंसे रोग डरते हैं। अतः इन औषधियोंसे गौओं और मनुष्योंके रोग दूर हों ॥ १५ ॥

सोम राजाके राज्यमें ये सब औषधियां इस विशाल भूमिपर फैल जांय ॥ १६ ॥

औषधियां अङ्गरस बढानेवाली हैं, वे पहाडों और समभूमिपर उगती हैं वे सब रसदार औषधियां हमारे हृदयोंको शान्ति देवें ॥ १७ ॥

याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा ।
अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च सम्भृतम् ॥ १८ ॥
सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ १९ ॥
अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः ।
व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ ॥ २० ॥ (१८)
उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः ।
यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥ २१ ॥

अर्थ-(अहं याः वीरुधः वेद)मैं जिन औषधियोंको जानता हूं,(याः च चक्षुषा पश्यामि) और जो मैं आंखसे देखता हूं, (याः अज्ञाताः जानीमः) जो नहीं जानी हुई औषधियां अब हम जानते हैं, (यासु च संभृतं विद्म) जिनमें वीर्य भरपूर है ऐसा हम जानते हैं ॥ १८ ॥

(सर्वाः समग्राः ओषधीः) सब संपूर्ण औषधियां (मम वचसः बोधन्तु) मेरे वचनसे जानें, (यथा) जिस रीतिसे (इमं पुरुषं दुरितात अधि पारयामसि) इस पुरुषको पापरूपी रोगसे छुडाते हैं ॥ १९ ॥

(अश्वत्थः) पीपल, (दर्भः) कुशा, (वीरुधां राजा सोमः) औषधियोंका राजा सोम, (हविः अमृतं) अन्न और जल, (व्रीहिः यवः च) चावल और जौ, (अमर्त्यौ भेषजौ) अमर औषधियां हैं। ये (दिवः पुत्रौ) द्युलोकसे पुत्रवत् पालन करते हैं ॥ २० ॥

(यदा पर्जन्यः स्तनयति अभिक्रन्दति) जब पर्जन्य गर्जता है और शब्द करता है कि हे (पृश्निमातरः ओषधीः) पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाली औषधीयों ! (उज्जिहीध्वे) ऊपर उठो, तब (पर्जन्यः रेतसा वः अवति) पर्जन्य अपने जलसे आपकी रक्षा करता है ॥ २१ ॥

भावार्थ- जिन औषधियोंको हम पहचानते हैं और जिनको नहीं पहचानते, उन सबमें स्थित वीर्य जानना चाहिये ॥ १८ ॥ सब औषधियां मेरे अनुकूल रहकर इस मनुष्यको पापरूप रोगसे बचावें ॥ १९ ॥ पीपल, दर्भ, औषधियोंका राजा सोम, अन्न, जल, चावल और जौ ये सब दिव्य औषधियां हैं। इनसे अमरत्व अर्थात दीर्घायुष्य की प्राप्ति हो सकती है ॥ २० ॥ बडी गर्जना करके मेघ औषधियोंसे कहता है कि अब ऊपर उठो ॥ २१ ॥

तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि ।
अथो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः ॥ २२ ॥
वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् ।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥ २३ ॥
याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः ।
वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः ।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥ २४ ॥

अर्थ-(तस्य अमृतस्य इमं बलं) उस अमृतका यह बल (इमं पुरुषं पाययामसि) इस पुरुषको पिलाते हैं । (अथो कृणोमि भेषजं) और औषध बनाता हूं; (यथा शतहायनः असत्) जिससे शतायु होता है ॥ २२ ॥

(वराहः वीरुधं वेद) सूकर औषधीको जानता है, (नकुलः भेषजीं वेद) नेवला औषधीको पहचानता है, (सर्पाः गंधर्वाः याः विदुः) सर्प और गंधर्व जिनको जानते हैं, (ताः अस्मै अवसे हुवे) उनको इसकी रक्षाके लिये बुलाते हैं ॥ २३ ॥

(सुपर्णाः याः आंगिरसीः) गरुड जिन अंगरसवाली औषधियोंको (विदुः) जानते हैं, (याः दिव्याः रघटः विदुः) जिन दिव्य औषधियोंको चीडियां जानते हैं,(वयांसि हंसा याः विदुः) पक्षी और हंस जिनको पहचानते हैं, (याः च सर्वे पक्षिणः) जिनको सब पक्षी जानते हैं (याः ओषधीः मृगाः विदुः) जिन औषधियोंको हरिन जानते हैं, (ताः अस्मै अवसे हुवे) उनको इसकी रक्षाके लिये बुलाते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ—उसी का बल औषधियोंमें संग्रहित हुआ है जो मनुष्यको पिलाया जाता है और जिससे मनुष्य दीर्घायु बनता है ॥ २२ ॥

सूवर, नेवला, सांप, गन्धर्व ये औषधियां जानते हैं । इन औषधियोंसे प्राणियोंकी रक्षा हो ॥ २३ ॥

गरुड, चिडियां, पक्षी, हंस, मृग आदिक जिन औषधियोंको जानते हैं उनसे प्राणियोंकी रक्षा की जावे ॥ २४ ॥

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः ।
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥ २५ ॥
यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः ।
तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ॥ २६ ॥
पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत ।
संमातर इव दुह्रामस्मा अरिष्टतातये ॥ २७ ॥
उत् त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥२८॥ (१९)

अर्थ-(यावतीनां ओषधीनां)जिन औषधियोंको(अघ्न्याः गावः प्राश्नन्ति) अवध्य गौवें खाती हैं, (यावतीनां अजावयः) जिनको भेड, बकरियां खाती हैं, (तावतीः आभृताः ओषधीः) उतनी लाई हुई औषधियां (तुभ्यं शर्म यच्छन्तु) तुम्हारे लिये सुख देवें ॥ २५ ॥

(भिषजः मनुष्याः) वैद्य लोग (यावतीषु भेषजं विदुः) जितनी औषधियोंमें औषध प्रयोग जानते हैं; (तावतीः विश्वभेषजीः) उतनी सब औषधवाली औषधियां (त्वां अभि आभरामि) तेरे पास सब ओरसे लाता हूं ॥ २६ ॥

(पुष्पवतीः प्रसूमतीः) फूलवाली, पल्लवोंवाली, (फलवतीः उत अफलाः) फलोंवाली और फलरहित औषधियां (अस्मै अरिष्टतातये) इसकी सुख-शान्तिके विस्तारके लिये (संमातरः इव दुहृतां) उत्तम माताओंके समान रस प्रदान करें ॥ २७ ॥

(पञ्चशलात् उत दशशलात्) पांच प्रकारके और दस प्रकारके दुःखोंसे (अथो यमस्य पड्वीशात्) और यमकी बेडियोंसे और (विश्वस्मात् देवकिल्बिषात) सब देवोंके संबंधमें किये पापोंसे (त्वा उत् आहार्षं) तुझे ऊपर उठाया है ॥ २८ ॥

भावार्थ-जो औषधियां गौवें, भेड और बकरियां खाती हैं उनसे मनुष्योंका कल्याण हो ॥ २५ ॥

मनुष्य जिनसे औषध बनाना जानते हैं, उन सबको यहां लाते हैं ॥ २६ ॥

फूलों,फलों और पल्लवोंवाली औषधियां इसकी नीरोगताके लिये लायी जाती हैं वे उत्तम रस इसके लिये देवें ॥ २७ ॥

पांच और दस प्रकारके दुःख, यमके पाश, देवोंके संबंधमें होनेवाले पाप आदिसे औषधियोंद्वारा हम सब तुझे बचाते हैं ॥ २८ ॥

औषधियोंकी शक्तियां ।

इस सूक्तमें औषधियोंका वर्णन करते हुए जो विशेष महत्त्वकी बात कही है वह यह है कि रोग का मूल पापमें है । देखिये—

दुरितात् पारयामसि । (मं० ७, १९)
तीक्ष्णशृङ्ग्यः दुरितं व्यृषन्तु (मं० ९)
सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः । (मं० १३)

"ये औषधियां दुरितरूपी रोग अथवा मृत्युसे बचाती हैं ।" यहां "दुरित, अंहस्, मृत्यु" ये शब्द "पाप, रोग और मरण"के वाचक हैं । पापसे हि रोग होते हैं और रोगोंसे मनुष्य मरते हैं अर्थात् रोग, दुःख और मृत्यु ये सब पापसे हि होते हैं । यदि मनुष्य काया, वाचा, मन और बुद्धिसे पाप न करेगा, तो उसको कभी रोग न होगा, कभी दुःख न होगा और कभी उसको मृत्यु के वश होना नहीं पडेगा । मनुष्यकी पापप्रवृत्ति हि उसके नाशका कारण है । मनुष्य शारीरिक पाप करके शारीरिक कष्ट भोगता है, वाचिक पाप करके वाणीसंबंधी दुःख अनुभवता है, और मनसे जो पाप करता है उस कारण मनके दुःख भोगने पडते हैं । दुःख, कष्ट, रोग और मृत्यु न्यूनाधिक भेदसे एकहि अवस्थाके भिन्न नाम हैं । इसलिये मृत्यु तरनेका तात्पर्य दुःखसे मुक्त होना, रोगोंसे छूटना और मृत्युसे दूर होना हो सकता है। वेद और उपनिषदोंमें यह विषय अनेक वार आगया है अतः इसका विचार पाठक इस ढंगसे करें ।

पापसे रोग ।

इस सूक्तमें कहा है कि औषधियां पापसे बचाती हैं और पापसे बचनेके कारण मनुष्य रोगसे बचता है और पाप समूल दूर होनेके कारण मनुष्य अन्तमें मृत्युसे भी बचता है । पाठक यहां केवल यह न समझें कि औषधियोंसे रोगोंकी चिकित्सा हि होती है, योग्य औषधिसेवनसे शरीर, वाणी और मनकी पापप्रवृत्ति हट जाती है,

रोगोंको दूर करनेसे चिकित्साका कार्य हुआ ऐसा यदि कोई माने तो उसका वह भ्रम है। वास्तवमें रोग एक बाह्य चिन्ह है जिससे मनुष्यकी अन्तःप्रवृत्ति विदित होती है।

पाठक यहां पूछेंगे कि औषधियोंसे पापप्रवृत्ति कैसे हटजाती है ? इस विषयमें कहना इतना हि है कि सात्विक, राजसिक और तामसिक, अन्नके सेवन करनेसे मनुष्य की वैसी प्रवृत्ति बनजाती है। चावल, दूध, घृत आदि सात्विक पदार्थ खानेसे मनुष्य सात्विक बनता है, मांस और मद्य सेवन करनेसे और प्याज आदि भक्षण करनेसे राजसिक और तामसिक प्रवृत्ति बनती है। इस विषयमें भगवद्गीताके श्लोक यहां मनन करने योग्य हैं—

तीन प्रकारका भोजन।

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥८॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥
यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥

भ० गी० १७

"आयु, सत्त्व. बल, नीरोगता, सुख, और रुचीको बढानेवाले रसदार, स्निग्ध, पौष्टिक और मनको प्रसन्न करनेवाले भोजन सात्विक लोगोंको प्रिय होते हैं ॥ कडवे, खट्टे, खारे, गर्म, तीखे, रूखे, और जलन पैदा करनेवाले भोजन राजस लोगोंको प्रिय होते हैं और ये भोजन दुःख, शोक और रोग उत्पन्न करनेवाले होते हैं ॥ एक प्रहरतक पडा हुआ बासा, रसरहित, बदबूवाला झूटा अपवित्र अन्न तामस लोगोंको प्रिय होता है॥" अर्थात् एक अन्न आयु,बल, नीरोगता और सुख बढानेवाला है और दूसरा इन्हींको घटाता है। अतः जो मनुष्य दीर्घायु चाहता है उसको उचित है कि वह सात्विक भोजन करे। इतना विचार प्रदर्शित करनेके लिये ही [illegible] होते हैं और सात्विक अन्नसे पापवृत्ति हटती है. इत्यादि [illegible] है. यथा—

अमर्त्य औषध ।

व्रीहिर्यवश्च भेषजौ अमर्त्यौ ॥ (मं० २०)

" चावल और जौ अमर होनेकी औषधियां हैं । " ऐसा कहा है । यह अत्यंत सात्विक भोजन है । इसी प्रकार सोम नामक जो अमृत रस है वह भी अमरत्व देनेवाला है ऐसा—

सोमो राजा अमृतं हविः । (मं० २०)

इस मंत्रमें कहा है । तथा—

मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षः । घृतं अन्नं
गोपुरोगवं दुहताम् । (मं० १२)

"मधुरतासे संमिश्रित अमृतान्न, घीसे मिश्रित अन्न और गोरस यह श्रेष्ठ अन्न है ।"

इस प्रकार इस सूक्तमें जो अनेक वार उपदेश कहा है वह श्रीमद्भगवद्गीताके वचनके साथ देखने योग्य है । मनुष्य इस प्रकारका सात्विक अन्न भक्षण करे और दीर्घायु, नीरोगता और सुख प्राप्त करे ।

जीवला, जीवन्ती, अरुंधती, रोहिणी, कृष्णा, असिक्नी आदि नाम औषधियोंके वाचक हैं ।

१ जीवन्ती=यह औषधी दीर्घजीवन करनेवाली है,क्योंकि इसको (सर्व-दोष-घ्नी) सब दोष दूर करनेवाली वैद्यक ग्रंथोंमें कहा है । इसकी साक भी बडी हितकरी है ।

२ कृष्णा=यह नाम अनेक उत्तमोत्तम वनस्पतियोंका है, जो विविध औषधियोंमें प्रयुक्त होती हैं ।

३ जीवला=यह नाम सिंहपिप्पली का है । यह औषधि बडी आरोग्यप्रद है ।

इनमेंसे कई औषधियां दीर्घायु देनेवाले पाकादिमें पडती हैं । कई वैद्यकग्रंथोंमें इसका वर्णन है, पाठक यह वर्णन वहां देखें ।

सूक्तकी अन्यान्य बातें सुबोध हैं अतः उनका अधिक स्पष्टीकरण करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है । पाठक इस ढंगसे इस सूक्तका विचार करेंगे तो उनको इसका आशय स्पष्ट हो जायगा ।

पराक्रमसे विजय।

[८]

(ऋषिः— भृग्वङ्गिराः । देवता—इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च)

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः ।
यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥ १ ॥

पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम् ।
धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् ॥ २ ॥

अर्थ—(पुरं-दरः शूरः शक्रः मंथिता इन्द्रः) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला शूर समर्थ शत्रुसैन्यका मन्थनकर्ता इन्द्र (मन्थतु) शत्रुसेनाका मन्थन करे। (यथा) जिसकी शक्तिसे (अमित्राणां सहस्रशः सेनाः) शत्रुओंके हजारों सैनिकोंको (हनाम) हम मारें ॥ १ ॥

(उपध्मानी पूति-रज्जुः) सिलगाई हुई दुर्गंधयुक्त रस्सी (अमूं सेनां पूतिं कृणोतु) इस सेनाको दुर्गन्धयुक्त करे। (धूमं अग्निं परादृश्य) धूम और अग्निको दूर से देखकर (अमित्राः हृत्सु भयं आदधतां) शत्रु हृदयोंमें भय धारण करें ॥ २ ॥

भावार्थ—शूरवीर शत्रुओंके कीलोंको तोडे और शत्रुसैन्यको मथ डाले। हम भी सहस्रों शत्रुवीरोंको मारें ॥ १ ॥

शत्रुसेना पर हमला करनेके लिये सिलगाई हुई बारूदकी बत्ती शत्रुसैन्यमें बदबूवाला धूंवां उत्पन्न करे। जिस धूवेंको और ज्वालाको देखकर शत्रु भयभीत होवें ॥ २ ॥

बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः ।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ॥६॥
बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥ ७ ॥
अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् ।
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ॥ ८ ॥

अर्थ- (वाजिनीवतः बृहतः शक्रस्य) सेनाके साथ रहनेवाले बडे इन्द्रका (बृहत् हि जालं) बडा जाल है । (तेन सर्वान् शत्रून् अभिन्युब्ज) उससे सब शत्रुओंको सब ओरसे आधीन कर, (यथा एषां कतमःचन न मुच्यातै) जिससे इनमेंसे एक भी न छूट सके ॥ ६ ॥

हे (शूर इन्द्र) शूर इन्द्र ! (सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य बृहतः ते) सहस्रों द्वारा पूजित और सैंकडो सामर्थ्यवाले बडे तुझ इन्द्र का (बृहत् जालं) बडा जाल है । (तेन अभिधाय) उस जालसे घेरकर तथा (सेनया) अपनी सेनाके द्वारा (शक्रः) इन्द्र (दस्यूनां शतं सहस्रं अयुतं न्यर्बुदं अभिधाय जघान) शत्रुओंके सैंकडों हजारों लाखों और करोडों सैनिकोंको मारता है ॥ ७ ॥

(महतः शक्रस्य) बडे इन्द्रका (अयं महान् लोकः) यह बडा लोक (जालं आसीत्) जाल था । (तेन इन्द्रजालेन) उस इन्द्रके जालसे (सर्वान् अमून् तमसा अहं अभिदधामि) सब इन शत्रुवीरोंको अन्धेरेसे मैं घेरता हूं ॥ ८ ॥

भावार्थ-सेनाके साथ हमला करनेवाले इन्द्रके पास बडा जाल है । उससे शत्रुसैन्य बान्धा जाता है और कोई बच नहीं सकता ॥ ६ ॥

अनेक पराक्रम करनेवाले पूजनीय इन्द्रदेव का बडा जाल है उस जाल में शत्रुसैनिक बान्धे जाते हैं और उनके हजारों और लाखों मारे जाते हैं ॥ ७ ॥

बडे इन्द्रका यह विस्तृत लोकहि बडा जाल है । इस इन्द्रजालमें सब शत्रु अन्धकारसे बान्धे जाते हैं ॥ ८ ॥

सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना ।
श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान् ॥ ९ ॥
मृत्यवेमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः ।
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा ॥१०॥ (२०)
नयतामून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत ।
परःसहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ॥ ११ ॥

अर्थ-(उग्रा सेदिः) बडी थकावट, (व्यृद्धिः) निर्धनता,(अनपवाचना आर्तिः च) अकथनीय कष्ट, (श्रमः) कष्ट, परिश्रम, (तन्द्रीः मोहः च) आलस्य और मोह,(तैः अमून् सर्वान् अभिदधामि) उनसे इन सब शत्रुओंको मैं घेरता हूं ॥ ९ ॥

(अमून् मृत्यवे प्रयच्छामि) इन शत्रुओंको मैं मृत्युके लिये सौंप देता हूं (मृत्युपाशैः अमी सिताः) मृत्युके पाशोंसे ये बांधे हैं । (मृत्योः ये अघ-लाः दूताः) मृत्युके जो पापसे मारनेवाले दूत हैं (तेभ्यः एनान् बद्ध्वा प्रति नयामि) उनके पास इनको बांध कर ले जाता हूं ॥ १० ॥

हे (मृत्युदूताः) मृत्युके दूतों ! (अमून नयत) इनको ले चलो । हे (यमदूताः) यमके दूतों ! (अपोम्भत) इनको समाप्त करो । (परः सहस्राः हन्यन्तां) हजारोंसे अधिक मारे जांय । (एनान् भवस्य मत्यं तृणेढु) इनको ईश्वरके मतानुसार नाश करो ॥ ११ ॥

भावार्थ-थकावट, निर्धनता, कष्ट, परिश्रम, आलस्य, अज्ञान इत्यादिसे शत्रुओंको घेरते हैं ॥ ९ ॥

इन शत्रुओंको मृत्युके पास भेजता हूं । मृत्युपाशोंसे ये बान्धे गये हैं। मृत्युके जो मारक दूत हैं उनके पास शत्रुओंको ले जाता हूं ॥ १० ॥

मृत्युके दूत हमारे शत्रुओंको पकडें, यमदूत उनकी समाप्ति करें । इस प्रकार हजारों शत्रु मारे जांय ॥ ११ ॥

साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा ।
रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः ॥ १२ ॥

विश्वे देवा उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा ।
मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम् ॥ १३ ॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥ १४ ॥

अर्थ-(साध्याः एकं जालदण्डं उद्यत्य)साध्य देव एक जालके दण्डको उठाकर (ओजसा यन्ति) बलके साथ जाते हैं । (रुद्राः एकं) रुद्रदेव एक को, (वसवः एकं) वसुदेव एकको पकडते हैं और (आदित्यैः एकः उद्यतः) आदित्य देवोंने एक उठाया है ॥ १२ ॥

(विश्वे देवाः उपरिष्टात् उब्जन्तः) विश्वे देव ऊपर हि ऊपरसे दुष्टोंको दबाते हुए (ओजसा यन्ति) बलसे चलते हैं (अंगिरसः मध्येन महीं सेनां घ्नन्तः) अंगिरस बीचमें बडी सेनाका नाश करके (यन्तु) जावें ॥१३॥

(वनस्पतीन् वानस्पत्यान्) वनस्पति और उनसे बने पदार्थ, (ओषधीः उत वीरुधः) औषधियां और लताएं, (चतुष्पाद् द्विपात) चार पांववाले और दो पांववाले इनको (इष्णामि) मैं प्रेरित करता हूं, (यथा अमूं सेनां हनन्) जिससे इस सेनाका नाश करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ-साध्य, रुद्र, वसु और आदित्य ये इस जालके चारों खंबोंको पकडकर वेगसे दौडते हैं ॥ १२ ॥

विश्वेदेव ऊपरसे हमला चढाते हैं और आंगिरसोंने शत्रुसेनाके मध्य-भागमें हमला चढाया है ॥ १३ ॥

वनस्पति, वनस्पतिसे बने पदार्थ, औषधि, लता, द्विपाद और चतुष्पाद आदि सब मेरे सहायक हों और इनकी सहायतासे मैं शत्रुका नाश करूं ॥ १४ ॥

गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥ १५ ॥

इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे ।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥ १६ ॥

धर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः ।
भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् । ॥ १७ ॥

अर्थ-(गंधर्वाप्सरसः सर्पान्) गंधर्व, अप्सरा, सर्प (देवान् पुण्यजनान् पितॄन्) देव, पुण्यजन और पितर इन (दृष्टान् अदृष्टान् इष्णामि) देखे और न देखे हुओंको मैं प्रेरित करता हूं (यथा अमूं सेनां हनन्) जिससे इस सेनाका नाश करते हैं ॥ १५ ॥

(इमे मृत्युपाशाः उप्ताः) ये मृत्युके पाश रखे हैं (यान् आक्रम्य न मुच्यसे) जिनका आक्रमण करके तू नहीं छूटेगा। (अमुष्याः सेनायाः) इस सेनाके (इदं कूटं) इस केन्द्रको (सहस्रशः हन्तु) सहस्र प्रकारसे हनन करे ॥ १६ ॥

(अयं घर्मः होमः) यह प्रदीप्त होम (अग्निना सहस्रहः समिद्धः) अग्निद्वारा सहस्रों प्रकारोंसे प्रज्वलित हुआ है। (भवः पृश्निबाहुः शर्वः) भव और विचित्र बाहुवाला शर्व ये तुम दोनों (अमूं सेनां हतम्) इस सेनाको मारो ॥ १७ ॥

भावार्थ— गंधर्व, अप्सराएं, सर्प, देव, पुण्यजन, पितर, परिचित और अपरिचित मुझे सहायता करें, जिनकी सहायतासे मैं शत्रुका नाश करूं ॥ १५ ॥

ये मृत्युपाश लगाये हैं, इनमेंसे कोई नहीं छूटेगा, इस शत्रुसेनाका यह केन्द्र सब प्रकारसे मैं नाश करूंगा ॥ १६ ॥

यह यज्ञ अग्निसे प्रदीप्त हुआ है। इस यज्ञके द्वारा शत्रुसेना नाश होवे ॥ १७ ॥

मृत्योराषमा पंद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम्।
इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम् ॥ १८ ॥
पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा।
बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥ १९ ॥
अवं पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन् प्रतिधामिषुम्।
अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि ॥ २० ॥
सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥ २१॥

अर्थ-(मृत्योः आषं क्षुदं सेदिं वधं भयं)मृत्युसे कष्ट, भूख, बंधन, वध और भयको (आपद्यन्तां) प्राप्त होओ। हे शर्व ! (इन्द्रः च) और इन्द्र तुम दोनों (अमूं सेनां हतं) इस सेनाको मारो ॥ १८ ॥

हे (अमित्राः) शत्रुओ ! तुम (पराजिताः प्र त्रसत) पराजित होकर त्रस्त होओ। (ब्रह्मणा नुत्ताः धावत) ज्ञानसे प्रेरित होकर भाग जाओ। (बृहस्पति-प्रणुत्तानां अमीषां) ज्ञानीके द्वारा प्रेरित हुए इनमेंसे (कश्चन मा मोचि) कोई भी एक न बचे ॥ १९ ॥

(एषां आयुधानि अवपद्यन्तां) इनके शस्त्रास्त्र गिर जांय। (प्रतिधां इषुं मा शकन्) प्रतिपक्षसे आये बाणको ये न सह सकें। (अथ एषां बहु बिभ्यतां) अब इनको बहुत डर लगे। इनके (मर्मणि इषवः घ्नन्तु) मर्मोंमें बाण लगें ॥ २० ॥

(द्यावापृथिवी एनान् संक्रोशन्तां) द्युलोक और पृथिवी इनकी निंदा करें। (अन्तरिक्षं देवताभिः सह सं) अन्तरिक्ष देवोंके साथ इनकी निंदा करें। (ज्ञातारं मा) ज्ञानीको ये न प्राप्त करें (मा प्रतिष्ठां विदन्त) प्रतिष्ठाको भी ये प्राप्त न करें। (मिथः विघ्नानाः मृत्युं उपयन्तु) परस्पर विघ्न करते हुए ये सब मृत्युको प्राप्त हों ॥ २१ ॥

भावार्थ—मृत्युसे कष्ट, क्षुधा, बंधन, वध और भय शत्रुको प्राप्त होवे। और इस प्रकार भयभीत हुए शत्रुका नाश होवे ॥ १८ ॥

शत्रु पराजित हों, वे भाग जांय। हमारे ज्ञानी वीर द्वारा प्रेरित हुए शत्रु किसी प्रकारभी न बचें ॥ १९ ॥

दिशश्चतस्रोऽश्वतर्यो॑ देवर॑थस्य पु॒रोडाशाः॑ श॒फा अ॒न्तरि॑क्षमु॒द्धिः ।
द्यावा॑पृथि॒वी पक्ष॑सी ऋ॒तवो॒ऽभीश॑वोऽन्तर्दे॒शाः किं॑क॒रा वाक् परि॑रथ्यम् ॥२२॥

सं॒व॒त्स॒रो रथः॑ परिवत्स॒रो र॑थोप॒स्थो वि॒राडीषा॒ग्नी र॑थमु॒खम् ।
इन्द्रः॑ सव्य॒ष्ठाश्च॒न्द्रमाः॒ सार॑थिः ॥ २३ ॥

अर्थ- (चतस्रः दिशः) चार दिशाएं (देवरथस्य अश्वतर्यः) देवरथ की घोडियां हैं (पुरोडाशाः शफाः) पुरोडाश खुर हैं। (अन्तरिक्षं उद्धिः) अन्तरिक्ष ऊपरका भाग है। (द्यावापृथिवी पक्षसी) द्युलोक और पृथिवी ये दोनों पासे हैं। (ऋतवः अभीशवः) ऋतु रस्सियां हैं। (अन्तर्देशाः किंकराः) बीचके प्रदेश रथरक्षक हैं और (वाक् परिरथ्यं) वाणी रथका अन्य भाग है ॥ २२ ॥

(संवत्सरः रथः) वर्ष रथ है, (परिवत्सरः रथोपस्थः) परिवत्सर रथमें बैठनेका स्थान है, (विराड् ईषा) विराड जोतनेका दण्ड है, (अग्निः रथमुखं) अग्नि रथका मुख है। (इन्द्रः सव्यष्ठाः) इन्द्र बाईं ओर बैठनेवाला है और (चन्द्रमाः सारथिः) चन्द्र सारथी है ॥ २३ ॥

भावार्थ— शत्रुके शस्त्र गिर जांय, वे हमारे शस्त्रास्त्रोंको न सह सकें, वे डर जांय, और इनके मर्म वेधे जांय ॥ २० ॥

सब लोग इन शत्रुओंकी निंदा करें, हमारे शत्रुको किसी ज्ञानीकी सहायता न प्राप्त हो, वे किसी स्थानपर न ठहरसकें। वे आपसमें एक दूसरेको टकराते हुए मर जांय ॥ २१ ॥

देवरथकी घोडियां चारों दिशाएं हैं, उस रथके विविध भाग पुरोडाश, अन्तरिक्ष, द्युलोक, पृथिवी, ये हैं। छः ऋतु घोडियोंके लगाम हैं, बीचके स्थान-संरक्षक नौकर हैं और वाणी हि मध्यस्थान है ॥ २२ ॥

संवत्सर, परिवत्सर, विराट् , अग्नि ये क्रमशः रथ, बैठनेका स्थान, दण्ड और रथमुख हैं, इन्द्र इस रथमें बाईं ओर बैठता है और चन्द्रमा सारथ्य करता है ॥ २३ ॥

इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः।
नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि॥ २४॥ (२१)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

अर्थ- (इतः जय) यहांसे जय प्राप्त कर (इतः विजय) यहांसे विजय हो। (संजय जय) अच्छी प्रकार जय प्राप्त कर (स्व-आहा) आत्मसमर्पण कर (इमे जयन्तु) ये हमारे वीर जय प्राप्त करें। (अमी पराजयन्तां) ये शत्रुसैनिक पराभवको प्राप्त हों। (एभ्यः स्वाहा) इनके लिये शुभवचन (अमीभ्यः दुराहा) इन शत्रुओंके लिये बुरा वचन। (नीललोहितेन अमून् अभि अवतनोमि) नील और लोहित-रक्तसे इन शत्रुओंको सब प्रकार गिराता हूं॥ २४॥

भावार्थ- इस प्रकार जय प्राप्त कर, विजय संपादन कर। आत्मसमर्पणसे हि जय मिलता है। ये हमारे वीर जय प्राप्त करें। शत्रुका पराजय हो। अपने लोगोंको शुभ आशीवार्द। शत्रुको शाप। सब शत्रुओंकी गिरावट हो॥ २४॥

युद्धकी नीति।

युद्धनीतिका वर्णन करनेवाले सूक्त वेदमें अनेक हैं, परंतु इस सूक्तमें 'जाल-युद्ध' का वर्णन है, यह इस सूक्तकी विशेषता है। जालमें शत्रुसैन्यको पकडकर सब सैनिक जालमें बंधे जानेके पश्चात् उनका उचित शस्त्रास्त्रों से वध करनेका नाम जालयुद्ध है। पाठकोंने जाल देखेहि होंगे। प्रायः मछलियां पकडनेवाले धीवरलोग सूत्रके जाल बनाते हैं और उसमें मछलियां पकडते हैं। ये सूत्रके जाल युद्धमें उपयोगी नहीं होते, क्योंकि शत्रुके सैनिक यदि इस सूत्रके जालमें पकडे गये, तो वे अपने तीक्ष्ण शस्त्रोंसे जाल काटकर बाहर आसकते हैं। अतः यहांका युद्धका जाल ऐसा होना चाहिये कि, जो सहजाहिमें काटा न जासके।

आजकलके युद्धोंमें तारोंके जाल, अथवा कंटकित तारोंके जाल वर्तते हैं। बहुत संभव है कि जिस इन्द्रजाल का वर्णन इस सूक्तमें किया है, वह इसी प्रकारके लोहेके

कंटकित अथवा अन्य तारोंका हि जाल होगा। इन्द्रके शत्रु राक्षस हैं, वे बलाढ्य और शस्त्रास्त्रसंपन्न होते हैं, वे कदापि सूत्रके जाल से बांधे जांयगे और सहजहिमें मारे जांयगे यह संभव नहीं है। इस सूक्तमें इन्द्रने इस जालके द्वारा हजारों और लाखों शत्रुओंको बांधा और मारा ऐसा वर्णन है, अतः यह जाल निःसन्देह लोहेका होना योग्य है। इसका वर्णन इस प्रकार है—

> बृहज्जालेन संदिताः क्षिप्रं भज्यन्ताम्। (मं० ४)
> शक्रस्य अन्तरिक्षं जालं आसीत। महीदिशः जालदण्डाः।
> तेन अभिधाय दस्यूनां सेनां अपावपत्। (मं० ५)
> वाजिनीवतः शक्रस्य बृहत् जालम्। तेन सर्वान् शत्रून्
> न्युब्ज, यथा एषां कतमश्चन न मुच्यातै॥ (मं०६)
> हे शूर इन्द्र! शतवीर्यस्य ते बृहत् जालम्। तेन दस्यूनां
> सहस्रं अयुतं जघान॥ (मं० ७)

" इन्द्र स्वयं बडा शूर है, उसके पास सैन्यभी बहुत है। वह स्वयं सैंकडों प्रकारके पराक्रम करता है। उसका बडाभारी जाल है। मानो उसका जाल इस अन्तरिक्ष जैसा विस्तृत है। चारों दिशाओंमें उसके जालके स्तंभ खडे किये होते हैं। इस विस्तृत जालमें शत्रुकी सेना पकडी जाती है, और एकवार सेना इस जालमें पकडी गयी, तो उनमेंसे एकभी नहीं बच सकता। इस रीतिसे इस ढंगके जालयुद्ध द्वारा इन्द्र हजारों और लाखों शत्रुओंका संहार करता है।" इन मंत्रभागोंमें यह वर्णन बडा मनोरम है और जालयुद्ध का महत्त्व भी इससे प्रकट होता है, एकवार शत्रु जालमें बान्धे गये, तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी हलचल भी बन्द हो जाती है। इस प्रकार जालसे बान्धे गये शत्रुओंका वध करना बडा सहज कार्य होता है क्योंकि इन्द्र एक वार शत्रुको जालमें पकडकर पश्चात् अपने सैनिकोंसेहि उनका वध कराता है, ऐसा इसी सूक्तमें कहा है—

> शक्रः सेनया तेन (जालेन बद्धं) दस्यूनां सहस्रं जघान। (मं०७)

" इन्द्र अपनी सेनाद्वारा उस जालसे बान्धे गये शत्रुके हजारों सैनिकोंको मारता है।" इस वर्णनसे स्पष्ट होजाता है कि जालमें बन्धे शत्रुसैन्यका वध करना सहज बात है। यह जाल पृथ्वीपर बहुत बडा फैलाया जाता है इसविषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

अयं महान् लोकः शक्रस्य जालं आसीत् ।
तेन इन्द्रजालेन सर्वान् तमसा अभिदधामि ॥ (मं० ८)

साध्याः रुद्राः वसवः जालदण्डं उद्यम्य ओजसा यन्ति ।
आदित्यैः एकः (दण्डः) उद्यतः ॥ (मं० १२)

विश्वेदेवाः ओजसा उपरिष्टात् यन्तु ।
अंगिरसः मध्येन सेनां घ्नन्तः यन्तु ॥ (मं १३)

" इस पृथ्वीभर इन्द्रका जाल फैला है । इस इन्द्रके जालसे सब शत्रुओंको अन्धेरेसे घेरते हैं । साध्य, रुद्र, वसु और आदित्य ये सब देव जालका एक एक स्तंभ पकडकर वेगसे दौडते हैं । विश्वेदेव और आंगिरसभी शत्रुसेनाके बीचमें और ऊपरसे हमला करते हैं । " इतना विस्तार इस जालका होता है । इस जालसे सब पृथ्वी और अन्तरिक्ष भरजाता है, अर्थात् शत्रुका सब सैन्य चारों ओर से इस जालके द्वारा घेराजाता है । इन मंत्रोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार शत्रुका सैन्य घूमता है, उसी रीतिसे यह जालभी घुमाया जाता है। इसीलिये जालके दण्ड पकडकर वसु, रुद्र, आदित्य और साध्य वेगसे भ्रमण करते हैं । विश्वेदेव अपने सैन्यसे ऊपरके भागसे हमला करते हैं और आंगिरसोंकी सेना बीचमें हमला चढाती है । इस प्रकार शत्रुसैन्यको युद्धमें रखकर वसु रुद्र और आदित्य जालदण्डोंको पकडकर दौड दौड कर शत्रुके इर्द गिर्द जालको दण्डोंके आधारपर ऐसे ढंगसे जाल रचते हैं, कि शत्रु न जानते हुए स्वयंहि जालमें आकर फंसजांय। यह युद्धकौशल की बात है और जो युद्धविद्या जानते हैं उनके हि समझमें यह बात आसकती है। यहां मन्त्रोंद्वारा उक्तविषय प्रकट हुआ है। इन मंत्रभागोंका विचार करके पाठक भी इस विषयका थोडासा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । यहां साध्य, वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव और आंगिरस ये सेनाविभागों और सेनाध्यक्षोंके नाम हैं । इनके विशेष कार्य युद्धभूमिमें होते है, अतः ये अलग अलग नाम इनके होते हैं। इन सबका मुख्य इन्द्र है, इसका कार्य (इन्+द्र) शत्रुका विदारण करना है । इसका कार्य प्रथम मन्त्रने इस प्रकार कहा है-

मन्थिता शूरः शक्रः पुरंदरः इन्द्रः मन्थतु । (मं० १)

" शत्रुसैन्यका मन्थन करनेवाला इन्द्र शूर और समर्थ होकर (पुरं-दरः) शत्रुके किलोंका भेदन करे ।" इसमें प्रत्येक शब्द इन्द्रका कार्य बता रहा है। शत्रुके किलोंको तोडनेका कार्य इन्द्र करता है, किलोंसे शत्रुसैन्यको बाहर निकालकर, उनको अपने

जालोंसे बान्धकर मारता है। इस प्रकार यह जालयुद्ध की नीति है।

इस रीतिके जालयुद्धके सामान अपने पास रहे तो शत्रुपर विजय प्राप्त करनेका विश्वास अपने सैनिकोंमें आता है और वे कह सकते हैं—

> अमित्राणां सहस्रशः सेनाः हनाम। (मं० १)
>
> यमकः वधैः एनान् हन्तु। (मं० ३; ४)
>
> अमून् निः शृणीहि। अमून् अजिरं खाद। (मं० ३)
>
> मृत्यवे अमून् प्रयच्छामि। अमी मृत्युपाशैः सिताः।
> मृत्योः ये अघला दूताः तेभ्यः एनान् बद्ध्वा प्रतिनयामि॥ (मं०१०)
>
> मृत्युदूता अमून् नयत। यमदूता अपोम्भत।
> परःसहस्रा हन्यन्ताम्॥ (मं० ११)
>
> सर्वां अमूं सेनां हनन्। (मं० १४, १५)
>
> इमाः मृत्युपाशाः यान् आक्रम्य न मुच्यसे।
> अमुष्याः सेनायाः इदं कूटं सहस्रशः हन्तु। (मं० १६)

“शत्रुके हजारों सैनिकोंको हम मारेंगे। वधके साधनोंसे इनको मारें। इन शत्रुसैनि[illegible] करो। इनको मृत्युको सौंप देता हूं। ये मृत्युके पाशसे बांधे हैं। इन शत्रुओंको [illegible] मैं मृत्युके दूतोंके हवाले करता हूं। यमदूत इनको ले चलें, यमदूत [illegible] और हजारोंका वध किया जावे। इस संपूर्ण सेनाका नाश किया जावे। [illegible] हैं, इनसे नहीं छूटोगे, इस शत्रुसेनाके इस केन्द्रको प्राप्त करके [illegible] ॥”

इस प्रकार[illegible] बात [illegible] आ सकती है कि जब शत्रुको पकडकर उसका वध [illegible] है। [illegible] शत्रुका वध करना निश्चित और सहज होता है [illegible] इस प्रकारके निश्चयात्मक वाक्य बोले जाते हैं। [illegible]—

> [illegible] ॥ (मं० १९)

[illegible]

युद्धका यह महत्त्व है कि एक वार उसमें फंसा शत्रु बचना असंभव है। जालमें फंसे शत्रुकी अवस्था कैसी बनती है देखिये—

एषां आयुधानि अवपद्यन्ताम्। इषुं प्रतिधां मा शकन्।
एषां बहु बिभ्यतां इषवः मर्माणि घ्नन्तु। (मं० २०)

"इन शत्रुओंके आयुध गिरजांय। हमारे शस्त्रोंको ये सह न सकें। इन बहुत घबराये शत्रुओंके मर्मोंमें हमारे शस्त्र आघात करें।" तथा और देखिये—

ज्ञातारं प्रतिष्ठां मा विदन्त। मिथो विघ्नानाः मृत्युं उपयन्तु। (मं० २१)

" शत्रु भयभीत होकर किधर भी आश्रयको न प्राप्त हों, उनको कोई उत्तम सलाह देनेवाला न मिले। वे आपसमें एक दूसरेको विघ्न करते हुए मृत्युको प्राप्त हों।" यह अवस्था शत्रुकी तब होगी जब की अपने निश्चित विजयकी संभावना हो।

इन्द्रः शर्वः च अक्षुजालाभ्यां अमूं सेनां हतम्। (मं० १८)

"इन्द्र और शर्व अक्षु और जालोंके द्वारा इस सेनाको मारे।" इस मंत्रमें जाल-युद्धकी शक्ति बताई है। संपूर्ण शत्रुसेनाको मारना केवल जालयुद्धसे हि संभवनीय है। जालमें पकडे गये शत्रुसेनापर कितनी भयानक आपत्ति आती है इसकी कल्पना अगले मंत्रभागसे हो सकती है—

मृत्योः आषं क्षुधं सेदिं वधं भयं आपद्यन्ताम्। (मं० १८)

जालमें पकडे गये शत्रुओंपर 'मृत्युके समान कष्ट, भूख, बंधन, वध और भय' आपडते हैं। शत्रुका कोई मनुष्य इनसे बच नहीं सकता। शत्रुसेनापर ऐसी भयानक आपत्ति आती है इसलिये यह जालयुद्ध शत्रुको बहुत डर उत्पन्न करनेवाला होता है। इसी मंत्रके साथ निम्नलिखित मंत्र देखिये-

सेदिः उग्रा व्यृद्धिः आर्तिः अनपवाचना श्रमः तन्द्री मोहः
च तैः अमून् सर्वान् अभिदधामि। (मं० ९)

"बंधन, उग्र विपत्ति, न कहने योग्य कष्ट, श्रम, आलस्य, मोह इनसे ये सब हमारे शत्रु जर्जर हो जांय।" इसकी सिद्धि होनेके लिये युद्धमें जालप्रयोग निःसन्देह उपकारक है। जालमें बंधा वीर कितना भी बलवान हुआ तो भी वह कुछ प्रतिकार करनेमें असमर्थ होजाता है। इसलिये युक्तिसे शत्रुको जालमें बांध देनेसे उनका पूर्ण-तया नाश हो जाता है। इस युद्धमें और एक दुर्गन्धास्त्र का प्रयोग वर्णन किया है वह भी बडा घोर प्रयोग है देखिये-

दुर्गंधयुक्त धूँवां।

पूतिरज्जु उपध्मानी अमूं सेनां पूतिं कृणोतु। (मं० २)

" दुर्गंधयुक्त रस्सी जलाकर इस सेनामें सर्वत्र दुर्गंधीको फैला देवे।" कुछ विशेष रासायनिक पदार्थोंसे यह रस्सी भिगोयी रहती है। इस रस्सीको जलाकर-सिलगाकर उसको शत्रुसेनामें फेंकनेसे शत्रुसेनामें ऐसी दुर्गंधी फैलती है कि उससे त्रस्त हुए शत्रुके सैनिक युद्ध करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। इससे कितना भय प्राप्त होता है देखिये-

धूममग्निं परादृश्य अमित्रा हृत्स्वादधतां भयं। (मं० २)

" पूर्वोक्त धूममय अग्नि दूरसे देखकर शत्रुके सब लोग हृदयोंमें भय धारण करते हैं।" इतना यह दुर्गन्धास्त्र महाभयंकर है। एकवार यह (पूतिरज्जु) दुर्गन्धकी रस्सीका जलना प्रारंभ होकर दुर्गन्ध फैलने लगा तो सब सैनिक किसी भी कार्यके लिये बडे निकम्मे हो जाते हैं और मानने लगते हैं कि अब अपने नाश का समय आपडा है। यदि जाल प्रयोग और यह दुर्गन्ध प्रयोग ये दोनों प्रयोग किये जांय, तो शत्रुका शीघ्र नाश करना बिलकुल आसानीसे होसकता है। इस प्रकार ये दोनों प्रयोग करनेसे अपना विजय होता है अतः कहा है-

विजय।

इतो जय विजय संजय जय स्वाहा।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः॥ (मं० २४)

" इस पूर्वोक्त युक्तिसे जय और विजय प्राप्त करो, वह तुम्हारा उत्तम जय हो। ये तुम्हारे सैनिक विजयी हों, तुम्हारे शत्रु पराजित हों। तुम्हारा उत्तम कल्याण हो, तुम्हारे शत्रुओंका अकल्याण हो।" इस प्रकार अन्तमें इस जालयुद्ध करनेवालोंको शुभ आशीर्वाद दिया है।

इस प्रकार वेदमें उपदेश किये जालयुद्धका वर्णन है। पाठक इसका विचार करके वेदकी युद्धनीति जानें।

" इन्द्र जाल " शब्द आध्यात्मिक बन्धन का भी भाव बताता है। इस दृष्टीसे इस सूक्त का विचार कोई करे। यह विषय अन्वेषणीय है।

एकही उपास्य देव !

[९]

(ऋषिः— अथर्वा, कश्यपः, सर्वे वा ऋषयः । देवता–विराट्)

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥ १ ॥

यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥ २ ॥

अर्थ-(तौ कुतः जातौ) वे दोनों कहांसे प्रकट हुए ? (सः अर्धः कतमः) वह कौनसा अर्धभाग है ? और वह (कस्मात् लोकात्) कौनसे लोकसे और (कतमस्याः पृथिव्याः) कौनसे भूविभागके उपर (सलिलात् विराजः) आप तत्त्वसे विराजके (वत्सौ उत् ऐतां) दोनों बच्चे प्रकट होते हैं ? (तौ त्वा पृच्छामि) उन दोनों के विषयमें तुझे मैं पूछता हूं । उनमेंसे वह गौ (कतरेण दुग्धा) किससे दोही जाती है ? ॥ १ ॥

(त्रिभुजं योनिं कृत्वा) तीन भुजावाला आश्रयस्थान बनाकर (शयानः यः) विश्राम करनेवाला जो अपने (महित्वा सलिलं अक्रन्दयत्) महत्त्वसे जलको प्रक्षुब्ध बनाता है । (विराजः कामदुघः स वत्सः) विराज रूपी कामधेनुका वह बच्चा (पराचैः गुहा) दूर और गुप्त (तन्वः चक्रे) शरीरोंको बनाता है ॥ २ ॥

भावार्थ — (स्त्रीत्व और पुरुषत्व) ये दोनों कहांसे प्रकट होगये हैं ? इसमें वह आधा भाग कहांसे माना जाता है ? कौनसी पृथ्वीके ऊपर कौनसे स्थानसे किस जलतत्त्वसे विराट् उत्पन्न होकर उसके (रयि और प्राण ये) दोनों बच्चे किस प्रकार उत्पन्न हुए ? उस विराट् रूपी गौका दोहन किस बच्चेके साथ हुआ ? ये प्रश्न मैं तुझसे पूछता हूं ॥ १ ॥

त्रिगुणमयी प्रकृतिमें व्यापनेवाला अपनी शक्तिसे हि उसमें गति उत्पन्न करता है । उससे विराट् नामक कामधेनु होती है, उसीका वह बच्चा है, जो दूरकी गुहामें अपने शरीरोंको बनाता है ॥ २ ॥

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ॥ ६ ॥
षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ॥ ७ ॥
यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम्।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराडृषयः परमे व्योमन् ॥ ८ ॥

अर्थ-(उपरि द्यौः वैश्वानरस्य प्रतिमा) ऊपर जो द्युलोक है वह वैश्वानरकी प्रतिमा है। (यावत् अग्निः रोदसी विबबाधे) जहांतक अग्नि द्युलोक और पृथिवीको बाधित करता है। (ततः अमुतः षष्ठात् स्तोमाः आयन्ति) वहांसे दूरके छठे स्थानसे स्तोम आते हैं। और वे (इतः अह्नः षष्ठं अभि उत् यन्ति) यहांसे छठे दिन ऊपर उठते हैं ॥ ६ ॥

हे कश्यप! (इमे षट् ऋषयः त्वा पृच्छामः) ये हम छः ऋषि तुझसे प्रश्न पूछते हैं क्यों कि (त्वं हि युक्तं योग्यं च युयुक्षे) तू हि युक्त और योग्यको संयुक्त करता है। (विराजं ब्रह्मणः पितरं आहुः) विराज को ब्रह्माका पिता कहते हैं। (तां नः सखिभ्यः) उसको हम मित्रों को (यतिधा विधेहि) जितने प्रकारों से हो उतने प्रकारोंसे वर्णन करो ॥ ७ ॥

हे (ऋषयः) ऋषिगण! (यां प्रच्युतां) जिसके स्थानसे चलनेपर (यज्ञाः अनु प्रच्यवन्ते) यज्ञ चलते हैं। और जिसके (उपतिष्ठमानां उपतिष्ठन्ते) उपस्थित होनेसे उपस्थित होते हैं। (यस्याः प्रसवे व्रते) जिसके प्रकट होनेके नियममें (यक्षं एजति) यजनीय देव हलचल करता है। (सा विराट्) वह विराट् (परमे व्योमन्) परम आकाशमें है ॥ ८ ॥

भावार्थ-वैश्वानर उतना है कि जितनी द्यौ है। जहांतक द्युलोकसे पृथ्वी-तक अन्तर है उसमें वैश्वानरकी व्याप्ति है। वैश्वानर वहां है, जिससे स्तोम और यज्ञ प्रचलित होते हैं, और ये सब फिर उसीमें जा मिलते हैं ॥ ६ ॥

हे कश्यप! ये हम छः ऋषि तुमसे पूछते हैं। तू सबको योग्य स्थानमें नियुक्त करता है। अतः इसका उत्तर दो। विराट् ब्रह्माका पिता कहते हैं उस विराट्‌का हम सबको सब प्रकारसे कहो ॥ ७ ॥

हे ऋषिगण! जिसके चलनेसे यज्ञ चलते और जिसके स्थिर होनेसे

अ॒प्रा॒णैति॑ प्रा॒णेन॑ प्राण॒तीनां॑ वि॒राट् स्व॒राज॑म॒भ्ये॑ति प॒श्चात् ।
विश्वं॑ मृ॒शन्ती॑म॒भिरू॑पां वि॒राजं॒ पश्य॑न्ति॒ त्वे न त्वे॑ पश्यन्त्येनाम् ॥९॥

को वि॒राजो॑ मिथुन॒त्वं प्र वे॑द॒ क ऋ॒तून् क उ॒ कल्प॑मस्याः ।
क्रमा॒न् को अ॑स्याः कति॒धा विदु॑ग्धा॒न् को अ॑स्या॒ धाम॑ कति॒धा व्यु॑ष्टीः ॥१०

अर्थ- (अ-प्राणा प्राणतीनां प्राणेन एति) स्वयं विना प्राण होकर भी प्राणवालोंके प्राणके साथ चलती है। पश्चात् (विराट् स्वराजं अभ्येति) विराट् स्वयं प्रकाशके पास पहुंचती है। (विश्वं मृशन्तीं अभिरूपां विराजं) सबको स्पर्श करनेवाली अनुरूप विराट्को (त्वे पश्यन्ति) वे कई देखते हैं, परंतु (त्वे एनां न पश्यन्ति) वे इसको नहीं देखते ॥ ९ ॥

(विराजः मिथुनत्वं कः प्रवेद) विराट् के स्त्रीत्व और पुरुषत्वको कौन जानता है ? (कः ऋतून्) कौन ऋतुओंको और (कः अस्याः कल्पं उ) कौन इसके कल्पको जानता है ? (अस्याः क्रमान् कः) इसके क्रमोंको कौन जानता है ? (कतिधा विदुग्धान्) कितनी वार दोही गयी यह कौन जानता है ? (कः अस्याः धाम) कौन इसका स्थान जानता है और (कतिधा व्युष्टीः) कितनी प्रकारसे इसके प्रभात समय होते हैं ? ॥ १० ॥

यज्ञ स्थिर होते हैं, जिसकी प्रेरणासे आत्मा प्रेरणा करता है वही विराट् देवता है ॥ ८ ॥

यह विराट् स्वयं प्राणवाली न होती हुई प्राणियोंके प्राणके साथ चलती है। तथा यह विराट् स्वयंप्रकाश आत्माके पास भी पहुंचती है। सबको स्पर्श करनेवाले इस विराट्को कई देखते हैं और कई इसको देख नहीं सकते ॥ ९ ॥

इस विराट्के अन्दर स्त्रीत्व और पुरुषत्व किस प्रकार रहता है। इसके ऋतु और कल्प किस क्रमसे होते हैं ? और कौन इसको यथावत् जानता है ? इस विराट्का धाम किसने देखा है, और इसके प्रभातसमयका किसको पता है ? इस विराट्का कितने प्रकारोंसे दोहन किया है अर्थात् कितने रस इससे निकाले जाते हैं ॥ १० ॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥ ११ ॥

छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥ १२ ॥

ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥ १३ ॥

अर्थ- (इयं एव सा या प्रथमा व्यौच्छत्) यही वह है कि जो पहिली होकर प्रकाशित होती है, जो (आसु इतरासु प्रविष्टा चरति) इनमें और अन्योंमें प्रविष्ट होकर चलती है। (अस्यां अन्तः महान्तः महिमानः) इस में बडी शक्तियां हैं। (नवगत् जनित्री वधूः जिगाय) नूतन जननी वधूके समान सबको जीतती है ॥ ११ ॥

(छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने) छन्दके दो पक्ष उषासे सुन्दर बनते हुए (समानं योनिं अनु संचरेते) एक स्थान को लक्ष्य करके चलते है। (प्रजानती केतुमती सूर्यपत्नी) जानती हुई केतुवाली सूर्यपत्नी प्रभा (अजरे भूरिरेतसा संचरतः) अजर बहुत वीर्यवाली संचार करती हैं ॥ १२ ॥

(तिस्रः ऋतस्य पन्थां अनु आगुः) तीनों सत्यके मार्गको अनुकूल होती हैं। (त्रयः घर्माः रेतः अनु आगुः) तीनों यज्ञ वीर्यको अनुकूल होते है। (एका प्रजां जिन्वति) एक प्रजा-संतति-को तृप्त करती है। (एका ऊर्जं) दूसरी बलकी रक्षा करती है और (एका देव-यू-नां राष्ट्रं रक्षति) तीसरी देवके साथ योग करनेवालोंके राष्ट्रकी रक्षा करती है ॥ १३ ॥

भावार्थ— यही विराट् पहिली प्रकाशित हुई है, जो अन्योंमें प्रविष्ट होकर विचरती है। इसके अन्दर बडी बडी शक्तियां हैं। यह नववधूके समान सब पर प्रभाव डालती है ॥ ११ ॥

छन्दके दो पक्ष हैं, जो एकहि छन्दमें अनुकूलतासे कार्य करते हैं। जैसी सूर्यपत्नी प्रभा उषःकालसे प्रकाशित होनेका प्रारंभ होता है, उसी प्रकार ये दोनों छन्दके पक्ष अक्षीण होकर विशेष बलके साथ सर्वत्र संचार करते हैं ॥ १२ ॥

तीनों शक्तियां सत्यके अनुकूलताके साथ होती हैं तथा तीनों यज्ञ

अ॒ग्नी॒षोमा॑वदधु॒र्या तु॒रीयासी॑द् य॒ज्ञस्य॑ प॒क्षावृष॑यः क॒ल्पय॑न्तः ।
गा॒य॒त्रीं त्रि॒ष्टुभं॒ जग॑तीमनु॒ष्टुभं॑ बृहद॒र्कीं यज॑मानाय॒ स्व॒रा॒भर॑न्तीम् ॥१४॥
पञ्च॒ व्यु॒ष्टीरनु॒ पञ्च॒ दोहा॒ गां पञ्च॑नाम्नीमृ॒तवोऽनु॒ पञ्च॑ ।
पञ्च॒ दिशः॑ पञ्चद॒शेन॑ क्ल॒प्तास्ता एक॑मूर्ध्नीर॒भि लो॒कमेक॑म् ॥१५॥
षड् जा॒ता भू॒ता प्र॑थम॒जर्तस्य॑ षडु॒ सामा॑नि षड॒हं व॑हन्ति ।
ष॒ड्यो॒गं सीर॒मनु॒ साम॑साम॒ षडा॑हु॒र्द्यावा॑पृथि॒वीः षडु॒र्वीः ॥ १६ ॥

अर्थ—(अग्नीषोमौ यज्ञस्य पक्षौ) अग्नि और सोम ये दो यज्ञके दो पंख हैं ऐसा (ऋषयः कल्पयन्तः) ऋषियोंने माना है। (या तुरीया आसीत) जो चतुर्थ अवस्था है, उसको और (गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीं अनुष्टुभं) गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती और अनुष्टुप् रूपसे (यजमानाय स्वः आभरन्तीं बृहदर्कीं) यजमानको प्रकाश देनेवाली बडी उपासनाको वे (अदधुः) धारण करते हैं ॥ १४ ॥

(पञ्च व्युष्टीः) पांच उषाएं, (पञ्च दोहाः अनु) पांच अनुकूल दोहन समय (पञ्चनाम्नीं गां अनु) नामवाली पांच अनुरूप गौ, (पञ्च ऋतवः) पांच ऋतु, (पञ्चदशेन पञ्च दिशः क्लृप्ताः) पंद्रहवेंने पांच दिशाओंको अनुकूल किया है, (ताः एकमूर्ध्नीः) वे सब एक सिरवाले होकर (एकं लोकं अभि) एक लोकके चारों ओर हैं ॥ १५ ॥

(ऋतस्य प्रथमजाः) सत्यका पहिला प्रवर्तक (षट् भूताः जाताः) छः भूत बने हैं। (षट् उ सामानि) छः साम (षट्—अहं वहन्ति) छः दिनोंको ले जाते हैं। (षड्-योगं सीरं अनु साम-साम) छः बैल जोते हुए हलको साम साम कहते हैं, (द्यावापृथिवीः षट् आहुः) द्युलोकसे पृथ्वी-पर्यंत छः केन्द्र हैं, जिनको (षट् उर्वीः) छः भूमि कहते हैं ॥ १६ ॥

वीर्यके साथ चलते हैं। एक संतानकी रक्षा, दूसरी बलकी रक्षा और तीसरी देवके उपासकोंके राष्ट्रकी रक्षा करनी है ॥ १३ ॥

अग्नि और सोम ये यज्ञके दो पक्ष हैं यह बात ऋषियोंने मानी है। और वे ऐसा भी मानते हैं कि जो चतुर्थ अवस्था है वह त्रिष्टुप् जगती अनुष्टुभ् रूपसे यजमानके लिये स्वर्गका सुख भर देती है ॥ १४ ॥

एक गौके अनुकूल पांच उषाएं, पांच दोहन समय हैं, पांच ऋतु,

पळाहुः शीतान् षळु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।
सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः ॥ १७ ॥
सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त ।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम् ॥ १८ ॥

अर्थ— (षट् शीतान् आहुः) छः शीतकालके महिने हैं, (षट् उष्णान् मासः) छः उष्णताके महिने हैं । (नः ऋतुं ब्रूहि) इनके ऋतु हमें बतलाओ, (यतमः अतिरिक्तः) इनमें कौनसा विशेष रिक्त है ? । (सप्त सुपर्णाः कवयः) सात उत्तमपर्णवाले कवि (निषेदुः) निवास करते हैं । (सप्त छन्दांसि) सात छन्द हैं (अनु सप्त दीक्षाः) उनके अनुकूल सात दीक्षा भी हैं ॥ १७ ॥

(सप्त होमाः) सात यज्ञ हैं, (समिधः ह सप्त) समिधाएं सात हैं, (मधूनि सप्त) सात मधु और (सप्त ऋतवः ह) सात ऋतु हैं । (सप्त आज्यानि भूतं परि आयन्) सात प्रकारके घृत सब जगत्में प्राप्त हैं, (ताः सप्तगृध्राः) वे सात गीध हैं (इति वयं शुश्रुम) ऐसा हम सुनते हैं ॥१८॥

पांच दिशाएं, इनके ऊपर एकका अधिकार है। इस एकके पास सबको पंहुचना है ॥ १५ ॥

सत्यमार्गका प्रथम प्रवर्तक आत्मा है, उससे छः तत्त्व उत्पन्न हुए हैं। छः साम छः दिनोंका यज्ञ समाप्त करते हैं। जिस प्रकार छः बैल जोते हुए हलको किसान चलाते हैं, वैसा ही यह साम छः दिनोंवाले यज्ञको चलाता है। जगत्में द्युलोक और पृथिवी के अंदर भी छः पृथ्वी सरीखे गोल हैं ॥ १६ ॥

शीतकालके छः मास हैं, उष्ण कालके भी छः मास हैं। इनके ऋतु हमें बताओ और यह भी बताओ कि इनमें रिक्त कौन है ? सात कवि उत्तम पत्र लेकर यहां बैठे हैं, उनके साथ सात छन्द हैं, और सात दीक्षाएं भी हैं ॥ १७ ॥

सात होम, सात समिधाएं, सात शब्द, सात ऋतु, और सात घृत भूतमात्रके चारों ओर हैं। उनके साथ सात गीध भी हैं ऐसा हम सुनते हैं ॥ १८ ॥

स॒प्त च्छन्दां॑सि चतुरुत्त॒राण्य॒न्यो अ॒न्यस्मि॒न्नध्यार्पि॑तानि ।
क॒थं स्तोमाः॒ प्रति॑ तिष्ठन्ति॒ तेषु॒ तानि॒ स्तोमे॑षु क॒थमार्पि॑तानि ॥ १९ ॥
क॒थं गा॑य॒त्री त्रि॒वृतं॒ व्या॑प क॒थं त्रि॒ष्टुप् प॑ञ्चद॒शेन॑ कल्पते ।
त्र॒य॒स्त्रि॒शेन॒ जग॑ती क॒थम॑नु॒ष्टुप् क॒थमे॑कवि॒ंशः ॥ २० ॥
अ॒ष्ट जा॒ता भू॒ता प्र॑थम॒जर्तस्या॒ष्टेन्द्र॒र्त्विजो॒ दैव्या॒ ये ।
अ॒ष्टयो॑नि॒रदि॑तिर॒ष्टपु॑त्राष्ट॒मीं रात्रि॑म॒भि ह॒व्यमे॑ति ॥ २१ ॥

अर्थ- (सप्त छन्दांसि) सात छन्द हैं, (उत्तराणि चतुः) उनसे श्रेष्ठ चार हैं। ये (अन्यः अन्यस्मिन्) एक दूसरेमें (अधि आ अर्पितानि) समर्पित हैं। (स्तोमाः तेषु कथं प्रति तिष्ठन्ति) स्तोम उनमें कैसे रहते हैं? (तानि स्तोमेषु कथं अर्पितानि) वे स्तोमोंमें कैसे समर्पित हुए हैं ॥ १९ ॥

(गायत्री त्रिवृत कथं व्याप) गायत्री त्रिवृत् को कैसे व्यापती है? (कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते) कैसे त्रिष्टुप् पंद्रह से होता है ? (त्रयस्त्रिंशेन जगती कथं) तैतीससे जगती कैसी होती है और (अनुष्टुप् एकविंशः कथं) अनुष्टुप् इक्कीस का कैसे होता है ? ॥ २० ॥

(ऋतस्य प्रथमजाः अष्ट भूताः जाताः (सत्यके पहिले प्रवर्तकसे आठ भूत उत्पन्न होगये हैं। हे इन्द्र ! (ये दैव्याः ऋत्विजः अष्ट) जो दिव्य ऋत्विज हैं वे भी आठ हैं। (अदितिः अष्टयोनिः अष्टपुत्रा) अदिति आठ उत्पत्तिस्थानवाली है और उसको आठ पुत्र भी हैं। (अष्टमीं रात्रिं) अष्टमी रात्रिको (हव्यं अभि एति) हव्य प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

भावार्थ-सात छन्द, उनके चार उत्तर पक्ष, एक दूसरेके साथ मिले हुए होते हैं। ये स्तोमोंमें कैसे रहते है और ये स्तोम उनमें कैसे रहते हैं? ॥१९॥

गायत्रीनें त्रिवृत्को कैसे व्यापा है ? त्रिष्टुप् पञ्चदशके साथ कैसा युक्त हुआ है। तैतीसके साथ जगती कैसी व्यापती है और अनुष्टुप् इक्कीससे कैसे संबंध रखता है ॥ २० ॥

सत्यके पहिले प्रवर्तकसे आठ तत्त्व उत्पन्न हुए हैं। ये आठ दिव्य ऋत्विज हैं। अदितिके भी ये आठ पुत्र हैं। आठवीं रात्री से यही अदिति हवनीय पदार्थोंको प्राप्त होती है ॥ २१ ॥

इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा ।
समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥२२॥
अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।
अपो मनुष्या३नोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे ॥ २३ ॥
केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान् मनुष्याँ३ असुरानुत ऋषीन् ॥ २४ ॥

अर्थ- (इत्थं श्रेयः मन्यमाना) इस प्रकार कल्याणको माननेवाली (इदं युष्माकं सख्ये) इस प्रकार तुम्हारी मित्रतामें (आगमं) आगयी हूं (अहं शेवा अस्मि) मैं सेवनीय हूं । (समान-जन्मा वः क्रतुः) तुम्हारे साथ उत्पन्न हुआ तुम्हारा यज्ञ (शिवः अस्तु) कल्याणकारी होवे । (सः प्रजानन्) वह जानता हुआ (वः सर्वाः संचरति) तुम सबमें संचार करता है ॥ २२ ॥

(इन्द्रस्य अष्ट) इन्द्रके आठ, (यमस्य षट्) यमके छः (ऋषीणां सप्तधा सप्त) ऋषियोंके सात प्रकारके सात हैं । (पञ्च आपः) पांच प्रकारके जल (तान् मनुष्यान् ओषधीः) उन मनुष्यों और ओषधियोंके प्रति (उ अनु सेचिरे) अनुकूलतासे सिंचन करते हैं ॥ २३ ॥

(केवली गृष्टिः) केवल गौहि (पीयूषं प्रथमं दुहाना) अमृतरूपी दूध सबसे प्रथम देनेवाली (इन्द्राय वशं दुदुहे) इन्द्रके लिये अनुकूलताके साथ दुहती है । (अथ) और (चतुरः) चारों देव मनुष्य असुर और ऋषियों को (चतुर्धा अतर्पयत्) चार प्रकारसे तृप्त करती है ॥ २४ ॥

भावार्थ- इस प्रकार अपना कल्याण है यह जानकर आपकी मित्रतामें मैं प्राप्त हुई हूं। मैं सेवनीय हूं। आपका यज्ञ सबके सम प्रयत्नसे होनेवाला है । वह आपके लिये कल्याणकारी होवे । वह यज्ञ आप सबमें प्रचलित रहे ॥ २२ ॥

इन्द्रके आठ, यमके छः, ऋषियोंके सात प्रकारके सात हैं। पांच प्रकारके जल ओषधियोंमें प्रविष्ट होकर सब मनुष्योंकी सेवा करते हैं॥२३॥

केवल एक गौ अमृतरूपी दूध देती हुई इन्द्रके लिये अपना दुग्ध अर्पण करती है । और यही देव, मनुष्य, असुर और ऋषियोंको चारों प्रकारसे तृप्त करती है ॥ २४ ॥

खोज हुई है उसके अनुसार कुछ स्पष्टीकरण यहां करते हैं। इसके पश्चात् पाठक अधिक खोज करनेका यत्न करें।

इस सूक्तके पहिले मंत्रमें "कुतः तौ जातौ?" वे दो कहांसे प्रकट हुए, यह प्रश्न पूछा है। अर्थात् किसी एक पदार्थसे ये जगत्में सुप्रसिद्ध दो पदार्थ कैसे उत्पन्न हुए यह प्रश्नका तात्पर्य है। स्त्री और पुरुष, रयि और प्राण, इन दोनोंका सांकेतिक नाम चन्द्र और सूर्यभी है। यहां ये चांद और सूरज अपेक्षित नहीं हैं, परंतु जगत् की सोमशक्ति और अग्निशक्ति अपेक्षित है। इसी सूक्तके चौदहवे मंत्रमें 'अग्नी-षोमौ' शब्द है। यह शब्द इस जगत्की आग्नेयी शक्ति और सोमशक्तिका वाचक है। इस जगत्को 'अग्नीषोमीयं जगत्' कहते हैं क्योंकि इसमें येहि दो पदार्थ हैं। जो रसात्मक शान्त शक्ति है वह सोमकी है और जो उग्र तीव्र तथा उष्ण है वह आग्नेयी शक्ति है। इन दोनोंको रयि प्राण, चन्द्र सूर्य, इडा पिंगला, प्रकृति पुरुष, जड चैतन्य अनात्मा आत्मा, इस प्रकारके अनेक नाम है। इन अनेक द्वन्द्वसूचक नामोंसे दो तत्त्वों का ज्ञान होता है। जिसको स्त्री और पुरुष कहा जाता है। ये दो उत्पन्न होनेके पूर्व एकही तत्त्व विद्यमान था, इस एकसे ये दो तत्त्व कैसे उत्पन्न हुए? मनुष्यको इसी प्रश्नका विचार करके जानना चाहिये कि इन दोनोंका मूल कहां है।

मूल एक तत्त्व था, उसके एक अंशसे प्रकृतिपुरुषकी उत्पत्ति हुई; शेष जो रहा, उसके विषयमें 'कतमः सः अर्धः' वह अर्ध कौनसा है, जिसमें स्त्रीपुरुषशक्ति विभिन्न नहीं हुई वह मूलतत्त्वका आधा भाग कहां रहा है? इसी विषयमें वेदमें कहा है-

त्रिपादूर्ध्वमुदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः॥ ऋ० (१०।९०।४)

"इसके तीन हिस्से ऊपर हैं और इसका एक भाग हि यहां वारंवार बनता है।" अर्थात् मूलतत्त्वका थोडासा हिस्सा इस जगत्में विविधरूपोंका धारण करता है किंवा स्त्रीपुरुषरूप से दिखाई देता है। यह विभाग—

कस्माल्लोकात्कतमस्याः पृथिव्याः। (मं० १)

"किस लोकसे कौनसी पृथ्वीके किस विभागपर प्रकट हुआ है?" अर्थात् इस जगत्में अनंत पृथ्वीलोक हैं, उनमेंसे किस भूमिपर और उस भूमिके किस विभागपर यह प्रकट हुआ है और यह आया कहांसे? तत्त्वज्ञान की दृष्टीसे ये सब प्रश्न विचार करने योग्य है। इस अपने भूविभागपर भी सर्वत्र एक समय प्राणियोंकी उत्पत्ति नहीं हुई। किसी स्थानपर होगई और अन्यत्र फैली। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये और कई ग्रहोपग्रह ऐसे है कि जहां इस प्रकारके प्राणी अभीतक बनेभी नहीं हैं।

गौके दो बच्चे।

ये स्त्रीपुरुष दो बच्चोंके समान हैं। ये अपनी माता का दूध पीते हैं ये दोनों—

वत्सौ विराजः सलिलादुदैताम् (मं० १)

" ये विराट् रूपी गौके दोनों बच्चे जगत् बननेके पूर्व जो सर्वत्र प्राकृतिक समुद्र था, उससे उदयको प्राप्त हुए। " प्रायः प्रथम जल प्रकट होता है और तत्पश्चात् उत्पत्ति होती है, बच्चा उत्पन्न होनेके पूर्व भी जल उत्पन्न होता है, इस भूमिपर भी प्रारंभमें जल था, उसमें वनस्पतियां उत्पन्न हुई उसी जलमें जलजन्तु उत्पन्न हुए। इस प्रकार सबका उदय जलसे हि है। जन्मसे लेकर लयतक यह ' ज-ल ' हि साथ देने-वाला है। इस स्त्रीपुरुषका जलसे हि उदय हुआ है। ये दोनों बच्चे इस एकहि धेनुके हैं। इनमेंसे कौन् अपनी माताका दूध पीता है यह प्रश्न निम्न मंत्रभागमें पूछा है-

तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा। (मं० १)

" उन दोनोंके विषयमें मैं पूछता हूं कि उनमेंसे किसने अपनी माताका दूध पीया है? " और किसने नहीं पीया? यहां प्रकृति पुरुष इन दोनों बच्चोंमें कौन प्रकृति माता गौके दूधसे पुष्ट होता है और कौन नहीं होता है यह प्रश्नका भाव है। सबको इस प्रश्नका विचार करना चाहिये। अपनेहि अंदर देखिये, अपने अंदर देह और आत्मा है, येहि प्रकृति पुरुष हैं। इनमेंसे प्राकृतिक पुष्टिसाधनोंसे देहकी पुष्टि की जाती है, आत्माकी नहीं, अर्थात् देहहि अपनी प्रकृतिमाताका दूध पीकर पुष्ट होता है। आत्मा सदा एकरस रहता है। इस प्रकार विचार करके प्रश्नका भाव और उसका उत्तर जानना चाहिये।

इस विश्वकी रचना होनेके पूर्व कैसी अवस्था थी? यह एक प्रश्न तत्त्वज्ञानका विचार करनेवालोंके सन्मुख आता है इसका उत्तर वेदने ' सलिल अवस्था ' थी ऐसा दिया है। अगाध, अपरंपार, अति शान्त और गंभीर महासागरकी जो अवस्था होती है उसके समान प्राकृतिक परमाणुओंका समुद्र अति शांत था। उसमें कुछभी हलचल न थी, कुछभी न्यूनाधिकता नहीं थी, सर्वत्र शान्तता थी। यहां प्रश्न उत्पन्न होता है, कि ऐसी शान्तिकी स्थितिमें चञ्चलता किसने उत्पन्न की। यदि चञ्चलता उसी समुद्रका स्वतः सिद्ध धर्म माना जाय, तो उसमें शान्ति कैसे हो सकती है? यदि न माना जाय, तो यह अशान्ति किसने उत्पन्न की? इसका उत्तर इस प्रकार द्वितीय मंत्रने दिया है—

त्रि-भुजं योनिं कृत्वा शयानः। (मं २)

"सत्त्व रज और तम रूपी तीन गुणोंसे युक्त प्राकृतिक बिछोनेपर सोनेवाला यह एक देव है।" जबतक यह (शयानः) सोया हुआ रहता है, तब तक इस प्राकृतिक समुद्रमें बिलकुल हलचल नहीं होती, इसकी निद्रा समाप्त होनेतक सर्वत्र शान्ति फैली रहती है। जब यह जागने लगता है तब इस में हलचल होती है।

यः महित्वा सलिलं अक्रन्दयत। (मं० २)

"जो अपनी महिमासे इस सलिल अवस्थामें बडी हलचल शुरू करता है।" यह तीन गुणोंपर सोता है इस कारण वे हलचल कर नहीं सकते, परंतु जब यह जागता है तब वे हलचल के लिये खुले होते है और सत्त्वगुण समता चाहता, रजोगुण खिलबिली मचाना चाहता, और तमोगुण स्तब्धता चाहता है। इस प्रकार उस एकहि सलिलके ये तीनों परमाणु एक दूसरेपर अपने अपने विभिन्न गुणोंके कारण आपसमें हमला करते हैं और इस कारण उसका शान्त सलिल प्रक्षुब्ध होता है। और इस प्रक्षोभ का कारण उस उपास्य देवकी 'महिमा' ही है। शान्त सलिल में क्षोभ करना और क्षोभमें फिर शान्ति स्थापन करना, यही उसकी महिमा है।

विराजः कामदुघः सः वत्सः गुहा तन्वः चक्रे। (मं० २)

"इस विराट् रूपी कामधेनुका वह बच्चा गुहाके अंदर अपने रहनेके लिये तीन शरीर बनाता है।" ये तीन शरीर (गुहा) गुप्त हैं, प्रकट नहीं है, प्रकट होते तो गुहाके अन्दर न होते। ये सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर और महाकारणशरीर हैं। किंवा प्राण शरीर, सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर ये तीन शरीर हैं। ये शरीर गुह्य हैं और इनके कारणहि इस जगत् की स्थिति है। यह आत्मदेव ये शरीर (गुहा) अति गुप्त रीतिसे करता है, इस कारण इनकी उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि आदिका पता साधारण लोगोंको नहीं लगता।

यानि त्रीणि बृहन्ति, चतुर्थं वाचं नियुनक्ति। (मं० ३)

"ये तीनों शरीर बडे विलक्षण शरीरसे युक्त हैं, इनमें बडी शक्ति है। जो चौथा शरीर है उस चतुर्थ शरीरके साथ वाणीका योग होता है। यही स्थूल शरीर है।" यह स्थूल शरीर भाषण करता है, वक्तृत्व करता है, आत्माके अंदरके भाव प्रकट करता है। इसके अन्दर गुप्त तीन शरीर हैं, परंतु उनमेंसे एक भी इस प्रकार वक्तृत्व करनेमें समर्थ नहीं है। जिससे यह सब जगत् निर्माण होता है उसको ब्रह्म कहते हैं. इस ब्रह्मका ज्ञान तपसे होता है, देखिये—

विपश्चित् तपसा एनत् ब्रह्म विजानात्। (मं० ३)

" ज्ञानी मनुष्य तपसे इस ब्रह्मको जानता है।" अर्थात् अज्ञानी मनुष्य इसको जाननेमें असमर्थ है, तपके विना कोई भी इसे जान नहीं सकता। विपश्चित् (वि-पश्-चित्) का अर्थ " जो जगत्को विशेष सूक्ष्म दृष्टीसे देखता है " ऐसा है। वही इस ब्रह्मको जान सकता है, जो साधारण दृष्टीसे इस जगत्का निरीक्षण करता है, वह नहीं जान सकता। इसके जाननेकी रीति यह है—

यस्मिन् एकं (मनः) युज्यते। (मं० ३)

" जिसमें एक मनका योग किया जाता है।" जिस तपमें एक अपने मनका योग किया करते है। इस मनके योगसेहि अर्थात् चित्तवृत्ति निरोधसे जब यह जाग्रतिका मन शान्त और स्तब्ध होता है, तब उस विज्ञानी पुरुषको ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। सबसे पहिले—

बृहत्याः बृहत् निर्मितम्। (मं० ४)

" बडी प्रकृतिसे महत् तत्त्व निर्माण हुआ।" पहिले प्रथम मंत्रकी व्याख्या प्रसंगमें कहा है कि सबसे पूर्व प्राकृतिक शान्त समुद्र था। इस महती दैवी प्रकृतिसे (बृहत) महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ। यही सबसे पहिला सर्ग है। यहां (बृहती) दैवी महती मूल प्रकृतिसे यह महत्तत्वकी उत्पत्ति बताई। परंतु यहां शंका होती है कि यह मूल प्रकृति—

बृहती कुतः अधिमिता ? (मं ४)

" महती दैवी प्रकृति कहांसे बनी ? " इस प्रकार प्रश्न पूछे जांय तो अनवस्थाप्रसंगहि होगा। अतः द्वितीय मंत्रमें कहा है, कि एक सलिल अवस्था सबसे प्रथम थी। यही सबसे पहिली अवस्था है, यह कैसी बनी ऐसा प्रश्न कोई न करे। क्योंकि यह सबसे प्रथम अवस्था है। इसी महती प्रकृतिके साथ एक आत्मा शयन करता था। इससेभी पूर्व कोई नहीं है। इस प्रकार सबसे पूर्वके ये दोनों हैं। अतः ये कहांसे उत्पन्न हुए ऐसा प्रश्न कोई न पूछे। तत्त्वज्ञानमें इस प्रकार अनवस्थाप्रसंग करना बडा दोष गिना है। अस्तु।

बृहतः परि पञ्च सामा अधिनिर्मितानि। (मं० ४)

" इस महत्तत्त्वके ऊपर, अर्थात् इस महत्तत्वका मसाला लेकर पांच सामोंकी रचना हुई है। " महत्तत्त्वसे पांच तन्मात्रोंकी उत्पत्ति यहां कही है। यहां तक जो सृष्टिका वर्णन हुआ वह इस प्रकार बताया जाता है—

१	मूलप्रकृति, सलिल, माता, बृहती, विराट्, कामधेनु		पुरुष, ब्रह्म, स्वराट् यक्ष, वैश्वानर, विराट्
२	महत्तत्त्व बृहत्, कारण मात्रा	कारणदेह	जीव, वत्सः, ब्रह्मा
३	पंच तन्मात्र, पञ्च साम,	पञ्च सूक्ष्म इंद्रिय	
४	शरीर स्थूल	,, स्थूल इंद्रियां	,, निरीक्षक

यहांतक सृष्टिरचना का तीसरा युग यहां वर्णित हुआ है, इनसे जीवात्मा को शान्ति प्राप्त होती है इस लिये इनका नाम यहां साम है। और इस शरीरधारी आत्माके जीवन को आगे 'यज्ञ' का रूपक बताना है, उस विशेषकार्यके लिये भी यहां इनको साम नामसे दर्शाया है यह बात स्पष्ट है। यही बात अगले मंत्रमें अन्य शब्दोंसे कही है-

मात्राया परि बृहती। मातुः मात्रा अधिनिर्मिता। (मं० ५)

"बृहती प्रकृति तन्मात्राके ऊपर है। वह आदिमाता है। इस माता से तन्मात्रा निर्माण होगई।" यहां माता, आदिमाता, जगन्माता, बृहती ये मूलप्रकृतिके हि नाम हैं। उससे पंच तन्मात्राओंकी उत्पत्ति होती है। यहां एक प्रकृतिके पांच विभिन्न गुणधर्मवाले पदार्थ तत्त्व बने यह इसकी विशेषता है। इसीको कहते हैं—

मायायाः माया जज्ञे। मायायाः परि मातली। (मं० ५)

"आदिमायासे दूसरी माया बनी, और मायाके ऊपर निरीक्षक भी तैयार हुआ।" मूल आदिमायासे यह प्राकृतिक शरीर बना और उसका अधिष्ठाता या निरीक्षक जीवात्मा भी बना। यह चतुर्थ अवस्थाकी सृष्टि है, इसीका नाम जगत् है। आदिमायासे यह माया रची गयी है। इसका निरीक्षक यहां आत्मा है। यहां तक अविकृत मूल प्रकृतिसे विकृत जगत्का निर्माण होनेका वर्णन इन पांच मंत्रोंमें किया गया। अब इसमें व्यापक देवका वर्णन करते हैं-

वैश्वानरकी प्रतिमा।

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद्रोदसी विबबाधे अग्निः। (मं० ६)

"वैश्वानरकी प्रतिमा इतनी है कि जितना द्युलोक उसके ऊपर है और जहांतक

अग्निका तेज फैला है।" अर्थात् यह वैश्वानर भूलोकसे द्युलोक तक फैला है, यही विश्वका नेता है अतः इस को वैश्वानर कहते हैं। यह वैश्वानर प्रकृतिके साथ रहता हुआ जगत्के सब रचनादि कार्य करता है। संपूर्ण जगत्का यदि कोई प्रमुख नेता है तो वह यही है। यह छठा है। पूर्वोक्त कोष्टकमें (१) स्थूल, (२) सूक्ष्म, (३) कारण, (४) मूल प्रकृति, (५) जीव ये पांच और यह (६) वैश्वानर छठा है। पहिले चार जड हैं और अन्तके दो चेतन हैं। इस छठे वैश्वानरसे—

ततः पश्चात् अमुत उदिताः स्तोमाः आयन्ति। (मं० ६)

"उस छटे वैश्वानरसे प्रकाशित होनेवाले यज्ञ यहां मनुष्यलोकमें आते हैं।" वही मुख्य देव सब यज्ञोंका प्रकाशक है। मनुष्यकी उत्पत्तिके साथ जो यज्ञ उत्पन्न होता है वह यही है। और वेदि यज्ञकर्म (अह्नः षष्ठं अभि यन्ति) दिनके षष्ठ भागकी समाप्ति के समय पुनः उसीके पास पहुंचते हैं। उसीसे ज्ञान और कर्मकी प्रेरणा होती है और उसीमें वह अन्तमें जा मिलती है। इसको सबका द्रष्टा कहते हैं, इसलिये इसको कश्यप (पश्यकः) देखनेवाला सबका द्रष्टा किंवा निरीक्षक कहा है। यह—

त्वं हि युक्तं योग्यं च युयुक्षे। (मं० ७)

"युक्त और योग्य का संयोग करता है।" जो पदार्थ जहां रखना योग्य है और जैसा संयुक्त करना उचित है उसी प्रकार वह सबकी योजना यथायोग्य करता है, उसमें कोई गलती नहीं करता। इसीलिये उससे इस प्रकार सुयोग्य सृष्टिकी रचना निर्दोष होती है। यह उत्तम द्रष्टा होनेसे भी जहां जो पदार्थ जैसा चाहिये वह उसको ठीक प्रकार ज्ञात होता है और वैसा वह बनाता है। यदि वह योग्य द्रष्टा न होता तो सुयोग्य संसारका बनाना उसके लिये अशक्य हो जाता। उससे ऋषिगण प्रश्न करते हैं—

इमे षट् ऋषयः (वयं) त्वां पृच्छामः। (मं० ७)

"हम छः ऋषि तुझे प्रश्न पूछते हैं।" वैश्वानरसे प्रश्न करनेका अधिकार ऋषियोंकाहि है। कौन दूसरा उसको प्रश्न पूछ सकता है? और वह भी किस दूसरेको उत्तर क्यों देगा। उससे प्रश्न पूछनेके लिये भी चित्तकी शुद्धता चाहिये और उससे उत्तर लेनेकी भी तयारी चाहिये। वैसी तैयारी ऋषिमुनियोंकी होती है, इस कारण वे वैश्वानर से प्रश्न पूछते हैं और उससे उत्तर लेते हैं। धन्य हैं उनकी कि जो परमात्मासे अपना इस प्रकार संबंध जोड सकते हैं। वस्तुतः हरएक मनुष्य जो यहां आया है वह इस प्रकारकी योग्यता प्राप्त करनेके लियेहि आया है। परंतु बहुत थोडे लोग इस अवस्था तक अपनी उन्नति कर सकते हैं। ऋषियोंका प्रश्न इस प्रकार है—

विराजं ब्रह्मणः पितरं आहुः तां नः सखिभ्यः यतिधा विधेहि। (मं०७)

"विराट्को ब्रह्माका पिता कहते हैं, वह किस प्रकार होता है यह बात हम सबको कहिये।" यहां "आत्मा-परमात्मा, ब्रह्मा-ब्रह्म, पुरुष-पुरुषोत्तम, इन्द्र-महेन्द्र" ये पुत्र और पिताके संयुक्त नाम हैं। यह पितापुत्रसंबंध किस प्रकार है यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। हरएक मनुष्यको इसका विचार करना चाहिये और अपना और अपने पिताका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। मनुष्य को तो अपना भी ज्ञान नहीं है और न अपने पिताका ज्ञान उसको है। जहां अपना भी ज्ञान नहीं वहां पिताका ज्ञान कहां से संभवनीय है।

पूर्वोक्त कोष्टकमें 'विराज् अथवा विराट्' ये शब्द प्रकृति और पुरुष के लिये समानतया लिखे हैं। इन मंत्रोंमें भी विराज् शब्द पुल्लिंगमें है और स्त्रीलिंगमें भी है। जो तो पुल्लिंग में है वह आत्मा, परमात्मवाचक है और जो स्त्रीलिंगमें है वह प्रकृति, आदि शक्ति आदिका वाचक है परंतु सर्वत्र यह नियम भी नहीं है क्योंकि पितामाता वही होनेसे दोनों प्रयोग उस एक के लिये भी होते हैं। 'वि-राज्' शब्दका अर्थ 'विशेष तेजस्वी' है, इस कारण यह शब्द दोनोंके लिये प्रयुक्त होता है।

यहां 'ब्रह्मा' पुराण पुरुषसे उत्पन्न होनेके कारण जीवात्माका नाम है, उसका पिता पुरुष या परमात्मा है। पाठक यहां देखें कि सर्वत्र वेदमें पितापुत्रोंके नाम एक जैसे हैं, दोनोंको 'इन्द्र, आत्मा, पुरुष, विराट्' आदि नाम है। पिताकी शक्ति बडी और पुत्रकी शक्ति अल्प है। तथापि गुणधर्म और कर्म समान हैं। इससे पुत्रको पता लग सकता है कि यद्यपि मेरी शक्ति आज अल्प है तथापि मैं उसको बढाकर अपने पिताके समान 'समर्थ' बन सकता हूं। यही विश्वास दिलानेके हेतुसे इस मंत्रके प्रश्नकी प्रवृत्ति हुई है। इसका विशेष उत्तर अगले मंत्रमें दिया है वह अब देखिये—

> हे ऋषयः यां प्रच्युतां यज्ञाः अनु प्रच्यवन्ते, (यां) उपतिष्टमानां (यज्ञा) उपतिष्ठन्ते, यस्याः व्रते प्रसवे यक्षं एजति, सा परमे व्योमन् विराट् (अस्ति)। (मं० ८)

"हे ऋषि लोगो! जिसकी प्रेरणासे सब यज्ञ चलते और जिसकी प्रेरणा बन्द होने से सब यज्ञ स्तब्ध होते हैं, जिसके प्रकट होनेके लिये पूजनीय देवकी गति कारण होती है वह परम आकाशमें सर्वत्र व्यापक विशेष प्रकाशमान देवता है।" यह परमात्माका वर्णन है, यही सबका पिता और माता है। सभी जगत् इसकी प्रेरणासे चल रहा

है, इसीके नियममें रहता है इसने चलाया तो चलता है और नहीं चलाया तो स्तब्ध होता है। ऐसी इसकी अगाध शक्ति है। इसी शक्ति का चिन्तन करना चाहिये। सर्वत्र इसकी शक्ति हि फैल रही है और इस जगत् का सब चमत्कार इसकी शक्तिसे हि हो रहा है। जितना परम आकाश सर्वत्र व्याप्त है उतनी इसकी व्याप्ति है, अर्थात् यह सर्वत्र भरकर भी अवशिष्ट है। अगले मंत्रका वर्णन इससे भी और विचारणीय है—

अप्राणा प्राणतीनां प्राणेन एति। (मं० ९)

"जो स्वयं प्राणसे जीवित नहीं रहती परंतु अपनी शक्तिसेहि जीवित रहती है, ऐसी विराट् प्राणियोंके प्राणको साथ लेकर जाती है।" मुख्य देवके लिये प्राणकी सहायता की आवश्यकता नहीं है, वह तो अपनीहि सत्तासे स्वयं है। इसलिये उसको स्वयंभू कहते हैं। अन्य प्राणियोंके लिये जीवनधारणके अर्थ प्राणकी आवश्यकता होती है। यह प्राण उसीके साथ रहकर प्राणियोंके जीवनका हेतु बनता है। पश्चात् यह—

विराट् स्वराजं अभ्येति। (मं० ९)

" विराट् स्वराजके पास पहुंचती है।" इस वाक्यमें एक राजनैतिक भावभी है। (वि-राज्) जहां राजा नहीं है ऐसा राजसंस्थाहीन समाज (स्व-राजं) स्वराज्य शासन अर्थात् स्वसंमत राजशासनको प्राप्त करता है। जहां राजा रूप संस्था उत्पन्न नहीं हुई वहांकी जनता स्वयंशासित होती है, वे अपनी राज्यव्यवस्था स्वयं करते हैं। यह राजनैतिक भाव विचारणीय है।

इस मंत्रभागका दूसरा और एक अर्थ बनता है, वह यह है—(वि-राज्) राज्का अर्थ है प्रकाश, जिसके पास प्रकाश नहीं उसको वि-राज् कहते हैं। जो स्वयंप्रकाशी नहीं है वह (स्वराजं) अपने तेजसे जो प्रकाशता है उसके पास (अभ्येति) जाता है, और उससे तेज प्राप्त करके प्रकाशित होता है।

परंतु यहां का अर्थ इस प्रकार दीखता है—विराट् अर्थात जो आत्मा जगद्व्यवहार में लगा है वह शुद्धात्माके पास जाता है। जो त्रिपाद आत्मा अवशिष्ट है। उसको "स्वराट्" कहते हैं क्योंकि वह अपने प्रकाशसे प्रकाशित होता है। उसकी अपेक्षा जो एकपाद आत्मा जगत्में वारंवार आताजाता है, वह वैसा स्वयंप्रभावान् नहीं दिखाई देता। यह भाव केवल लक्षणासेहि समझना चाहिये। इस प्रकार यह आत्मा है—

त्वे विश्वं मृशन्तीं अभिरूपां विराजं पश्यन्ति, त्वे एनां न पश्यन्ति। (मं० ९)

" कई लोग इस सर्व जगत् को सुंदरता के साथ प्रकाशित करनेवाले आत्माको देखते हैं, परंतु कई उसको देख नहीं सकते।" वह सर्वत्र उपस्थित है, परंतु कई तो

उसका साक्षात्कार कर सकते हैं और कई ऐसे अन्धे होते हैं कि वे सब जगतके प्रकाशक-को भी नहीं देख सकते !! प्रायः सब प्राणी ऐसे ही अन्धे होते हैं, विरलाहि कोई उसको देख सकते है।

विराजः मिथुनत्वं कः प्रवेद ? कः ऋतून् वेद ? कः अस्याः कल्पं वेद। (मं १०)

" इस विराट्से उत्पन्न होनेवाले स्त्री पुरुषभेदको कौन जानता है ? कौन ऋतुओंकी उत्पत्तिको जानता है और कौन कल्पके समयको जानता है। " तत्त्वज्ञानकी दृष्टीसे इन बातोंका ज्ञान मनुष्यको होना चाहिये। तथा—

अस्याः कतिधा विदुग्धान् क्रमान् कः वेद ? अस्याः धाम कः वेद ?
अस्याः कतिधा व्युष्टिः ? (मं० १०)

" इसके अन्नादि रस देनेवाले ऋतु आदिके क्रमोंको कौन जानता है, इसका मूल स्थान किसने जाना है और इस सृष्टीके प्रभातकालको कौन जानता है ?" तत्त्वविचारक को इन प्रश्नोंका विचार करना योग्य है और इनका ज्ञानभी प्राप्त करना चाहिये। इसमें से कुछ प्रश्नोंका उत्तर आगे आवेगा—

इयं एव सा या प्रथमा व्यौच्छत्। (मं० ११)

" यही वह है कि जो पहिले प्रकाश करती है। " पहिली उषा यही करती है, जगत् में प्रकाशका संचार इसीसे होता है। यह—

आसु इतरासु प्रविष्टा चरति। (मं ११)

" इसमें और अन्योंमें व्यापकर यह चलती है। " यह सर्वत्र व्यापक है और सर्वत्र संचार करती हुई सब जगत्का कार्य करती है। इसकी शक्तिसेहि संपूर्ण जगत्के कार्य सुव्यवस्थित रीतिसे हो रहे है। तथा—

अस्यां अन्तः महान्तः महिमानः। (मं० ११)

" इसके अन्दर बडी बडी महत्वपूर्ण शक्तियां हैं। " और इन शक्तियोंसेहि इस जगत् के संपूर्ण कार्य करनेमें यह समर्थ होती है। (नवगत जनित्री वधूः जिगाय) घरमें नवीन आयी पुत्रका प्रसव करनेवाली जैसी सुंदर कुलवधू घरमें स्वामिनी होती है, उसी प्रकार यह विराट् इस जगत्में सर्वोपरि विराजमान है. जानते हुए या न जानते हुए सभी इसपर प्रेम करते हैं।

जिस प्रकार एकहि छन्दमें पूर्व और उत्तर ऐसे दो चरण (छन्दःपक्षे) होते हैं, और वे एकहि छन्दमें समान अधिकारमें रहते हुए परस्परकी अनुकूलताके साथ

छन्दकी शोभा बढाते हैं, उसी प्रकार इस जगत्‌में स्त्री और पुरुष ये इस संसाररूपी छंदके दो पक्ष हैं, दोनों परस्परकी सहायता और पूर्तीके लिये हैं, अलग होनेके लिये नहीं हैं। वे इस गृहस्थके संसारमें समान अधिकारसे रहते हुए (समानं योनिं) अपने समान अधिकार के गृहस्थानके अन्दर (अनुसंचरेते) अनुकूलतासे रहते हुए इस जगत् में संचार करते हैं। इसके लिये उदाहरण सूर्यपत्नीका है—

सूर्यपत्नी प्रजानती केतुमती अजरा भूरिरेतसा संचरति। (मं० १२)

" जैसी सूर्यकी धर्मपत्नी प्रभा ज्ञान प्राप्त करके, विज्ञानयुक्त होकर, क्षीण न होती हुई, विशेष पराक्रमी बनकर इस जगत् में संचार करती है।" ठीक इस प्रकार गृहस्थ की धर्मपत्नी ज्ञानविज्ञानयुक्त, बलयुक्त, पराक्रमयुक्त होकर अपने संसार के कार्य दक्षताके साथ करे। गृहस्थका गृहस्थाश्रम धर्मपत्नी के होनेसे हि होता है, इसलिये धर्मपत्नीका निर्देश यहां किया है। परंतु येही शब्द धर्मपतीका भी कर्तव्य बताते हैं। पतिभी ज्ञानविज्ञानयुक्त बने, हृष्टपुष्ट होकर विशेष पराक्रमके कार्य करता हुआ इस संसारमें विविध कार्य करे और अपने गृहस्थधर्मकी उन्नति करे। पति और पत्नीके धर्म साधारणतया पूर्वोक्त विषयोंमें समानहि हैं, इसलिये एकका निर्देश करनेसे दूसरेके धर्मकाभी ज्ञान हो जाता है। पूर्वोक्त स्थानमें इनके सामान्य धर्मका उल्लेख है, न कि विशेष धर्मोंका। अस्तु। अब इस गृहस्थधर्मका प्रसंग प्राप्त थोडासा वर्णन अगले मंत्रमें करते हैं—

तिस्रः ऋतस्य पन्थां अनु आगुः।
त्रयो धर्माः रेतः अनु आगुः। (मं० १३)

" तीनों शक्तियां सत्यकी अनुकूलताके साथ रहती हैं और तीनों धर्म वीर्यकी अनुकूलताके साथ होते हैं।" यह सिद्धान्त गृहस्थीको सदा ध्यानमें धारण करना चाहिये। शरीरकी, अन्तःकरणकी और आत्माकी ये तीनों शक्तियां सत्यके आधारसे प्राप्त होती हैं। जो सत्यका पूजक नहीं है उसके पास कोई शक्ति नहीं रह सकती। तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थके तीनों धर्म वीर्य-बल-पराक्रमके साथ सिद्ध किये जा सकते हैं। अशक्त मनुष्य इनको सिद्ध नहीं कर सकता। हरएक मनुष्यके लिये ये दोनों उपदेश सदा चित्तमें धारण करने योग्य हैं। संन्यास धर्म तो विशेष योग्यतावाले मनुष्यके लिये सिद्ध होनेवाला है, अतः सर्वसाधारणके लिये उसका निर्देश यहां नहीं किया है। इसीका आगे और स्पष्टीकरण किया है—

एका प्रजां जिन्वति । एका ऊर्जं जिन्वति ।

एका देवयूनां राष्ट्रं रक्षति । (मं० १३)

" एक प्रजाकी रक्षा, दूसरी बलकी वृद्धी और तीसरी देवोपासकोंके राष्ट्रकी रक्षा करती है " इस प्रकार सन्तानरक्षा, बलरक्षा और राष्ट्ररक्षा करनेका भार गृहस्थियों· पर है, यह गृहस्थधर्म है । जो अपना प्रजाका संवर्धन, पालन, पोषण और उत्तम शिक्षादि प्रबंध नहीं करता, वह अपने गृहस्थधर्मसे भ्रष्ट होता है, जो अपना बल नहीं बढाता और उससे अपने राष्ट्रकी रक्षा नहीं करता, वह भी वैसाहि गृहस्थधर्मसे च्युत होता है । गृहस्थमें जो तीन शक्तियां हैं, उन शक्तियोंका उपयोग यह है । हरएक गृहस्थको इनका उपयोग करके अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये । सत्य और वीर्यके अनुकूल जो गृहस्थके धर्म हैं, वे ये धर्म हैं ।

अग्नीषोमौ यज्ञस्य पक्षौ । (मं० १४)

" अग्नि और सोम ये दो यज्ञके पक्ष हैं " जिस प्रकार पक्षी के दो पंख होते हैं उसी प्रकार ये यज्ञके दो पंख हैं । हवन रूप यज्ञमें अग्नि मुख्य है क्यों कि अग्निके विना यज्ञ हो नहीं सकता और सोमरस भी प्रधान द्रव्य है । इस रीतिसे हवनरूप यज्ञमें ये दो पदार्थ मुख्य हैं । परंतु यही केवल यज्ञ नहीं है । मनुष्य का जीवन एक महान् यज्ञ है, इसमें भी अग्नि और सोम मुख्य हैं । यहां सोम का रूप मनुष्यमें मन है और अग्नि का रूप वाणी है । मनुष्यमें मन और वाणीहि सब कुछ है । इस ढंगसे इसका और भी विचार हो सकता है । सोम एक शान्ति और अहिंसा की सूचना देता है और अग्नि उग्रता और प्रतापकी सूचना देता है । मनुष्यके व्यवहार इनसे हो रहे हैं । यह यज्ञ जहांतक हो सके, वहांतक पूर्ण और उत्तम हो ऐसा करना हरएक मनुष्य का कर्तव्य है ।

पूर्व स्थानमें तीन शक्तियोंका वर्णन है । यहां एक (तुरीया आसीत्) चतुर्थ शक्ति कही है वह पारमात्मिक विश्वव्यापिनी शक्ति है । जिस शक्तिको ऋषि लोग प्राप्त करते हैं और जिससे यजमानको (स्वः) स्वर्गकी प्राप्ति होती है । इस मंत्रमें तथा इस सूक्तमें अन्यत्र जो छन्दोंके नाम हैं वे वेदमंत्रोंके उपासनायोग्य छन्द है । यह मंत्रोक्त उपासना मनुष्यको (स्वः आभरन्ती) स्वर्ग स्थानको पहुंचाती है । " स्वः "का अर्थ (स्व-र) आत्मप्रकाश है । इस उपासनासे आत्माका प्रकाश अधिकाधिक उज्वल होता है ।

आगे मंत्र १५ से मंत्र २१ तक पांच, छः, सात और आठ संख्याके गण कहे हैं। ये गण वारंवार वैदिक मंत्रोंमें आते हैं। पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, छः ऋतु, सप्त ऋषि, अष्टवसु आदि इन गणोंकी गणना अनेक स्थानपर है। इनमेंसे कई गण मनुष्य-शरीरमें हैं, कई कालविभाग हैं, कई बाह्य देवताओंके हैं। ये सब मिलकर संपूर्ण जगत् होता है और एक दूसरेके साथ अनुकूलतासे रहकर उन्नति करनेसे सबकी उच्च अवस्था होती है। अलग होनेसे हानि और मिलकर रहनेसे उन्नति यह नियम साधारणतया सर्वत्र है।

सात गीध।

अठारहवें मन्त्रमें 'सप्त गृध्राः' पद है। ये सात गीधभी मानवी शरीरमें हि हैं। जैसे सप्त ऋषि यहां हैं वैसेहि सात गीध हैं। जो ऋषि हैं वे हि गीध बनते हैं। दो नाक, दो कान, दो आंख और एकमुख ये अच्छे कर्ममें प्रवृत्त हुए तो ऋषि कहलाते हैं और येही स्वार्थान्ध हुए तो येही गीध या राक्षस बनते हैं। पाठक अपने शरीरमें देखें कि ये ऋषि हैं वा गीध हैं। और यदि गीध हों तो उनको ऋषि बनानेका यत्न करें।

जब मनुष्य अनासक्तिभावसे वर्तता है, तब सब संसार या प्रकृति उसकी सेवाके लिये तत्पर रहती है, वह कहती है—

श्रेयः मन्यमाना युष्माकं सख्ये आगमं, अहं शेवा अस्मि। (मं०२२)

" तुम्हारा कल्याण करनेकी इच्छासे आपके पास मैं आगयी हूं, मैं आपकी सेवा करनेवाली दासी हूं।" जब प्रकृति इस प्रकार अनुकूल होती है, तब समझना चाहिये कि इसका योग सफलताको पंहुचने लगा है। जो प्रकृति प्रारंभमें जीवपर अधिकार चलाती थी, वही उदासीनभावके कारण कैसी सेविका बनकर अनुकूल होती है यह यहां देखने योग्य है। उसका वशीभूत होनेका और एक कारण है—

वः समानजन्मा क्रतुः शिवः अस्तु स वः सर्वाः संचरति। (मं०२२)

" तुम्हारे साथ जन्मा हुआ यज्ञ तुम्हारे लिये कल्याण करनेवाला होवे और वह तुम्हारे अंदर संचार करे" भगवद्गीतामें "**सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा** (भ०गी०३।१०)" कहा है। प्रजाके साथ यज्ञ उत्पन्न होनेका वर्णन वहां है। यही बात इस मंत्रके "**समानजन्मा क्रतुः**" शब्दोंके द्वारा कही है। मनुष्य के साथ यज्ञ उत्पन्न हुआ है, उसके करनेसे मनुष्यकी उन्नति व न करनेसे उसका नाश निःसंदेह होना है।

गोमहिमा ।

केवली गृष्टिः प्रथमं इन्द्राय पीयूषं दुदुहे ।
अथ देवान् ऋषीन् मनुष्यान् असुरान् अतपर्यत् ॥ (मं० २४)

" अकेली गाय सबसे पहिले अपना अमृतरूपी दूध इन्द्रके यज्ञकर्मके लिये देती है । और पश्चात् जो दूध बचता है उससे देव, ऋषि, मनुष्य और असुरोंकी तृप्ति करती है । " यज्ञके लिये इस प्रकार गौकी उत्पत्ति है । इस हवनरूपी यज्ञसे वायुशुद्धि, जलशुद्धि, नीरोगता आदि होती है और मनुष्यका जीवन सुखपूर्ण होता है । इस कारण यज्ञयाग होमहवन करना मनुष्यका धर्म है और वह उसकी उन्नतिका एक एक उत्तम साधन है । आगेके दो मंत्रोंमें—

को नु गौः कः एक ऋषिः किमु धाम का आशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमोऽनु सः ॥ २५ ॥
एको गौरेक ऋषिरेकं धामैका आशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते ॥ २६ ॥

यहां एकही प्रकृतिरूप गौ है, जो जीवात्माओंकी पुष्टि करनेके लिये दूध देती है । इस सबका निरीक्षक एकहि ऋषि– सबका एक मात्र निरीक्षक–परमात्मा ही परम ऋषि है । इस पृथ्वीपर सर्वव्यापक एकहि परमात्मदेव सबका उपास्य है । और उसका सबके लिये उत्तम आशीर्वाद है । इस प्रकार विचार करके इन मंत्रोंका आशय जानना चाहिये ।

एक प्रकृतिरूपी गौ, एक दिव्यदृष्टिरूप ऋषि, एक परमात्माका धाम, एक स्वस्तिरूप आशीर्वाद, और इस भूमिपर व्यापक एकहि पूज्य देव है ये बातें यहां कहीं हैं । पूर्वोक्त वर्णनसे इनका सहज बोध हो सकता है ।

इस सूक्तमें पञ्च, षष्ठ, सप्त और अष्ट शब्दों द्वारा वेदोक्त अनेक कोष्टक बनते हैं, परंतु वे अभीतक पूर्ण नहीं हुए, इसलिये यहां नहीं दिये । जब पूर्णतासे तैयार होंगे तब उनका प्रकाशन किया जायगा ।

विराट्।

[१०]

(ऋषिः- अथर्वाचार्यः । देवता-विराट्)

(१) विराड् वा इदमग्रं आसीत् तस्यां जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥१॥

सोदंक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥ २ ॥

गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेदं ॥ ३ ॥ (२)

सोदंक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत् ॥ ४ ॥

यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेदं ॥ ५ ॥ (३)

अर्थ— [१०।१] (विराट् वै) विराट् निश्चयसे (अग्रे इदं आसीत्) प्रारंभमें यह जगत था। (तस्याः जातायाः) उसके होनेपर (इयं एव इदं भविष्यति इति) यही ऐसा यही होगा इस कारण (सर्वं अबिभेत्) सब भयभीत होगये ॥ १ ॥ (१)

(सा उद् अक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई और (सा गार्हपत्ये न्यक्रामत्) वह गृहपतिसंस्थामें परिणत होगई, (यः एवं वेद) जो ऐसा जानता है वह (गृहमेधी) गृहयज्ञ करनेवाला होकर (गृहपतिः भवति) गृहपालक होता है ॥ २-३ ॥ (२)

(सा उद् अक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई और (सा आहवनीये न्यक्रामत्) वह आहवनीय अग्निसंस्थामें परिणत होगई। (यः एवं वेद) जो इस प्रकार जानता है वह (देवानां प्रियः भवति) वह देवोंका प्रिय बनता है और (देवाः अस्य देवहूतिं यन्ति) सब देव इसकी देवोंकी पुकारके स्थानपर जाते हैं ॥ ४-५ ॥ (३)

सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ॥ ६ ॥

यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ (४)

सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥ ८ ॥

यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥ (५)

सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥ १० ॥

यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥ (६)

सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥ १२ ॥

यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥ १३ ॥ (७) (२५)

अर्थ—(सा उद् अक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई और (सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत्) वह दक्षिणाग्नि संस्थामें परिणत हुई। (यः एवं वेद) जो इस प्रकार जानता है। वह (यज्ञर्तः दक्षिणीयः वासतेयः भवति) योग्य रीतिसे यज्ञ करनेवाला, संमानयोग्य और दूसरोंको रहनेका स्थान देनेवाला होता है ॥ ६–७ ॥ (४)

(सा उद् अक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई और (सभायां न्यक्रामत्) वह सभामें परिणत होगई। (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (सभ्यः भवति) सभाके योग्य होता है और लोग (अस्य सभां यन्ति) इसकी सभामें जाते हैं ॥ ८–९ ॥ (५)

(सा उद् अक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई और (सा समितौ न्यक्रामत्) वह समितिमें परिणत होगई। (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (सामित्यः भवति) समितिके योग्य होता है और लोग (अस्य समितिं यन्ति) इसकी समितिमें जाते हैं ॥ १०–११ ॥ (६)

(सा उद् अक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई और (सा आमन्त्रणे न्यक्रामत्) वह मन्त्रिसभामें परिणत होगई। (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (आमंत्रणीयः भवति) वह मन्त्रीमण्डलके योग्य होता है और लोग (अस्य आमन्त्रणं यन्ति) इसकी मंत्रणाको जाते हैं ॥ १२—१३ ॥ (७)

(२) सोदक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् ॥ १ ॥ (८)

तां देवमनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद् वेद यदुभयं उपजीवेमेमामुपं ह्वयामहा इति ॥ २ ॥ (९) तामुपाह्वयन्त ॥ ३ ॥ (१०)

ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥ ४ ॥ (११)

तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ॥ ५ ॥ (१२)

बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥६॥ (१३)

ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुह्रन् व्यचो बृहता ॥ ७ ॥ (१४)

अर्थ- [१०१२] (सा उद् अक्रामत्) वह विराट् उत्क्रान्त होगई और (सा अन्तरिक्षे चतुर्धा) वह अन्तरिक्षमें चार प्रकारसे (विक्रान्ता अतिष्ठत) विभक्त होकर ठहरी ॥ १ ॥ (८)

(देवमनुष्याः तां अब्रुवन्) देव और मनुष्य उसके विषयमें बोले कि, (इयं एव तत् वेद) यही वह जानती है, (यत् उभये उपजीवेम) जिस से हम दोनों जीवित रहते हैं। अतः (इमां उप ह्वयामहै इति) इसको हम बुलाते हैं ॥ २ ॥ (९)

(तां उपाह्वयन्त) उसको उन्होंने बुलाया, पुकारा ॥ ३ ॥ (१०)

(ऊर्जे एहि) हे बल, आ। (स्वधे एहि) हे अपनी धारण शक्ति, आ। (सूनृते एहि) हे सत्य, आ। (इरावति एहि) हे अन्नवाली, आ ॥ ४ ॥ (११)

(तस्याः वत्सः इन्द्रः आसीत्) उसका बछडा इन्द्र था, (गायत्री अभिधानी) गायत्री रस्सी थी और (अभ्रं ऊधः) मेघ दुग्धस्थान था ॥ ५ ॥ (१२)

(बृहत् च रथन्तरं च) बृहत् और रथन्तर (द्वौ स्तनौ आस्तां) ये दो स्तन थे। और (यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ) यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य ये दो स्तन थे ॥ ६ ॥ (१३)

(देवाः रथन्तरेण ओषधीः अदुहन्) देवोंने रथन्तरसे औषधियाँ दोहन करके निकालीं और (बृहता व्यचः) बृहतसे विस्तारयुक्त आकाशको निकाला ॥ ७ ॥ (१४)

अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥ ८ ॥ (१५)

ओषधीरेवास्मै रथन्तरं दुहे व्यचो बृहत् ॥ ९ ॥ (१६)

अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद ॥ १० ॥ (१७) (२६)

(३) सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत् तां वनस्पतयोघ्नत सा संवत्सरे समभवत् ॥१॥

तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति

वृश्चतेस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद ॥ २ ॥ (१८)

सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितरोघ्नत सा मासि समभवत् ॥ ३ ॥

तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति

प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ४ ॥ (१९)

अर्थ- (वामदेव्येन अपः) वामदेव्यसे जल निकाला और (यज्ञायज्ञियेन यज्ञं) यज्ञायज्ञियसे यज्ञको निकाला ॥ ८ ॥ (१५)

(यः एवं वेद) जो यह जानता है (अस्मै रथन्तरं एव ओषधीः दुहे) उसके लिये रथन्तर औषधियां देता है, (बृहत् व्यचः) बृहत् अवकाश देता है, (वामदेव्यं अपः) वामदेव्य जल देता है और (यज्ञायज्ञियं यज्ञं) यज्ञायज्ञिय यज्ञ देता है ॥ ९--१० ॥ (१६-१७) ॥ २६ ॥

[१०।३] (सा उदक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई और (सा वनस्पतीन् आगच्छत्) वह वनस्पतियोंके पास आगई। (तां वनस्पतयः अघ्नत) उसको वनस्पतियोंने मारा, परंतु (सा संवत्सरे समभवत्) वह वर्षमें पुनः होगयी। (तस्मात् वनस्पतीनां वृक्णं अपि रोहति) इसलिये वनस्पतियोंके व्रण भरजाते हैं। (यः एवं वेद) जो यह जानता है (अस्य अप्रियः भ्रातृव्यः वृश्चते) उसका अप्रिय शत्रु काटा जाता है ॥ १-२ ॥ (१८)

(सा उदक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई, (सा पितॄन् आगच्छत्) वह पितरोंके पास आगई, (तां पितरः अघ्नत) उसको पितरोंने मारा, परंतु (सा मासि समभवत्) वह प्रतिमास उत्पन्न होने लगी। (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (पितृयाणं पन्थां प्रजानाति) पितृयान मार्ग जानता है और (तस्मात्) इसलिये (पितृभ्यः मासि उपमास्यं ददति) पितरोंको प्रतिमास दान दिया जाता है। ३-४ ॥ (१९)

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा अघ्नत सार्धमासे समभवत् ॥ ५ ॥
तस्माद् देवेभ्योऽर्धमासे वषट् कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥६॥(२०)
सोदक्रामत् सा मनुष्या३नागच्छत् तां मनुष्या अघ्नत सा सद्यः समभवत् ॥ ७ ॥
तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुप हरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ॥८॥(२१) (२७)
(४) सोदक्रामत् सासुरानागच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ॥ १ ॥
तस्या विरोचनः प्राह्रादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम् ॥ २ ॥
तां द्विमूर्धार्त्व्योऽधोक् तां मायामेवाधोक् ॥ ३ ॥
तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥ (२२)

अर्थ-(सा उदक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई (सा देवान् आगच्छत्) वह देवोंके पास आगई। (तां देवा अघ्नत) उसको देवोंने मारा, (सा अर्धमासे समभवत्) वह आधे मासमें होने लगी। (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (देवयानं पन्थां प्रजानाति) देवयान मार्गको जानता है। और (तस्मात) इसीलिये (देवेभ्यः अर्धमासे वषट् कुर्वन्ति) देवोंके लिये अर्ध मासमें वषट् कर्म करते हैं ॥ ५-६ ॥ (२०)

(सा उदक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई (सा मनुष्यान् आगच्छत्) वह मनुष्योंके पास आगई। (तां मनुष्याः अघ्नत) उसको मनुष्योंने मारा, (सा सद्यः समभवत) वह तत्काल उत्पन्न होगई। (यः एवं वेद) जो यह जानता है (अस्य गृहे उपहरन्ति) उसके घरमें लोग उपहार लाते हैं। और (तस्मात्) इस कारण (मनुष्येभ्यः उभयद्युः उपहरन्ति) मनुष्योंके लिये दोनों दिन-दिनमें दोवार-अन्न करते हैं ॥७-८॥ (२१) (२७)

[१०।४] (सा उदक्रामत) वह उत्क्रान्त होगई (सा असुरान् आगच्छत्) वह असुरोंके पास आगई, (तां असुराः उपाह्वयन्त) उसे असुरोंने पुकारा कि(माये एहि इति) 'हे माये! आ' इस प्रकार। (तस्याः प्राह्रादिः विरोचनः वत्सः आसीत) उसका प्रन्हाद पुत्र विरोचन बचा था। उनका (अयस्पात्रं पात्रं) लोहेका पात्र था। (तां द्विमूर्धा अर्त्व्यः अधोक्) उसका ऋतु पुत्र द्विमूर्धाने दोहन किया, (तां मायां एव अधोक्) उससे माया ही दोहन करके मिली। (तां मायां असुराः उपजीवन्ति) उस मायापर असुरोंका जीवन होता है। (यः एवं वेद) जो यह जानता है (उपजीवनीयः भवति) वह जीविकाका निर्वाह करनेवाला होता है॥१-४॥(२२)

सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ॥ ५ ॥
तस्या यमो राजा वत्स आसीद् रजतपात्रं पात्रम् ॥ ६ ॥
तामन्तको मार्त्यवोधोक् तां स्वधामेवाधोक् ॥ ७ ॥
तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥ (२३)
सोदक्रामत् सा मनुष्या३नागच्छत् तां मनुष्या३ उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ॥ ९ ॥
तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् ॥ १० ॥
तां पृथी वैन्योधोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ॥ ११ ॥
ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या३ उप जीवन्ति
कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥ (२४)

अर्थ-(सा उदक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई और (सा पितॄन् आगच्छत्) वह पितरोंके पास आगई । (तां पितरः उपाह्वयन्त) उसे पितरोंने इस प्रकार बुलाया कि (स्वधे एहि इति) ' हे अपनी धारकशक्ति! यहां आ ' (तस्याः यमः राजा वत्सः आसीत्) उसका यम राजा बछडा था और उसका (रजतपात्रं पात्रं) चांदीका पात्र था । (तां अन्तकः मार्त्यवः अधोक्) उसका मृत्युसंबंधी अन्तकने दोहन किया । (तां स्वधां एव अधोक्) उससे अपनी धारक शक्तिका हि दोहन हुआ इसलिये । (तां स्वधां पितरः उपजीवन्ति) उस अपनी धारक शक्तिसे पितरोंका जीवन होता है । (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (उपजीवनीयः भवति) जीविका निर्वाह करनेवाला होता है ॥ ५-८ ॥ (२३)

(सा उदक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई और (सा मनुष्यान् आगच्छत्) वह मनुष्योंके पास आगई, (तां मनुष्याः उपाह्वयन्त) उसको मनुष्योंने इस प्रकार बुलाया, कि (इरावति एहि इति) ' हे अन्नवाली! यहां आ ' । (तस्याः मनुः वैवस्वतः वत्सः आसीत्) उसका विवस्वान्‌का पुत्र मनु बछडा था । उसका (पृथिवी पात्रं) पृथिवी पात्र था । (तां पृथी वैन्यः अधोक्) उसका वेन पुत्र पृथिने दोहन किया । (तां कृषिं च सस्यं च अधोक्) उस दोहनसे कृषि और धान्य हुआ । इस कारण (ते मनुष्याः कृषिं च सस्यं च उपजीवन्ति) मनुष्य कृषि और धान्यपरहि जीवन करते हैं । (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (कृष्ट-राधिः) कृषिमें सिद्धि प्राप्त करनेवाला

सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत् तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति ॥१३॥
तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम् ॥ १४ ॥
तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक् तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् ॥ १५ ॥
तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उपजीवन्ति
ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१६॥ (२५) (२८)

(५) सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ॥ १ ॥
तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् ॥ २ ॥
तां देवः सविताधोक् तामूर्जामेवाधोक् ॥ ३ ॥
तामूर्जां देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥ (२६)

होकर (उपजीवनीयः भवति) दूसरोंकी जीविका निर्वाह करनेवाला होता है ॥ ९-१२ ॥ (२४)

(सा उदक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई (सा सप्तऋषीन् आगच्छत्) वह सप्तऋषियोंके पास आगई। (तां सप्त ऋषयः उपाह्वयन्त) उसको सप्त ऋषियोंने इस प्रकार बुलाया कि (ब्रह्मण्वति एहि इति) ' हे ब्रह्मज्ञानवाली ! यहां आ।' (तस्याः सोमः राजा वत्सः आसीत्) उसका सोम राजा बछडा था और (छन्दः पात्रं) छन्द पात्र था। (तां बृहस्पतिः आंगिरसः अधोक्) उसका अंगिरसकुलोत्पन्न बृहस्पतीने दोहन किया, (तां ब्रह्म च तपः च अधोक्) उससे ज्ञान और तप मिला। (तत ब्रह्म च तपः च) इसलिये ज्ञान और तप पर (सप्त ऋषयः उपजीवन्ति) सप्त ऋषि अपना जीवन धारण करते हैं, (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (ब्रह्मवर्चसी) ज्ञानवान होकर (उपजीवनीयः भवति) जीविका निर्वाह करनेवाला होता है ॥ १३-१६ ॥ (२५) (२८)

[१०।५] (सा उदक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई (सा देवान् आगच्छत) वह देवोंके पास आगई (तां देवा उपाह्वयन्त) उसको देवोंने इस प्रकार बुलाया कि (ऊर्जे एहि इति) ' हे बलवति ! यहां आ।' (तस्याः इन्द्रः वत्सः आसीत्) उसका बछडा इन्द्र था, और (चमसः पात्रं) चमस पात्र था। (तां देवः सविता अधोक्) उसका दोहन सविता देवने किया (तां ऊर्जा एव अधोक्) उससे बल प्राप्त हुआ। अतः (तां ऊर्जां देवाः उपजीवन्ति) उस बलपर देवोंका जीवन होता है, (यः एवं वेद) जो यह

सोद॑क्रामत् सा ग॑न्धर्वाप्स॒रस॒ आग॑च्छत्
तां ग॑न्धर्वाप्स॒रस॒ उपा॑ह्वयन्त॒ पुण्य॑गन्ध॒ एहीति॑ ॥ ५ ॥
तस्या॑श्चित्ररथः सौर्यवर्च॒सो व॒त्स आसी॑त् पुष्करप॒र्णं पात्र॑म् ॥ ६ ॥
तां वसु॑रुचिः सौर्यवर्च॒सो॑ऽधोक् तां पुण्य॑मे॒व ग॒न्धम॑धोक् ॥ ७ ॥
तं पुण्यं॑ ग॒न्धं ग॑न्धर्वाप्स॒रस॒ उप॑ जीवन्ति
पुण्य॑गन्धिरुपजीव॒नीयो॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ८ ॥ (२७)
सोद॑क्रामत् सेत॑रजनाना॒ग॑च्छत् तामि॑तरज॒ना उपा॑ह्वयन्त॒ तिरो॑ध॒ एहीति॑ ॥ ९ ॥
तस्याः॑ कुबे॑रो वैश्रव॒णो व॒त्स आसी॑दामपा॒त्रं पात्र॑म् ॥ १० ॥
तां र॑ज॒तना॑भिः काबेर॒को॑ऽधोक् तां ति॑रो॒धामे॒वाधो॑क् ॥ ११ ॥

जानता है वह (उपजीवनीयः भवति) जीविका निर्वाह करनेवाला होता है ॥ १-४ ॥ (२६)

(सा उदक्रामत) वह उत्क्रान्त होगई और (सा गन्धर्वाप्सरसः आगच्छत्) वह गन्धर्व और अप्सराओंके पास आगई। (तां गन्धर्वाप्सरसः उपाह्वयन्त) उसको गन्धर्व और अप्सराओंने इस प्रकार बुलाया कि (पुण्यगन्धे एहि इति) 'हे उत्तम सुवासवाली! यहां आ।' (तस्याः चित्ररथः सौर्यवर्चसः वत्सः आसीत्) उसका सूर्यवर्चसपुत्र चित्ररथ बछडा था, और (पुष्करपर्णं पात्रं) कमलपत्र पात्र था। (तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसः अधोक्) उसका सूर्यवर्चसपुत्र वसुरुचिने दोहन किया। (तां पुण्यं गंधं एव अधोक्) उससे उत्तम सुवास प्राप्त हुआ। इसलिये (तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरसः उपजीवन्ति)उस सुवासपर गन्धर्व और अप्सराएं जीवित रहती हैं। (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (पुण्यगन्धिः) उत्तम सुगंधयुक्त होकर (उपजीवनीयः भवति) जीविका निर्वाह करनेवाला होता है ॥ ५-८ ॥ (२७)

(सा उदक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई (सा इतरजनान् आगच्छत्) वह इतर जनोंके पास आगई (तां इतर जनाः उपाह्वयन्त) उसको इतर जनोंने इस प्रकार बुलाया कि (तिरोधे एहि इति) 'हे अंतर्धान शक्ति ! यहां आ।' (तस्याः कुबेरः वैश्रवणः वत्सः आसीत्) उसका विश्रवाका पुत्र कुबेर पुत्र था। और (आमपात्रं पात्रं) आमपात्र पात्र था। (तां

तां तिरोधामितरजना उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं
पाप्मानमुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥ (२८)
सोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत् तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति ॥ १३ ॥
तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ॥ १४ ॥
तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक् तां विषमेवाधोक् ॥ १५ ॥
तद् विषं सर्पा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १६ ॥ (२९) (२९)
(६) तद् यस्मा एवं विदुषेऽलाबुनाभिषिञ्चेत् प्रत्याहन्यात् ॥ १ ॥
न च प्रत्याहन्यान्मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात् ॥ २ ॥
यत् प्रत्याहन्ति विषमेव तत् प्रत्याहन्ति ॥ ३ ॥
विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनुविषिच्यते य एवं वेद ॥ ४ ॥ (३०) (३०)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ अष्टमं काण्डं समाप्तम् ॥

रजतनाभिः काबेरकः अधोक्) उसका काबेरक पुत्र रजतनाभिने दोहन किया। (तां तिरोधां एव अधोक्) उससे अन्तर्धान शक्ति प्राप्त की। इसलिये (इतरजनाः तां तिरोधां उपजीवन्ति) इतर जन उस तिरोधान शक्तिपर जीवित रहते हैं। (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (सर्वं पाप्मानं तिरः धत्ते) सब पापको दूर रखता है और (उपजीवनीयः भवति) जीविका) निर्वाह करनेवाला होता है ॥ ९– १२ ॥ (२८)

(सा उदक्रामत्) वह उत्क्रान्त होगई (सा सर्पान् आगच्छत्) वह सर्पोंके पास आगयी। (तां सर्पाः उपाह्वयन्त) उसको सर्पोंने इस प्रकार बुलाया कि (विषवति एहि इति) 'हे विषवालि ! यहां आ।' (तस्याः तक्षकः वैशालेयः वत्सः आसीत्) उसका विशालापुत्र तक्षक बच्चा था, (अलाबुपात्रं पात्रं) और अलाबुका पात्र था। (तां धृतराष्ट्रः ऐरावतः अधोक्) इरावान्के पुत्र धृतराष्ट्रने दोहन किया। (तां विषं एव अधोक्) विषहि मिला। (तत् विषं सर्पाः उपजीवन्ति) उस विषसे सर्प धारण करते हैं (यः एवं वेद) जो यह जानता है वह (उपजीव- ः भवति) जीविका निर्वाह करनेवाला होता है ॥१३–१६॥ (२९) (२९)

[१०।६] (तत एवं विदुषे यस्मै) इसलिये ऐसा जाननेवाले जिस

विद्वानके लिये (अलाबुना अभिषिञ्चेत्) अलाबुसे अभिषेक किया जाय, वह उसका (प्रत्याहन्यात्) प्रतिकार करे। (न च प्रत्याहन्यात्) और यदि न प्रतिकार करे तो (मनसा त्वा प्रति-आहन्मि) मनसे 'तेरा प्रति-घात करता हूं' (इति प्रत्याहन्यात्) ऐसा प्रतिकार करे। (यत् प्रत्याहन्ति) जो प्रतिकार होता है (तत् विषं एव प्रत्याहन्ति) वह विषका हि प्रत्याघात करता है। (यः एवं वेद) जो यह जानता है (विषं एव अस्य अप्रियं भ्रातृव्यं) विषहि इसके अप्रिय भ्रातृव्य पर (अनुविषिच्यते) जा गिरता है। ॥ १-४ ॥ (३०) (३०)

कामधेनुका दूध।

इस सूक्तमें जगन्माता विराट् देवीरूपी कामधेनुका दूध किन लोगोंने किस प्रकार निकाला इसका उत्तम वर्णन है। कामधेनु तो सबकी माता एक जैसी हि है, उसमें कोई भेद नहीं है, परंतु उनके पास जानेवाले विभिन्न है, उनका मन भिन्न प्रकारका है, उनकी कामनाएं भिन्न होती हैं, उनके पुरुषार्थ भिन्न होते है, इस कारण परिणाम भी भिन्न हुआ करते हैं। किसी गायका दूध सांपके पेटमें गया तो वहां उसका विष-बनता है और उसी दूधको उत्तम आमके मूलमें सींचा तो उसीसे उत्तम स्वादुरस तैयार होता है। इसी प्रकार एकहि समुद्रका जल मेघोंमें जाकर वृष्टिरूपसे नीचे आता है और संपूर्ण वृक्ष वनस्पतियोंपर पडता है, इसी एक हि जलसे छः प्रकारके रस छः प्रकार के वृक्षोंमें उत्पन्न होते हैं, ईखमें मधुर, इमलीमें खट्टा, मिरच में कटु इस प्रकार विभिन्न रस हो जाते हैं। मेघोंसे आनेवाला पानी एकसा होता है, परंतु वनस्पतियोंके भेदसे रसमें भिन्नता उत्पन्न होती है। भूमिभी एक है परंतु उसीमें उपजे गुलाब की सुगंध और प्रकारकी है, चमेली की अन्य प्रकारकी और पारिजातक की और प्रकारकी होती है। एकहि भूमीमें रस लेनेवाले भिन्न होनेके कारण विभिन्न रसोंकी उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार विराट् रूपी दिव्य कामधेनु एकहि है, परंतु उससे देव, ऋषि, पितर, असुर, मनुष्य सर्प, गन्धर्व आदि भिन्नभिन्न गुण प्राप्त करते हैं, इसका वर्णन इस सूक्तमें देखने योग्य है, यही बात इस कोष्टक में देखिये—

१ विराट्, दिव्य कामधेनु।

लोक	दोहनकर्ता	वत्स.	दोहन पात्र	बुलानेका नाम	दूध	जीवन साधन	क्या करता है अथवा कैसा होता है
असुरः	द्विमूर्धा आर्त्व्यः	विरोचन. प्राह्रादिः	अयस्पात्रं	माया	माया	माया	
पितरः	अन्तकोमार्त्यः	यमःराजा	रजतपात्र	स्वधा	स्वधा	स्वधा	
मनुष्यः	पृथी वैन्यः	मनुः वैवस्वतः	पृथिवी (मिट्टी)	इरावती	कृषि,सस्य	कृष्टि सस्य	कृष्टि-राधिः
सप्तऋषि	बृहस्पतिः आंगिरसः	सोमोराजा	छन्दः	ब्रह्मण्वती	ब्रह्म,तपः	ब्रह्म,तपः	ब्रह्मवर्चसी
देव	सवितादेवः	इन्द्रः	चमसः	ऊर्जा	ऊर्जा	ऊर्जा	
गन्धर्व	वसुरुचिः	चित्ररथः	पुष्करपर्णं	पुण्यगन्धा	पुण्यगन्धः	पुण्यगन्धः	सुगन्धित होता है।
अप्सराः	सौर्यवर्चस.	सौर्यवर्चसः	(कमलपत्र)		(सुगध)		
इतरजन	रजतनाभि. काबेरकः	कुबेरः वैश्रवणः	आमपात्रं	तिरोधा	तिरोधा	तिरोधा	पाप दूरकरता है
सर्प	धृतराष्ट्रः ऐरावतः	तक्षकः वैशालेयः	अलाबुपात्र	विषवती	विष	विष	

२ विराट्, दिव्य कामधेनु।

दोहनकर्ता	दुग्धाशय ऊधस्	वत्स	रसना गौ बांधनेकी डोरी	गौके नाम	स्तन	दूध
देव मनुष्य	अभ्र	इन्द्र	गायत्री	ऊर्जा	बृहत्	नभः (आकाश)
				स्वधा	रथन्तर	ओषधिः
				सूनृता	यज्ञायज्ञियं	यज्ञ
				इरावती	वामदेव्य	आपः

३ विराट् गौ।

किसके पास गई	पुनः बननेका समय	क्या होता है	ज्ञान
वनस्पती	संवत्सर	वर्षमें व्रण भरता है।	
पितर	मास	मासिक दान देते हैं	पितृयानज्ञान
देव	पक्ष	अर्धमासमें वषट करते हैं।	देवयानज्ञान
मनुष्य	सद्य तत्काल	प्रतिदिन अन्न ग्रहण करते हैं	

इन कोष्टकोंसे पता लगता है कि इस विराटरूपी कामधेनुसे किसने किस प्रकारका दूध प्राप्त किया। कामधेनुके पास जो मांगा जाता है, वही उसको प्राप्त होता है। आप चाहे अमृत मांगे अथवा चाहे आप विष मांगे। एकहि कामधेनु अमृत मांगनेवालेको अमृत देगी और विष मांगनेवालेको विष देगी। कामधेनु तो वर मांगनेवालेकी इच्छा तृप्त कर सकती है। यहां वर मांगनेवालेको योग्य बुद्धि चाहिये। नहीं तो विराट् देवता प्रसन्न होनेपर भी बेढंगावर मांगकर अपनाहि नाश कर लेगा।

पूर्वोक्त कोष्टक को देखनेसे पता लगेगा कि असुरोंने उस विराट देवीको ' माया ' नामसे पुकारा, मायाका अर्थ है- " छल, कपट, धोखा, जैसा दीखता है वैसा वास्तविक न होना, भ्रम, कौशल्य।" असुरोंने विराट् देवीमें ये गुण देखे और उनसे येहि गुण मांगे, उनको येहि गुण मिले। जो असुरोंने मांगा वही उनको मिला। प्राचीन और अर्वाचीन कालके असुरोंमें कपट और धोखा हि दिखाई देता है। इनही धोखेबाजीके कृत्योंसे असुर पहचाने जाते हैं। असुरोंका सब इतिहास धोखेबाजीका ही इतिहास है।

उसी विराट् कामधेनुसे देवोंने बल और अन्नकी प्रार्थनाकी और उनको अन्न और बल प्राप्त हुआ। इस बलसे देवोंने असुरोंका पराभव किया और देवोंका राज्य इस सृष्टीमें होगया।

मनुष्योंने विराट् देवीसे कृषि और फल आदि मिलनेकी प्रार्थना की और यह कृषि विद्या उन्होंने प्राप्त की, आजतक मनुष्य कृषिसे अपना जीविका निर्वाह कर रहे है।

सर्पोंने देखिये ऐसी उत्तम देवताकी उपासना करके क्या मांगा, जो न उनको लाभकारी है और न दूसरों का हित कर सकता है। ऐसी बडी देवता आदिमाताकी प्रसन्नता होनेके बाद उससे सर्प ऐसी एक चीज मांगते हैं कि जो जगत् का नाश कर सकती है। जगद्रचना करने वाली देवी प्रसन्न हुई तो उसमे जो चाहे सो मिल सकता है, परंतु उससे सर्पोंने ' विष ' मांगा, जो प्राणिमात्र दा नाश कर सकता है। इस प्रकारकी आत्मघातक मांग किसीको करना उचित नहीं है। यदि सर्प उस देवतासे विशेष महती शक्ति मांगते, तो वह उनको मिलती, परंतु उसके लिये भी शुद्ध बुद्धि चाहिये। उसके अभावमें ऐसा हि होगा। इसका तात्पर्य यह है कि बडीसे बडी शक्ति भी हाथमें आगयी, तो भी मनुष्यका कोई लाभ नहीं हो सकता, क्यों कि उस शक्ति-का उत्तम उपयोग करनेका ज्ञान उसको चाहिये। उस ज्ञानके अभावमें वह प्राप्त हुई बडी शक्ति निःसंदेह इसकी हानि करेगी। जैसा सर्प और असुर इस देवताकी कृपासे

लाभ न उठासके। परंतु ऋषि,देव और मानवोंने उस से बडा लाभ प्राप्त किया। विशेष कर ऋषियोंने उस देवतासे 'ब्रह्म और तप' प्राप्त किया, जो सब मानवजातीकी उन्नतिका एकमात्र साधन है, ऐसा हम कह सकते हैं। यदि मांगनेका समय आया तो ऐसा मांगना चाहिये।

इस सूक्तकी अन्य बातें इस पूर्वोक्त उपदेशका गौरव करनेके लिये हैं, अतः उनका विशेष विवरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

पाठक यहां इस बातका स्मरण रखें कि यह विराट् देवता केवल असुर, पितर, देव, मनुष्य, इतरजन, सर्प आदिकोंकोहि प्रसन्न हुई और हम सब मनुष्योंको वह वर देनेको तैयार नहीं है ऐसी बात नहीं है। वह आदिमाता जगन्माता हम सबको जो चाहे सो देनेको तैयार नहीं है, हम सब जो चाहे सो लेतेभी हैं, परंतु जो लेना चाहिये वह लेते। अयोग्य पदार्थ लेकर हम अपनी अवनति कर रहे हैं, इसलिये वेदने हमें इस सूक्तद्वारा यह उपदेश देकर कहा कि उससे अच्छी शक्ति हि मांगना चाहिये और कोई हानिकारक बात नहीं माङ्गनी चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य मनमें संकल्प करता है, इच्छा करता है, कामना करता है वह सब पूर्वोक्त कामधेनुसे मांगहि होती है। प्रत्येक मनुष्य कामधेनुके समीप है। यह सब 'विराट्' कामधेनुहि है और उसके सामने बैठकर मनुष्य इच्छा करता है। कल्पवृक्षके नीचे अथवा कामधेनुके सामने बैठकर मनमें भली या बुरी कामना की जायगी, तो वह तत्काल सिद्ध होगी। भली कामना मनमें उत्पन्न हुई तो कोई दोष नहीं होगा, परंतु बुरी कामना उठी तो हानि होनेमें कोई संदेहहि नहीं। यहां पाठक स्मरण रखें कि जो हानि बुरा संकल्प करनेसे होगी, उस हानिकी जिम्मेवारी अपनेहिपर है। इस-प्रकार विचार करनेपर पता लगेगा कि मनुष्य स्वयं अपना नाश कर रहा है। इसने बुरी कामना की और कामधेनुसे वैसा फल मिला, तो उसमें कामधेनुका क्या दोष है? दोष सब कामना करनेवालेका है। यह बात पाठकोंके मनमें स्थिर करनेके लियेहि इस सूक्तका उपदेश हुआ है।

पाठक यहां अपनी संकल्पशक्ति का बल देखें और सदा शुभसंकल्प करके अपनी उन्नतिका मार्ग सुगम करें।

राष्ट्रीय उपदेश।

इस सूक्तका जो पहिला भाग है वह राष्ट्रीय उन्नतिविषयक है। उसमें जनताकी

उन्नति कैसी हुई, राष्ट्रीय संघटना कैसी हुई और लोगोंकी प्रातिनिधिक सभा कैसी बनी इस विषयका उपदेश इस सूक्तमें है। यहां ' वि-राट् या वि—राज् ' शब्दका अर्थ ' राजहीन स्थिति ' है। जिस समय राजा बना नहीं था, राजा बनानेकी कल्पना अथवा राजाकी भी कल्पना जिस समय जनतामें नहीं थी, उस समयकी जनताकी अवस्था ' वि—राज् ' शब्द द्वारा यहां बतायी है। राजसंस्था शुरू होनेके पूर्वकी स्थिति इस शब्दने यहां प्रकट की है। यह शब्द ' अ-राज-क ' शब्दका पर्यायशब्द नहीं है। अराजक लोग राजाकी उत्पत्तिके पश्चात् होते है। पहिले राजाकी उत्पत्ति हुई, पश्चात् राजा और राजपुरुष प्रजापर अत्याचार करने लगे, उनके अत्याचारसे त्रस्त होकर राजाका नाश करनेकी इच्छासे ' अराजक ' लोगोंका जन्म हुआ है। अर्थात् राजाके उत्तर कालमें ' अराजक ' की उत्पत्ति और पूर्व कालमें ' विराज् ' की स्थिति होती है। इस प्रकार विचार करनेसे विराज् का अर्थ पाठकोंके मनमें स्थिर हो सकता है। जनता विराज् स्थिति में थी, इसका अर्थ केवल बिखरे लोक, थे और उनमें कोई संघटना नहीं थी।

तत्पश्चात् सबसे प्रथम जो संघटनाका प्रारंभ हुआ वह 'स्त्रीपुरुषोंके मेल' से हि प्रारंभ हुआ है। स्त्री पुरुष तो पशुओंमें भी मिलते हैं, परंतु वे अपना गृहस्थ संसार नहीं करते। उनका मेल तो केवल कामुकताके समयमें हि होता है। मनुष्यमें बुद्धि है, मन है और प्रेमभी है। प्रारंभिक मनुष्योंमें पशुवत् स्त्रीपुरुष संबंध होते होते, जब उनका प्रेम अधिक दृढ होने लगा, तब वे एकत्र रहने लगे। इस एकत्र निवासको धर्मकी नियंत्रणा होनेसे 'गृहपति' संस्थाकी उत्पत्ति होगई है। धर्मकी नियंत्रणाके साथ प्रतिदिन का अग्निहोत्र तथा अन्यान्य गृहस्थधर्म मनुष्यके साथ संबंधित होगये। इस समय यह मनुष्य घर करके रहनेलगा। घरमें रहनेसे घरका स्वामी, स्वामीकी सह-चारिणी स्त्री और उसके सहायक भाई और पुत्र हैं, यह कल्पना मनुष्यमें उत्पन्न होगई और यही कल्पना बढते बढते बडे साम्राज्यमें परिणत हुई। इसी उन्नतिका क्रम इस सूक्तमें दर्शाया है।

गृहपति, आहवनीय और दक्षिणाग्नि ये तीनों संस्थाएं गृहव्यवस्था में हि अधिकाधिक संघटना होनेका आशय बता रही हैं। गृहपति संस्थामें यज्ञ भी छोटे होते हैं, आहव-नीय और दक्षिणाग्निमें यज्ञ बढ गये और उसके कारण मानवसंघटना भी बढगयी। परंतु अभीतक ग्रामसंस्थाका अस्तित्व नहीं हुआ था। अनेक कुटुंब एक स्थानपर

रहते थे, परंतु ग्रामसंस्थाके बंधनसे वे संबंधित नहीं थे। एक स्थानपर अनेक कुटुंब रहनेके पश्चात् सब कुटुंबियोंकी मिलकर एक ग्रामसंस्था होनी चाहिये, इससे ग्रामकी संघटना अथवा सच कहें तो जो उस स्थानपर कुटुंब रहते हैं, उनकी संघटना होगी, यह कल्पना उत्पन्न हुई होगी। गृहपति संस्थाके पश्चात् ग्रामकी और ग्रामसंस्थाकी कल्पना स्वभावतः हि उत्पन्न होगी। क्यों कि गृहपति संस्थामें जो घरके नियंताकी भावना का और संघटनासे सुखका अनुभव है, उसी अनुभवसे अनेक गृहस्थियोंका मिलकर एक कुटुंब बनाने और उससे अपना संघबल बढानेकी कल्पना मनुष्योंमें उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

इससे हि 'सभा' की उत्पत्ति होगई है। यहां सभा शब्द ' ग्राम-सभा ' है। 'ग्राम' शब्दका हि अर्थ ' संघटित समाज ' है, अनेक कुटुंब एक नियमसे बंधकर एकत्र रहते हैं उसका नाम 'ग्राम' है। इस ग्रामकी जो सभा उसका नाम ग्रामसभा है। यह सभा उस ग्रामके चुने हुए प्रतिनिधियोंकी हि होती है। कोई बाहरका मनुष्य इस सभा का सदस्य नहीं हो सकता। जो उस ग्रामका रहनेवाला है, उपरी नहीं है, जिसका घरदार ग्राममें है और जो उस ग्रामके कुटुंबियोंका चुना हुआ प्रतिनिधि है, वह उस सभाका सदस्य हो सकता है। इस प्रकारके जो लोगोंके प्रतिनिधि होंगे उनकी ग्रामसभा होगी। और यह सभा ग्रामकी रक्षा, आरोग्य प्रबंध, शिक्षाव्यवस्था आदि कार्य करेगी। मानो इस ग्रामसभासे उस ग्रामकी नियंत्रणा होगी।

इस प्रकार अनेक ग्राम बने, उनकी व्यवस्थापिका सभाएं बनीं, तो उनके आपसमें ' संग्राम ' होना संभव है। ऐसे ' सं-ग्राम ' होनेके पश्चात् हि संग्रामोंसे अहित होनेका अनुभव ज्ञान होगा और अनेक ग्रामोंकी एक संघटित सभा बनानेकी कल्पना सबको प्रिय होगी।

इसी कारण ' समिति ' की निर्मिति होगई ऐसा आगे इस सूक्तमें कहा है। पूर्वोक्त ग्रामसभाओंके द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियोंकी हि यह राष्ट्रसमिति अथवा राष्ट्रीय सभा होती है। और इसके द्वारा राष्ट्रका शासन होता है। इसके बीचमें प्रांत सभाएं छोटी अथवा बडी होनेका अनुमान पाठक कर सकते हैं और इससे बढकर साम्राज्यमहासभा का होना भी पाठकोंकी कल्पनामें आसकता है।

महासभा अथवा समिति तो राष्ट्रकी होती है और इसमें सब ग्रामोंके प्रतिनिधि आनेसे प्रतिनिधियोंकी संख्या बडी होती है। जब बहुत किंवा सैंकडों प्रतिनिधि होते

हैं तब उनका उपस्थित होना और एक मतसे काम चलना अत्यंत कठिन होता है, इस लिये उनमें से कुछ थोडेसे चुने हुए अधिक योग्य कार्यकर्ताओंका 'मंत्रिमंडल' बनाना आवश्यक हुआ करता है। कार्य करनेके समय इसकी अत्यंत आवश्यकता होती है। अतः इसी सूक्तके अन्तिम भागमें 'आमंत्रणा' परिषद् बनानेका उल्लेख है। आमंत्रणा अथवा मंत्रणा करनेवाला हि मंत्रिमंडल होता है। यह सब राष्ट्रके शासन व्यवहार का विचार करता है और तदनुसार सब ओहदेदारों द्वारा राष्ट्रका तथा तदन्तर्गत ग्रामोंका शासन व्यवहार करता है। इस ढंगसे वेदने लोकशासन संस्थाकी उन्नतिका क्रम बताया है।

मनुष्यमें जो आत्मशक्ति है वह बडी प्रभावशालिनी है। उस आत्मशक्तिमें ज्ञान, वीरता, संग्रह और कर्म ये चार भेद हैं। जहां आत्मा है वहां ये चार शक्तिविभाग न्यूनाधिक रीतिसे हैं। मनुष्यमें येही ब्रह्म, क्षत्र, विट्, शूद्र नामसे प्रसिद्ध हैं। ज्ञानसंग्रह, राष्ट्रपालन, धनसंचय और कर्मकौशल ये इनके कार्य जगत् में सुप्रसिद्ध हैं।

जब अनेक कुटुंब एक स्थानपर आजाते हैं तब उनमें कई लोग ज्ञानका संग्रह करने वाले, विचारसंपन्न, केवल ध्यानधारणामें रत होते हैं, वे जगत्के व्यवहारके जालमें नहीं फंसते। दूसरे कई लोग ऐसे होते हैं कि जो अपने बाहुबलसे ग्रामकी रक्षा करनेमें तत्पर होते हैं।

इनके बलसे होनेवाली रक्षासे अन्य लोग अपने आपको सुरक्षित समझते हैं। दूसरों की रक्षाके लिये आत्मसमर्पण करनेमें हि इनका यश होता है। ये ग्राम या राष्ट्रकी रक्षाके लिये अपने जीवित का भी समर्पण करते हैं। परोपकारके लिये ये क्षत्रिय लोक बडी बडी आपत्तियां सहन करते, अपने जीवित को संकटोंमें और साहसोंके कार्योंमें सौंप देते हैं और संपूर्ण जनताके धन्यवादको योग्य बनते हैं।

वैश्य लोग खेती, और व्यापार व्यवहार करते हैं, धन कमाते हैं, और जनताके हित के कार्य करनेके लिये उस धनका समर्पण भी करते हैं। ये वैश्य लोग संग्रहमेंभी चतुर होते हैं और दानमें भी शूर होते हैं। इसीमें इनका यश हुआ करता है।

चौथे कर्मवीर हैं, इनको शूद्र कहते हैं— अनेक हुनर या कारीगरीके कर्म करना इनका कर्तव्य है। विविध प्रकारके कुशलताके कर्म करके ये अनेकानेक सुखसाधन निर्माण करते हैं। सब अन्य लोग इनकी कारीगरीसे सुखके साधन प्राप्त करते हैं। जो लोग इन चारों वर्णोंमें नहीं संमिलित होते उनको अवर्णीकृत पंचम वर्गमें संमिलित

किया जाता है। ये पांच प्रकारके 'पंच-जन' हैं। इन पंचजनोंकाही ग्राम नगर पत्तन और राष्ट्र होता है। इन वर्गोंके प्रतिनिधि जहां इकट्ठे होते हैं, उस सभाका नाम 'पंचायत' है, यही ग्रामसभा, नगरसमिति, राष्ट्रसभा और आमंत्रणपरिषद् है।

जहां सभा होती है वहां उसका अध्यक्ष, मंत्री आदि अधिकारी होते हि हैं, इस कारण ग्रामसभा में ग्रामसभाध्यक्ष, राष्ट्रसमितिमें उसका अध्यक्ष और मंत्रिमंडलमें उसका मुख्य मंत्री, होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार घरमें घरका स्वामी होता है, उसी प्रकार सभामें सभाका नियामक होना आवश्यक है। आगे चलकर युद्धादि प्रसंग छिडजानेपर युद्धनायक सेनाका विशेष बल हाथमें आनेसे अध्यक्षहि स्वयं शासक राजा या महाराजा बनता है। अथवा जिसको प्रजाजन राज्यका अध्यक्ष चुनते हैं वही अपना बल बढाकर स्वयंशासक राजा बनता है। यह राजाका विषय यहां नहीं है, यहां केवल ग्रामसभा, राष्ट्रसमिती और मन्त्रिमंडल प्रजाजनोंद्वारा चुने हुए प्रतिनिधियोंका कैसा बनता है, इसी का वर्णन यहां है। पाठक इस व्यवस्थाको देखें और अपने अपने ग्रामों और प्रान्तों तथा राष्ट्रमें इस प्रकारके प्रजानियुक्त प्रतिनिधियोंकी शासक संस्था नियुक्त करें और इसके द्वारा शासन करके अपनी सर्वांगपूर्ण उन्नति सिद्ध करें।

अष्टम काण्ड समाप्त।

अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

अष्टमकाण्डकी विषयसूची ।

अष्टम काण्ड समाप्त।